(भगवान महावीर 26 सौ वाँ जन्म-जयन्ती वर्ष)

सूक्तिसुधा

डॉक्टर हुकमचन्द भारिल्ल
के
साहित्य में समागत सूक्तियों का संग्रह

संकलन एवं सम्पादन :
राजेशकुमार जैन
शास्त्री, एम.ए., बी.एड., शाहगढ़ (म.प्र.)
एवं
शांतिनाथ पाटील
शास्त्री, एरंडोली (महाराष्ट्र)

प्रकाशक :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015
फोन : (0141) 515458, 515581, फैक्स : 517977

प्रथम संस्करण (14 जनवरी 2000)	:	5 हजार
द्वितीय संस्करण (27 मई 2001, श्रुतपंचमी)	:	3 हजार
कुल	:	8 हजार

मूल्य : अठारह रुपये

मुद्रक :
जयपुर प्रिण्टर्स प्रा॰ लि॰
एम॰ आई॰ रोड, जयपुर

प्रकाशकीय

(द्वितीय संस्करण)

डॉक्टर हुकमचन्दजी भारिल्ल जैनसमाज के गौरव होने के साथ-साथ लोकप्रिय लेखक, प्रभावक वक्ता, सुयोग्य सम्पादक, कुशल अध्यापक एवं सफल नियोजक भी हैं। उन्होंने अबतक छोटी-बड़ी लगभग 51 कृतियों का सृजन कर कीर्तिमान स्थापित किया है। उनकी कृतियों के अनुवाद देश की अनेक भाषाओं में होकर प्रकाशित हो चुके हैं। 40 लाख से अधिक की संख्या में उनके द्वारा रचित साहित्य प्रकाशित होकर देश-विदेश में पाठकों के घर-घर पहुँच चुका है।

आपके साहित्य की विशेषता है कि आपकी लगभग सभी कृतियों में यदा-कदा महत्त्वपूर्ण सूक्तियों का समावेश रहता ही है। ये सूक्तियाँ मानव के संवेदनशील मन को झकझोर कर रख देती हैं। जिसप्रकार हिन्दी साहित्य में सतसैया के दोहों का महत्त्व है, जिसके लिए कहा भी है –

सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर।।

ठीक इसीप्रकार डॉक्टर भारिल्ल की ये सूक्तियाँ यदि पाठकगण ध्यान से गम्भीरतापूर्वक पढ़ें तो निश्चय ही उनका असर सतसैया के दोहों से कहीं अधिक होगा।

डॉक्टर भारिल्ल के साहित्य में से इस बिखरे वैभव को एकत्रित कर उसे पुस्तक के कलेवर में सँजोने का कार्य उन्हीं के द्वय शिष्यों श्री राजेश कुमार जैन एवं श्री शान्तिनाथ पाटील ने बड़ी मेहनत से किया है। इस कार्य को सम्पादित करने में ब्र॰ यशपालजी जैन की सूझबूझ एवं लगन ने विशेष सहयोग दिया है। उन्हीं के मार्गदर्शन में सम्पादकद्वय ने इस कार्य का बीड़ा उठाया और उसे मूर्त रूप देकर

पुस्तकाकार प्रकाशन योग्य बनाया है।

यह पुस्तक जन-जन को कम से कम मूल्य में प्राप्त हो, इस उद्देश्य से अनेक साधर्मी बन्धुओं ने आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। हम उनके प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं। दातारों की सूची यथास्थान दी गई है। आकर्षक कलेवर में मुद्रण हेतु जयपुर प्रिण्टर्स प्रा॰लि॰, जयपुर के निदेशकद्वय श्री प्रमोद कुमार जैन, श्री आलोक जैन को भी मैं धन्यवाद देना चाहूँगा; जिन्होंने अनेक व्यवधान खड़े होने पर भी समय पर कार्य सम्पन्न किया है। हमारे प्रकाशन विभाग के प्रभारी श्री अखिल बंसल भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने मुद्रण व बाइंडिंग व्यवस्था में अपना सक्रिय सहयोग दिया है।

आप सभी इस कृति से लाभान्वित होकर आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करेंगे, इसी भावना के साथ –

– नेमीचन्द पाटनी

महामंत्री, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

सम्पादकीय

काव्य में अलंकारों का सहज प्रयोग काव्य सौन्दर्य को द्विगुणित करता है एवं पाठक को सौन्दर्यानुभूति कराता है; इसीप्रकार गद्य में सूक्तियों का स्वाभाविक प्रयोग उस विषय के यथार्थ मर्म को प्रकाशित करता है। सूक्ति मानव संवेदना को प्रकट करने का द्वार है। सूक्तियाँ साहित्य में बलात् रखी नहीं जातीं; अपितु वे साहित्य में स्वयमेव प्रगट होती हैं। सूक्तियाँ चिन्तन को आमन्त्रित करती हैं और इस चिन्तन का सार स्वयं सूक्ति बन जाता है। सूक्तियों का महत्त्व भोजन में लवण जैसा है; सूक्तियाँ विपत्तियों में धैर्यधारक एवं संपत्ति में समाधानकारक होती हैं।

अध्यात्म की पावन शिला पर उदित साहित्य में सूक्तियाँ उस विषय को संपूर्णत: स्पष्ट करती हैं। बारह भावनाएँ जहाँ काव्य में चिन्तन की प्रक्रिया को प्रेरित करती हैं; वहीं आध्यात्मिक सूक्तियाँ गद्य साहित्य में चिन्तन को अपने मुकाम पर पहुँचाती हैं।

लेखक अपने साहित्य में जितना सिद्धहस्त होगा; उसकी सूक्तियाँ भी उतनी ही सशक्त अनुभूति लिए हुए होंगी। आज आध्यात्मिक जैन जगत में डॉक्टर भारिल्ल का एक विशिष्ट स्थान है। उनका साहित्य उनकी विद्वत्ता एवं आध्यात्मिक मर्म उद्घाटित करने की प्रवृत्ति के कारण सर्वत्र लोकप्रिय है। उनकी लेखनी पाठक के हृदय तक पहुँचती है और पाठक को इच्छित परन्तु उससे अनुद्घाटित तथ्य को उद्घाटित करती है। उनका मर्म उनकी सूक्तियाँ प्रगट करती हैं। जबरन उनकी सूक्तियाँ पाठक का कण्ठहार बन जाती हैं। उनकी सूक्तियाँ ही उनके साहित्य का प्राण हैं, जहाँ पाठक उनकी सूक्तियों को अपने हृदय में कैद कर लेता है, वहीं उसकी यह तृष्णा भी बनी रहती है कि इन सूक्तियों का एक संग्रह हो।

कुछ प्रसंग ही ऐसा बना कि पाठकों की यह तृष्णा स्वयमेव शान्त हो गई। जब हमें आदरणीय ब्र. यशपालजी ने डॉक्टर भारिल्ल के अभिनन्दन ग्रन्थ के कार्य में सहयोग करने के लिए कहा, तब हमने उसे सहज ही स्वीकार कर लिया।

अभिनन्दन ग्रंथ के साथ-साथ 'चिन्तन की गहराइयाँ' नामक पुस्तक का भी कार्य चल रहा था। इसमें भी हमें सक्रिय रूप से कार्य करने का अवसर मिला। कई बार पढ़ना हुआ, तब मन में ऐसा विचार आया कि डॉक्टर साहब के सम्पूर्ण लिखित साहित्य में सर्वत्र सूक्तिकण बिखरे पड़े हुए हैं। यदि इनका भी एक संकलन तैयार हो जाय तो निश्चित ही अनेक जीव इसके स्वाध्याय, चिन्तन-मनन से धर्म सिद्धान्तों की मार्मिक अनुभूति तो प्राप्त करेंगे ही, कई नवयुवक भी तत्त्वरुचिवंत बन जायेंगे। यह हमारा विचार चल ही रहा था कि ब्र. यशपालजी ने हमारी इसी भावना को पुष्ट किया और कहा कि डॉक्टर भारिल्ल अभिनन्दन ग्रंथ में एक ऐसा विभाग भी होना चाहिए; जिसमें उनकी सूक्तियों को संगृहीत किया हो। इस प्रेरणा से हमने इस कार्य को करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

सूक्ति शतक तैयार करने के विचार से जब कार्य करना प्रारंभ किया, तब सूक्तियाँ निकालते समय द्विसहस्र से भी अधिक सूक्तियाँ निकल आईं। सभी सूक्तियाँ इतनी महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुईं कि इसको आदरणीय ब्र. यशपालजी की प्रेरणा से विषयानुसार विभाजित किया गया। विषयविभाजन में पण्डित प्रदीपकुमारजी महाजन का सहयोग उल्लेखनीय रहा। डॉक्टर हुकमचन्दजी भारिल्ल कृत पद्य एवं गद्य साहित्य के ३४ ग्रंथों में से सूक्तियाँ संकलित की गई हैं; इनमें विषय विभाजन के साथ विषय के क्रमिक विकास का भी ध्यान रखा गया है। इसमें हमने जिन ग्रंथों से सूक्तियाँ संकलित की हैं उन ग्रंथों के नाम संस्करण सहित दिए हैं। सभी ओर से इस कृति को श्रेष्ठतम बनाने का प्रयास किया गया है, सूक्तियों के इस सुधारस का पानकर आप अपने जीवन को कृतार्थ करेंगे, इसी मंगल भावना के साथ विराम लेते हैं।

राजेशकुमार जैन
शास्त्री, एम.ए., बी.एड.
शाहगढ़ (मध्य प्रदेश)

शांतिनाथ पाटील
शास्त्री,
एरंडोली (महाराष्ट्र)

प्राक्कथन

सूक्तिसुधा नामक इस पुस्तक का प्राक्कथन लिखते समय मुझे विशेष आनंद हो रहा है। सूक्तिसुधा के सम्पादकद्वय ने अपने सम्पादकीय में कुछ विशिष्ट विषय का उल्लेख तो किया ही है। उसके पहले की घटना को भी मैं बताने के लोभ को रोक नहीं पा रहा हूँ।

जब सर्वोदय स्वाध्याय समिति, बेलगाँव (कर्नाटक) ने डॉक्टर भारिल्ल का अभिनंदन ग्रन्थ प्रकाशित करने का निर्णय लिया था, तब सर्वोदय स्वाध्याय समिति के प्राणस्वरूप श्री एम. बी. पाटील ने डॉक्टर भारिल्ल के साहित्य में से सूक्तियों को इकट्ठा करने की सलाह दी थी। मैंने भी सहमति प्रकट की थी; लेकिन जबतक प्रत्यक्ष काम करने के लिए कोई उत्साही कार्यकर्ता सामने नहीं आता, तबतक सब योजनाएँ मात्र फाइल की शोभा ही बनी रहती हैं। वैसे 'चिन्तन की गहराइयाँ' के संपादन के समय ही अनेक सूक्तियाँ मेरे ख्याल में भी आ रही थीं। उसके भी पूर्व श्री अखिल बंसल ने भी सूक्ति संग्रह निकालने के लिए मुझे बोला था, स्वयं ने कुछ प्रयास भी किया था। किसी काम के लिए लगातार लगन से जबतक विशिष्ट प्रयत्न नहीं होता, तबतक कार्य अधूरा ही रहता है। श्री राजेशकुमार जैन और श्री शांतिनाथ पाटील की साहित्य की विशेष रुचि और लगन से यह कार्य संपन्न हो सका है।

डॉक्टर महेन्द्रसागरजी प्रचण्डिया, अलीगढ़ (डॉक्टर भारिल्ल अभिनंदन ग्रन्थ के सम्पादक) का मुझे इन दिनों में पत्र द्वारा विशेष मार्गदर्शन मिल रहा है। डॉक्टर भारिल्ल के साहित्य में से सूक्ति निकालना और उन्हें अभिनंदन ग्रन्थ के प्रत्येक पेज पर एक-एक सूक्ति देना अथवा कुछ पृष्ठों में सूक्तियाँ पृथक् से देना चाहिए; यह डॉक्टर महेन्द्रसागरजी की विशेष बलवती प्रेरणा रही। इसकारण ही मैंने सूक्तिसुधा का यह कार्य करवाया। जब कार्य संतोषकारक

संपन्न हुआ, तब इसे स्वतंत्र पुस्तक ही क्यों न बनाया जाय ? यह विचार टोडरमल जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के विद्यार्थियों ने मुझे सुझाया। इतना ही नहीं कुछ उत्साही एवं तत्त्वरसिक विद्यार्थियों ने कहा कि इन सूक्तियों को भी आप कण्ठपाठ में क्यों नहीं रखते ? यदि आप हाँ कहोगे तो हम अनेक विद्यार्थी आपको सब सूक्तियाँ याद करके कण्ठोक्त सुनायेंगे। विद्यार्थियों के इस उत्साह से मुझे और प्रेरणा मिली। अब छहढाला, द्रव्यसंग्रह, समयसार आदि ग्रन्थों के साथ सूक्तिसुधा भी कण्ठपाठ का एक विषय रहेगी। चिंतन की गहराइयाँ को भी विद्यार्थियों ने कण्ठपाठ का विषय बनाया है; यह कहते हुए मुझे विशेष आनंद होता है।

अभिनंदन ग्रन्थ में व्यक्तिगत कुछ विशेषताओं की अपेक्षा उनके साहित्य को जन-जन तक पहुँचाना ही मैं सच्चा अभिनंदन मानता हूँ। इस अपेक्षा से विचार किया जाय तो **'चिन्तन की गहराइयाँ'**, **'बिखरे मोती'** और **'सूक्तिसुधा'** का प्रकाशन डॉ. भारिल्ल का अभिनंदन ही तो है।

डॉक्टर भारिल्ल का अप्रकाशित साहित्य भी क्रम-क्रम से प्रकाशित करने का मानस है।

यह पुस्तक प्रकाशित होने से पहले सूक्तियों की संख्या बढ़ने से एवं संपादन पद्धति में परिवर्तन होने से प्रेस में एक बार नहीं, दो बार नहीं; बल्कि तीन बार नये सिरे से कम्पोज करवाना पड़ा, तब जाकर प्रकाशित करना संभव हो सका। इससे प्रेसवालों को कितना कष्ट हुआ होगा, हम समझ सकते हैं; लेकिन जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर वालों ने धर्मप्रेम और साहित्यप्रेम के कारण कुछ भी नहीं गिना। इससे मैं प्रभावित तो हूँ ही, उनके प्रति आभार भी व्यक्त करता हूँ।

प्रस्तुत कृति सूक्तिसुधा के संबंध में मेरा पाठकों से अनुरोध है कि वे अपना अभिमत लिखकर मुझे भेजेंगे तो अगले संस्करण में अभिमत प्रकाशित तो करेंगे ही और पाठकों की रसिकता को जानकर मुझे आनंद भी होगा।

- ब्र. यशपाल जैन
एम.ए., जयपुर

जिनमें से सूक्तियाँ चुनी गयी हैं उन पुस्तकों की सूची

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	संस्करण	दिनांक	अबतक प्रकाशित कुल प्रतियाँ
१.	परमभावप्रकाशक नयचक्र	तृतीय	३०-३-९७	26 हजार २००
२.	बिखरे मोती	प्रथम	२५-५-९९	५ हजार
३.	पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	द्वितीय	२४-१०-८४	८ हजार २००
४.	आत्मा ही है शरण	तृतीय	१२-३-९८	२७ हजार २००
५.	सत्य की खोज	दसवाँ	१५-८-९८	१ लाख ४ हजार २००
६.	तीर्थंकर भगवान महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	सप्तम	५-४-९३	६४ हजार ६००
७.	वीतराग विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	पंचम	१५-५-९४	११ हजार ४००
८.	धर्म के दशलक्षण	दसवाँ	१-११-९७	९३ हजार ६००
९.	बारह भावना : एक अनुशीलन	पंचम	२७-५-९८	३१ हजार २००
१०.	आप कुछ भी कहो	सातवाँ	१२-३-९८	६३ हजार ४००
११.	क्रमबद्धपर्याय	छठवाँ	१५-१०-९७	८३ हजार ४००
१२.	गागर में सागर	पंचम	३०-३-९८	२३ हजार ६००
१३.	आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंचपरमागम	द्वितीय	१५-१२-८८	१० हजार ४००
१४.	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	छठवाँ	१-१-९९	५२ हजार ३००
१५.	निमित्तोपादान	तृतीय	२७-५-९९	१८ हजार
१६.	अहिंसा महावीर की दृष्टि में	आठवाँ	२७-५-९९	५२ हजार ६००
१७.	युगपुरुष श्री कानजी स्वामी	तृतीय	२-१०-९५	१३ हजार
१८.	मैं कौन हूँ ?	ग्यारहवाँ	१५-८-९९	१ लाख ३ हजार

१९.	बालबोध पाठमाला भाग-२	बीसवाँ	१५-६-९८	२ लाख १३ हजार ८००
२०.	बालबोध पाठमाला भाग-३	अट्ठारहवाँ	१-१०-९७	१ लाख ८८ हजार ८००
२१.	वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग-१	बारहवाँ	२०-५-९९	१ लाख १२ हजार
२२.	वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग-२	बारहवाँ	१४-११-९७	८८ हजार ९००
२३.	वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग-३	दसवाँ	२६-१-९७	७८ हजार
२४.	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-१	छठवाँ	१-१-९६	२६ हजार ७००
२५.	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-२	छठवाँ	२४-३-९७	२६ हजार ७००
२६.	सार समयसार	द्वितीय	१-१२-८९	६ हजार ४००
२७.	शाश्वत तीर्थधाम : सम्मेदशिखर	पंचम	३०-४-९५	३२ हजार १००
२८.	तीर्थंकर भगवान महावीर	ग्यारहवाँ	२४-३-९७	१ लाख ७७ हजार ६००
२९.	अनेकान्त और स्याद्वाद	चतुर्थ	२७-५-९९	१५ हजार
३०.	शाकाहार : जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में	पन्द्रहवाँ	२९-३-९९	२ लाख ६४ हजार २००
३१.	गोम्मटेश्वर बाहुबली	चतुर्थ	१५-७-९३	६० हजार
३२.	वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	सातवाँ	१९९६	५२ हजार
३३.	जिनेन्द्र अर्चना	बीसवाँ	१५-७-९९	१ लाख ३० हजार
३४.	चिन्तन की गहराइयाँ	द्वितीय	१४-९-९९	१० हजार

कुल योग : २२ लाख ७३ हजार ५००

प्रस्तुत ग्रन्थ की कीमत कम करनेवाले दातारों की सूची

1. श्री ललितकुमार ज्ञानचन्दजी बड़जात्या, इन्दौर	5000=00
2. श्री अभयकुमारजी जैन, भिण्ड	1101=00
3. श्री सुभाषजी पटवा, सोलापुर	1001=00
4. श्री सुरेशचन्दजी कोटड़िया, सोलापुर	1001=00
5. श्री रायचंद गौतमचंदजी चंकेधरा, सोलापुर	1001=00
6. श्रीमती हेमलता रमेशचंदजी बड़जात्या, इन्दौर	1000=00
7. श्री कस्तूरचंदजी संघवी, उदयपुर	1000=00
8. श्री मोतीचंदजी लुहाड़िया, जोधपुर	1000=00
9. श्री वीतराग-विज्ञान पाठशाला, सरधना	501=00
10. सौ. शोभा श्रीकान्तजी कराडे, सोलापुर	501=00
11. डॉ. अजितकुमारजी रावत, राधोगढ़	501=00
12. श्री अजयकुमारजी रावत, राधोगढ़	501=00
13. श्री संजयकुमारजी जैन (वकील), राधोगढ़.	501=00
14. श्री हुकमचन्दजी टोंग्या, जयपुर	501=00
15. श्रीमती श्री कान्ताबाई ध.प. श्री पूनमचंदजी छाबड़ा, इन्दौर	301=00
16. श्री शान्तिनाथजी सोनाज, अकलूज	251=00
17. श्री अजितकुमार शान्तिनाथजी सोनाज, अकलूज	251=00
18. श्री चन्द्रकान्त शान्तिनाथजी सोनाज, अकलूज	251=00
19. श्री उदयकुमार शान्तिनाथजी सोनाज, अकलूज	251=00
20. श्री अनिलकुमार शान्तिनाथजी सोनाज, अकलूज	251=00
21. श्रीमती पतासीदेवी इन्द्रचन्दजी पाटनी, लॉडनू	251=00
22. श्रीमती भँवरीदेवी ध.प. स्व. श्री घीसालालजी छाबड़ा, सीकरवाले	251=00
23. स्व. श्री ऋषभकुमार जैन पुत्रश्री सुरेशकुमारजी जैन, पिड़ावा	251=00
24. श्री प्रेमचन्दजी जैन, सोनीपतसिटी	251=00
25. स्व. श्री मयूरभाई एम. सिंघवी, मुम्बई	251=00
26. श्री मोलड़मल शोसिंहराय जैन, अग्रवालमण्डी	251=00
27. ब्र. कुसुम जैन, हाथकंगले	250=00
28. श्रीमती गुलाबीदेवी लक्ष्मीनारायणजी रारा, शिवसागर	201=00
29. श्रीमती स्नेहलता शान्तिलालजी चौधरी, भीलवाड़ा	151=00
30. चौधरी फूलचन्दजी जैन, मुम्बई	111=00
31. श्रीमती पानादेवी मोहनलालजी सेठी, गोहाटी	101=00
कुल राशि	18,986=00

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	रीति-नीति	१
२.	शाश्वत सत्य	२४
३.	अमृत कण	३०
४.	प्रेरणा	४२
५.	जो कहीं नहीं	४६
६.	नारी	५५
७.	व्यक्तित्व	५८
८.	विवेक	६७
९.	ज्ञानी और अज्ञानी	७०
१०.	पुरुषार्थ	७५
११.	पुण्य-पाप	७६
१२.	सुख-दुःख	७८
१३.	भक्ति	८३
१४.	अहिंसा	८५
१५.	शाकाहार	८९
१६.	पंचकल्याणक	९१
१७.	देव	९३
१८.	शास्त्र	९६
१९.	गुरु	१००
२०.	धर्म	१०७
२१.	मोक्षमार्ग	११२
२२.	आत्मा	११५
२३.	भेद-विज्ञान	१२९
२४.	आत्मानुभूति	१३१
२५.	श्रद्धा	१३५
२६.	ज्ञान	१३७
२७.	दशलक्षण महापर्व	१४१
२८.	उत्तम क्षमा	१४४
२९.	क्षमावाणी	१४६
३०.	क्रोध	१४९
३१.	उत्तम मार्दव	१५१
३२.	मान	१५२
३३.	उत्तम आर्जव	१५५
३४.	माया	१५८
३५.	उत्तम शौच	१६०
३६.	लोभ	१६२
३७.	उत्तम सत्य	१६५
३८.	सत्य	१६८
३९.	उत्तम संयम	१७२
४०.	उत्तम तप	१७४
४१.	त्याग और दान	१७७
४२.	उत्तम आकिंचन्य	१८१
४३.	उत्तम ब्रह्मचर्य	१८३
४४.	बारह भावना	१८६
४५.	अनित्य भावना	१८९
४६.	अशरण भावना	१९१
४७.	संसार भावना	१९३
४८.	एकत्व भावना	१९५
४९.	अन्यत्व भावना	१९८
५०.	अशुचि भावना	२००
५१.	आस्रव भावना	२०१
५२.	संवर भावना	२०३
५३.	निर्जरा भावना	२०५
५४.	लोक भावना	२०६
५५.	बोधिदुर्लभ भावना	२०७
५६.	धर्म भावना	२०९
५७.	इन्द्रिय	२११
५८.	वस्तु	२१४
५९.	द्रव्य-गुण-पर्याय	२१८
६०.	क्रमबद्धपर्याय	२२१
६१.	नयों की अनिवार्यता	२२४
६२.	नय	२२५
६३.	सप्तनय	२२७
६४.	द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक	२२८
६५.	आगम और अध्यात्म	२२९
६६.	निश्चय-व्यवहार	२३२
६७.	उपादान-निमित्त	२३४
६८.	अनेकान्त और स्याद्वाद	२३६
६९.	ध्यान	२३८
७०.	तीर्थंकर भगवान महावीर	२४०
७१.	आचार्यकल्प पं. टोडरमल	२४६
७२.	आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी	२५५

१

रीति-नीति

१. लोगों का विश्वास प्राप्त करना कोई आसान काम तो नहीं है, इसके लिए सहृदय होने के साथ-साथ सहृदय दिखना भी अत्यंत आवश्यक है ॥ १ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-७०

२. कार्यकर्त्ताओं और कर्मचारियों को कार्य करने में क्या कठिनाई आ रही है — यह जानना और उसका निराकरण करना भी प्रशासक का उत्तरदायित्व है ॥ २ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-७७

३. कुछ लोगों की दृष्टि मात्र कमियाँ ही देख पाती है, उन्हें प्रत्येक कार्य में कुछ-न-कुछ खोट ही नजर आती है, ऐसे लोग सदा असन्तुष्ट ही बने रहते हैं ॥ ३ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-७८

४. कुछ लोग मात्र अच्छाइयाँ ही देखते हैं, उन्हें कहीं कोई खराबी दिखाई ही नहीं देती है। ऐसे लोग भी समाज के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं होते; क्योंकि उनके संरक्षण में कभी-कभी बड़े-बड़े अपराध भी पनपते रहते हैं; पर उन्हें कुछ लगता ही नहीं। परिणामस्वरूप धर्म और धर्मायतन बदनाम हो जाते हैं ॥ ४ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-७८

५. ऐसे लोग बहुत कम मिलते हैं, जो व्यक्ति की अच्छाइयों की जड़ तक पहुँचने की क्षमता रखते हैं, बुराइयों पर अंकुश लगाना जानते हैं, अच्छाइयों को प्रोत्साहित करना जानते हैं और निन्दा-प्रशंसा से अप्रभावित रहकर व्यक्तियों को, मिशन को, संस्थाओं को अपने

सुनिश्चित पथ पर अडिग रखते हैं, झंझावातों से बचाये रखते हैं, गलत लोगों से सुरक्षित रखते हैं एवं सन्मार्ग पर निरंतर गतिशील भी रखते हैं ॥ ५ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-७८

६. हो क्या नहीं सकता? पर कोई करना चाहे तब; जिसे लड़ना ही है, उससे क्या बात हो सकती है ॥ ६ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-८३,

७. समाज का बहुभाग शांति चाहता है, शांतिपूर्ण उपायों से ही अपनी संस्कृति, सांस्कृतिक विरासत, तीर्थों एवं जीवन्त तीर्थ जिनवाणी की सुरक्षा और समृद्धि करना चाहता है और सामाजिक विपन्नता और कुरीतियों को भी समाप्त कर समाज के प्रत्येक व्यक्ति को सुखी, शिक्षित, सदाचारी और सुनागरिक बनाना चाहता है ॥ ७ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-९४

८. हमें पूरा-पूरा विश्वास है कि आज का जागृत समाज निर्माण को चुनेगा, विध्वंस को नहीं ॥ ८ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-९६

९. कानजी स्वामी को गैर दिगंबर घोषित करने की सोच वालों को एक बार गंभीरता से सोचना चाहिए कि फिर किसी राधाकृष्णन को एक बार यह लिखना न पड़े कि कुन्दकुन्दाचार्य के सबसे बड़े भक्त को कुन्दकुन्दाचार्य के तथाकथित भक्तों द्वारा कुन्दकुन्द की रक्षा के नाम पर गैर-दिगंबर घोषित किया गया ॥ ९ ॥ — बिखरे मोती पृष्ठ-९९

१०. अपनी करतूतों से ही स्वयं ही बहिष्कृत से हो गये हैं, इनका बहिष्कार करना मरे को मारना है ॥ १० ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१०९

११. समाज के समझदार लोगों को यह संकेत है कि जो लोग इन तथाकथित विघटनवादी पण्डितों के चक्कर में आवेंगे, वे समाज का कोई भला नहीं करेंगे; बुरा भी नहीं कर पावेंगे; क्योंकि जागृत समाज बुरा कर पाने के पहले ही उनसे मुक्त हो जावेगी ॥ ११ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१११

१२. जिन-अध्यात्म के क्षेत्र में यह युग निश्चित रूप से श्री कानजी स्वामी युग रहा है ॥ १२ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१२३

१३. क्या आज कोई बता सकता है कि विश्व का कोई भी मासिक-पत्र विशुद्ध आध्यात्मिक हो, अपने हितैषियों और पाठकों के सहयोग से, बिना विज्ञापन लिए एक वर्ष में ही आत्मनिर्भर हो गया हो ॥ १३ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१३०

१४. भाई! हम सबको मिलकर अज्ञान के विरुद्ध लड़ना है, असंयम के विरुद्ध लड़ना है, दुराचार के विरुद्ध लड़ना है ॥ १४ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१४६

१५. जो भी धार्मिक क्षेत्र में कार्य करने वाले लोग हैं, उन्हें परस्पर लड़ने के स्थान पर मिलकर अज्ञान से, अशिक्षा से लड़ना चाहिए; इसमें ही समाज का भला है, संस्थाओं का भला है, धर्म का भला है और व्यक्तियों का भी भला इसी में है ॥ १५ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१४६

१६. जब एक देश दूसरे देश के विकास में तकनीकी, आर्थिक, बौद्धिक आदि सभी प्रकार का सहयोग करते देखे जाते हैं तो क्या धर्म के क्षेत्र में यह संभव नहीं है ॥ १६ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१४७

१७. समाज के प्रबुद्धवर्ग का कार्य गहराई में जाकर वस्तुस्थिति का गहरा अध्ययन करके यथासाध्य सम्यक् मार्गदर्शन करना है ॥ १७ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१४९

१८. हमने अपना जीवन अध्यात्म के लिए समर्पित किया है, झगड़ा-झंझटों के लिए नहीं ॥ १८ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१५०

१९. शास्त्रों का तिरस्कार कर नरक निगोद जाने का महापाप किसी के बहकाने से धर्मभीरु समाज कभी करने वाली नहीं है ॥ १९ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१५४

२०. हमारे पवित्र हृदय से किये गये अनुरोध को सम्पूर्ण समाज पवित्र हृदय से ही ग्रहण करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है फिर भी यदि कुछ हुआ तो हमारे पास एक ही रास्ता शेष रह जाता है कि हम महात्मा गाँधी के बताये रास्ते पर चलकर आत्मशुद्धि के लिए सामूहिक उपवास करें, गाँव-गाँव में शांति के लिए प्रार्थनाएँ करें॥ २०॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१५६

२१. मुझे विश्वास है कि सच्चे हृदय से की गई हमारी प्रार्थनाएँ एवं आत्मशुद्धि के लिए किये गये हमारे सामूहिक उपवास व्यर्थ न जायेंगे॥ २१॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१५६

२२. आत्मशुद्धि की कमी के कारण सच्चे हृदय से भी दी गई आवाज में वह शक्ति नहीं होती कि जिसे सभी लोग सुन सकें, स्वीकार कर सकें॥ २२॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१५६

२३. यदि कुछ लोगों पर हमारे इस पवित्र आह्वान का असर न भी पड़े, तब भी दुष्काल में हमारी प्रार्थनाएँ और उपवास हमारे चित्त को तो शांत रखेंगे ही, जिससे प्रतिक्रिया में होनेवाली प्रतिहिंसा से तो हम बचे ही रहेंगे॥ २३॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१५७

२४. दो-चार शास्त्रों के जलाने या पानी में बहाने से हम समाप्त नहीं हो जावेंगे, हम उसके बदले में उनकी पुस्तकों को जलाने के स्थान पर हजारों प्रतियाँ और अधिक छपाने के प्रयास में लगेंगे॥ २४॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१५७

२५. जिनवाणी के जलप्रवाह से हम अपने बन्धुओं को विरत करना चाहते हैं तो मात्र इस भावना से ही कि वे इस पाप के फल से बचे रहें, क्योंकि जिनवाणी तो हम और भी छपा लेंगे; पर हमारे ही साधर्मी भाइयों को जो फल भोगना होगा, उसकी बात सोचकर हमारा हृदय काँप उठता है॥ २५॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१५७

२६. यह संकल्प करना होगा कि हम देव-शास्त्र-गुरु की अवज्ञा न तो स्वयं करेंगे, न करायेंगे और न कराने वालों की अनुमोदना ही करेंगे ॥ २६ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१६०

२७. भाई ! प्रतिकार का रास्ता उचित नहीं है, प्रतिकार का रास्ता विघटन की ओर जाता है ॥ २७ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१६३

२८. यदि समाज को संगठित रखना है, जिनवाणी को जन-जन की वाणी बनाना है तो इस विनाशकारी रास्ते पर चलने की बात सोचना भी पाप है ॥ २८ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१६३

२९. हमारे पास इस शांतिप्रिय आंदोलन के अतिरिक्त कोई रास्ता शेष नहीं रह गया है ॥ २९ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१६४

३०. महापाप से स्वयं बचने और समाज को बचाने के लिए प्रार्थना और उपवास करने के अतिरिक्त हम कर भी क्या सकते हैं ॥ ३० ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१६४

३१. दुनिया चाहे बदले, चाहे न बदले; पर प्रार्थना में सम्मिलित होनेवालों को, उपवास करने वालों को, आत्मशांति तो प्राप्त होगी ही ॥ ३१ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१६४

३२. आगम विरुद्ध कार्य और जिनवाणी की विराधना कहीं भी क्यों न हो; वह अनर्थक ही है, विघटनकारी ही सिद्ध होगी ॥ ३२ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१६६

३३. अशांत चित्त में लिया गया कोई भी निर्णय आत्मा के हित के लिए तो होता ही नहीं है, समाज के लिए भी उपयोगी नहीं होता है ॥ ३३ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१६९

३४. समाज टूटे नहीं और हमारी आत्मा की साधना, धर्म की साधना, जिनवाणी की आराधना, शांतिपूर्वक चलती रहे — ऐसा कोई मार्ग सोचेंगे ॥ ३४ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१६९

३५. हमारे हृदयों में जिनवाणी इतनी गहरी विराजमान है तो दुनिया की कौनसी ताकत है कि जो इसे हमारे हृदय से निकाल सके ? ॥ ३५ ॥
— बिखरे मोती, पृष्ठ-१६९

३६. समाज का स्नेह हम उनसे हाथ जोड़कर प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे ॥ ३६ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१७१

३७. हमें समाज का स्नेह मिलेगा तो हम पूरे संकल्प के साथ उनके साथ रहेंगे और नहीं मिलेगा तो भी जिनवाणी की आराधना तो हम कभी छोड़ेंगे नहीं, वह तो हर हालत में हमारे खून का एक अंग बन चुकी है ॥ ३७ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१७१

३८. हम तो बहुत से बहुत आगे बढ़ेंगे तो यह सोच सकते हैं कि यदि समाज में शांति से रहकर हम अपनी धर्म साधना, साहित्य की आराधना और स्वाध्याय नहीं कर सकते तो अलग बैठकर स्वाध्याय करें ॥ ३८ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१७७

३९. मेरा तो कहना है कि गोली का जवाब गोली से देने की बात तो बहुत दूर, हमें तो गोली का जवाब गाली से भी नहीं देना है; ऐसा पाप हम से तो होगा नहीं ॥ ३९ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१७९

४०. हम पृथकता के दृष्टिकोण को लेकर नहीं चलना चाहते हैं ॥ ४० ॥
— बिखरे मोती, पृष्ठ-१८१

४१. किसी से किसी प्रकार का मतभेद होना अलग बात है और लड़-झगड़कर समाज में फूट डालना एकदम अलग बात है ॥ ४१ ॥
— बिखरे मोती, पृष्ठ-१८९

४२. आचार्य कुन्दकुन्द और उनकी वाणी में जिनकी आस्था है, वे सभी हमारे सच्चे साधर्मी भाई हैं; उनसे रंचमात्र भी वैर-विरोध हमें अभीष्ट नहीं है; अपितु हम उनका हार्दिक वात्सल्य चाहते हैं। कुन्दकुन्द के अनुयायिओं की अर्थात् सम्पूर्ण दिगंबर जैन समाज की एकता हमें

हृदय से अभीष्ट है, तदर्थ हम अपनी आस्थाओं को छोड़कर और सबकुछ समर्पित करने को तैयार हैं ॥ ४२ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१८९

४३. युवकों में जोश और प्रौढ़ों में होश की प्रधानता होती है ॥ ४३ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१९१

४४. युवकों में जितना जोश होता है, कुछ कर गुजरने की तमन्ना होती है; उतना अनुभव नहीं होता, होश नहीं होता, इसीप्रकार प्रौढ़ों में जितना अनुभव होता है, उतना जोश नहीं ॥ ४४ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१९१

४५. कोई भी कार्य सही और सफलता के साथ सम्पन्न करने के लिए जोश और होश दोनों की ही आवश्यकता होती है ॥ ४५ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१९१

४६. यह युग संगठन का युग है, इसमें विघटनकारी तत्त्वों को कोई स्थान नहीं है ॥ ४६ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-९३

४७. सोनगढ़ दिगम्बरों का ही है और सदा दिगम्बरों का ही रहेगा ॥ ४७ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१२०

४८. आगम के सम्मान एवं सामाजिक एकता की अनदेखी करने वाले लोग घर-फूँक तमाशा देखने पर उतारू हो जाते हैं तो अड़ौसी-पड़ौसी भी इस आग में स्वार्थ की रोटियाँ सेकने लगते हैं ॥ ४८ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१४९

४९. दिगम्बर जैन समाज में ऐसा तो एक भी व्यक्ति नहीं होगा, जो शिथिलाचार का विरोधी न हो और सभी मुनिराजों में एक-सी श्रद्धा रखता हो ॥ ४९ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१८८

५०. समुचित नियोजन का उत्तरदायित्व होशवालों पर अधिक है; क्योंकि वे अनुभवी हैं। जोशवालों की जिम्मेदारी मात्र इतनी है कि वे अपने

अनुभवी बुजुर्गों की तर्क-संगत बात सुनें, समझें और यथासंभव ससम्मान कार्यरूप परिणत करें ॥ ५० ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१९१

५१. पूर्वजों के अनुभव से लाभ उठाना मानव जीवन की सार्थकता है और उनके अनुभवों की उपेक्षा करना मानव जीवन को प्राप्त सुविधा की अवहेलना है ॥ ५१ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१९१

५२. काम जोश से होता है, शक्ति से होता है; इस बात की उपेक्षा करना भी हितकर नहीं है ॥ ५२ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१९१

५३. सुनिश्चित योजना होश में अनुभव से बनती है और उसकी क्रियान्विति के लिए पूरी शक्ति और जोश की आवश्यकता होती है ॥ ५३ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१९१

५४. बिना जोश का होश शक्तिहीन मरियल घोड़े की सवारी है और बिना होश का जोश बिना लगाम के घोड़े जैसी सवारी है ॥ ५४ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१९१

५५. गंतव्य पर पहुँचने के लिए शक्तिशाली जोशीले घोड़े और अनुभवी सवार का ही सही मार्गदर्शन बहुत जरूरी है ॥ ५५ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१९१

५६. संस्थाओं की संभाल वे ही लोग कर सकते हैं, जो स्वयं तत्त्वाभ्यासी हों, स्वयं निरंतर स्वाध्याय करते हों, तत्त्वरसिक हों और वीतरागी तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में जीवन समर्पित करने वाले हों, श्रद्धान के पक्के हों और किसी भी प्रकार के दबाबों में आकर अपना मार्ग न बदलने वाले हों ॥ ५६ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-६६

५७. जबतक कोई भी व्यक्ति ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा की बात प्रीतिपूर्वक प्रसन्नचित्त से नहीं सुनेगा; तबतक उनकी समझ में आना संभव नहीं है ॥ ५७ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१००

५८. जबतक अन्तर में सच्ची तत्त्व जिज्ञासा न जगे, किसी को मार-मारकर मुल्ला नहीं बनाया जा सकता॥ ५८॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१००

५९. सर्वत्र इसप्रकार के कुछ-न-कुछ लोग अवश्य पाये जाते हैं, जिन्हें दूसरों का बढ़ना नहीं सुहाता॥ ५९॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१०५

६०. दूसरों के द्वारा जो महान काम होते हैं, वे तो उन्हें अच्छे लगते हैं; पर उनके कारण जो उन कार्यों के करने वालों को सम्मान मिलता है, वह उन्हें बर्दाश्त नहीं होता। मानव की यह मनोवैज्ञानिक कमजोरी है॥ ६०॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१०५

६१. विघ्न उत्पन्न करनेवाले व्यक्तियों का उद्देश्य भी यही होता है कि कार्यकर्त्ताओं का उत्साह ठण्डा पड़े॥ ६१॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-११४

६२. तत्त्व का प्रचार लड़कर नहीं किया जा सकता॥ ६२॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-११६

६३. मेरे द्वारा न सत्य की कीमत पर संगठन होगा और न संगठन की कीमत पर सत्य ही छोड़ा जायेगा॥ ६३॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-११८

६४. धार्मिक समाज का काम है वह सत्य का आश्रय ले और संगठन को भी बनाए रखे॥ ६४॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-११८

६५. मुझे ऐसे साथियों की आवश्यकता नहीं, जो उतावले हों॥ ६५॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-११८

६६. मैं सक्रियता के लिए सक्रियता में विश्वास नहीं रखता। कार्य के लिए जो सक्रियता आवश्यक है, वह मेरी दृष्टि में उपादेय है, विधेय भी है, पर मात्र साथियों को बाँधे रखने के लिए आवश्यक-अनावश्यक कुछ-न-कुछ करते रहना मेरी प्रकृति के अनुकूल नहीं है॥ ६६॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-११८

६७. जो मात्र बाहरी सक्रियता से ही बँधते हैं, उन्हें बाँधने से भी क्या होगा? जो तत्त्व से बँधेगा, वही वास्तविक साथी होगा॥ ६७॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-११८

६८. तत्त्वदृष्टि की एकरूपता ही वास्तविक वात्सल्य उत्पन्न करती है॥ ६८॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-११८

६९. धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों के नाम पर अपनी स्वार्थसिद्धि करने वाले लोग तो पग-पग पर मिलेंगे, किन्तु निःस्वार्थभाव से धार्मिक एवं सामाजिक कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता समाज में बहुत कम मिलते हैं॥ ६९॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१२६

७०. दो-चार दिन के उत्सव में दौड़-दौड़कर काम करना अलग बात है और किसी भी धार्मिक व सामाजिक कार्य को सदैव नियमित रूप से निभाना अलग बात॥ ७०॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१२६

७१. जिनका अपना कुछ कार्यक्रम नहीं होता, मात्र दूसरों के अच्छे कार्यों का विरोध करना ही जिनका उद्देश्य होता है; वे लोग उस समय किंकर्त्तव्यविमूढ़ एवं निठल्ले से हो जाते हैं, जबकि जिनका वे विरोध कर रहे थे, वे शान्त व निष्क्रिय हो जाते हैं; क्योंकि उन्हें कुछ दिखता ही नहीं की अब क्या करें॥ ७१॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१३२

७२. दबाने से सत्य अपनी शक्ति और सन्तुलित तैयारी के साथ तेजी से उभरता है; इसलिए तो कहा जाता है कि '**विरोध प्रचार की कुंजी है**'॥ ७२॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१३८

७३. विरोध से होता यह है कि वह बात विरोधियों के माध्यम से उन लोगों तक भी पहुँच जाती है, जिनके पास प्रचारकों के माध्यम से पहुँचना सम्भव नहीं होता; क्योंकि जहाँ प्रचारकों का प्रवेश व पहुँच नहीं होती, वहाँ विरोधियों की होती है॥ ७३॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१३८

७४. जो पक्ष अपनी अन्तर की प्रेरणा से खड़ा होता है, वह तो अमिट होता है; परन्तु जो बाहर से खड़ा किया जाता है, उसके पैरों में इतनी शक्ति और सामर्थ्य नहीं होती जो अधिक टिक सके॥ ७४॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१४०

७५. साधक की भूमिका और व्यक्तित्व द्वैध होते हैं॥ ७५॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१४२

७६. जहाँ एक ओर वे आत्म तत्त्व की प्राप्ति और तल्लीनता के लिए अन्तरोन्मुखी वृत्तिवाले होते हैं, वहीं प्राप्त सत्य को जन-जन तक पहुँचाने के विकल्प से भी वे अलिप्त नहीं रह पाते॥ ७६॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१४२

७७. जब भी क्रान्ति की लहर उठती है तो उसका सहज प्रतिरोध होता है॥ ७७॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१६०

७८. क्रान्ति में अच्छाइयों के साथ-साथ कुछ अनिवार्य बुराइयाँ भी होती हैं; क्योंकि क्रान्ति की लहर में अच्छे-बुरे सभी शामिल हो जाते हैं॥ ७८॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१६०

७९. क्रान्ति के तूफान के वेग में बहे बहुत से अनपढ़ लोग भी प्रवक्ता बन जाते हैं, उनमें जोश तो बहुत होता है, पर होश कम॥ ७९॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१६०

८०. भीड़ की मनोवृत्ति बड़ी विचित्र होती है। वह तो जहाँ मुड़ गई सो मुड़ गई। सत्य की बात तो बहुत दूर, भीड़ तथ्यों की तह में भी नहीं जाती; यही कारण है कि वह प्रचार का शिकार हो जाती है॥ ८०॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१६७

८१. स्वयं शान्त रहने वालों की शांति को भंग कौन कर सकता है॥ ८१॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१७६

८२. अन्तर से शान्त रहने वालों की शान्ति को भंग करने की शक्ति तो किसी में है ही नहीं। सारा लोक भी उलट जाए तो भी उसकी शान्ति में भंग नहीं पड़ सकता॥ ८२॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१७६

८३. जिसके आत्मानुभवी होने में शंका है, उससे तत्संबंधी प्रश्नोत्तरों में समय खराब करने की आत्मार्थी को कहाँ फुर्सत होती है? उसको समाधान भी कहाँ से प्राप्त होगा? जिसकी शंका ही समाधानकर्ता के प्रति शंका से आरम्भ होती है॥ ८३॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-२०८

८४. सम्पूर्ण जगत से दृष्टि हटाकर एक आत्मा में ही दृष्टि केन्द्रित कर देने में जीवन की सार्थकता समझने वाले आत्मार्थीजन एक तो सहज ही सांसारिक गतिविधियों से अलिप्त रहते हैं, अपरिचित रहते हैं, फिर जो गतिविधियाँ अत्यन्त गुप्तरूप से संचालित हों, आत्मार्थियों का उनसे बेखबर रहना तो स्वाभाविक ही है॥ ८४॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-२१२

८५. उत्तेजनात्मक हथकण्डों की उम्र बहुत कम होती है। उत्तेजना में आदमी को अनंत प्रयत्नों के बाद भी बहुत देर तक रखा नहीं जा सकता है॥ ८५॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२१६

८६. समाज को शान्त रखने के लिए प्रयत्नों की आवश्यकता नहीं, पर उत्तेजित रखने के लिए निरन्तर प्रयास चाहिए॥ ८६॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-२१७

८७. निरन्तर के प्रयासों से समाज को उत्तेजित रख पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। तथा यदि रखने का प्रयास किया गया तो अनेक समस्यायें उठ खड़ी होंगी, जिनसे समाज को बचाना सम्भव न होगा॥ ८७॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२१७

८८. इस भौतिकवादी जगत में जहाँ कि सभी लोग पंचेन्द्रियों के विषयों में उलझे हों, उन्हें ही जोड़ने में व्यस्त हों, भोगने में संलग्न हों; वहाँ भोगों से विरत करने वाली आध्यात्मिक ज्योति को जलाए रखना ही दुष्कर है, तो उसके प्रकाश से जन-जन को आलोकित कर देना कोई आसान काम नहीं है ॥ ८८ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२१९

८९. सफलता-असफलता की सब प्रतिक्रियाएँ जनसामान्य पर ही होती हैं, गंभीर व्यक्तित्व वाले महापुरुषों पर इनका कोई प्रभाव लक्षित नहीं होता ॥ ८९ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३३

९०. कोई किसी का शाश्वत विरोधी और मित्र नहीं होता ॥ ९० ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३५

९१. जो आज विरोधी लगता है, कल वही मित्र हो जाता है ॥ ९१ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३५

९२. जो मित्र है, उसे विरोधी होते क्या देर लगती है? यह सब तो राग-द्वेष का खेल है, मिथ्यात्व की महिमा है, वैसे तो सभी आत्मा भगवान स्वरूप हैं ॥ ९२ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३५

९३. यह क्यों कहते हो कि विरोधी कमजोर हो गए हैं, यह कहो न कि उनका विरोध कमजोर हो गया है; अत: अब वे हमारे मित्र बन रहे हैं ॥ ९३ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३५

९४. हमें विरोधियों को नहीं, विरोध को मिटाना है। जब विरोध मिट जायेगा तो विरोधी ही मित्र बन जावेंगे ॥ ९४ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३५

९५. झगड़े-टंटे नहीं होने से या कम हो जाने से आत्मार्थियों को सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि वे अब निर्विघ्नरूप से आत्मसाधना और तत्त्वाभ्यास कर सकते हैं, तत्त्वप्रचार की गतिविधियाँ भी निर्विघ्न चल सकती हैं ॥ ९५ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३५

९६. विरोधियों का बिखर जाना कोई विजय ही नहीं है, यह तो नकारात्मक पहलू है॥ ९६॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३५

९७. विरोध का समाप्त हो जाना भी पूरी विजय नहीं है; अपितु उसका सत्य के प्रति, तत्त्व के प्रति प्रेम हो जाना ही सच्ची विजय होगी॥ ९७॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३५

९८. समाज में एकता स्थापित हो जाना, कोई वैर-विरोध नहीं रहना ही सच्चा सामाजिक लाभ है॥ ९८॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३६

९९. खुशियाँ ही मनाना है तो इसप्रकार मनाओ कि जिससे अभी तक हमसे दूर रहे लोग भी हमारे समीप आवें, समीप आने में संकोच न करें॥ ९९॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३६

१००. आवश्यकता तो इस बात की है कि हम खुशियाँ मनाने के चक्कर में कहीं अपने ध्येय से विचलित न हो जावें, भटक न जावें॥ १००॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३६

१०१. तनावों से वातावरण विषाक्त बनता है और विषाक्त वातावरण मानसिक शान्ति भंग कर देता है॥ १०१॥— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-६३

१०२. क्रान्ति तो एक आँधी है, जो धूल उड़ाती आती है और सड़ी-गली पुरानी व्यवस्था उखाड़ती-पछाड़ती चली आती है॥ १०२॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३७

१०३. नई सही व्यवस्था तो शान्तिकाल में ही जमती है। यदि क्रान्ति से सच्चा लाभ लेना है, तो क्रान्ति के बाद सहज प्राप्त होनेवाले शान्तिकाल का सही उपयोग कर लेना ही बुद्धिमानी है॥ १०३॥ — सत्य की खोज़, पृष्ठ-२३७

१०४. क्रान्ति में हृदय-पक्ष की प्रधानता रहती है, भावना-पक्ष प्रधान रहता है, पर शान्तिकाल में बुद्धि की परीक्षा की घड़ी आती है॥ १०४॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३७

१०५. क्रान्ति विध्वंस करती है और शान्ति निर्माण॥ १०५॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-२३७

१०६. यदि सड़ी-गली व्यवस्था के विध्वंस के बाद हम नई व्यवस्था स्थापित नहीं कर सके तो उस क्रान्ति से कोई लाभ नहीं, अपितु हानि ही होगी॥ १०६॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३७

१०७. सड़ी-गली व्यवस्था के विध्वंस करने वालों की यह जिम्मेदारी भी है कि वे नई व्यवस्था स्थापित करें॥ १०७॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-२३७

१०८. अभिनन्दन के वास्तविक पात्र तो वीतरागी-सर्वज्ञ भगवान ही हैं; जिन्होंने मोह-राग-द्वेष को पूर्ण जीत लिया और सर्वज्ञता प्राप्त कर ली है॥ १०८॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३९

१०९. अज्ञान के कारण जो अभी तक तत्त्व का — सत्य का विरोध करते थे, वे सब भूले-भटके हमारे भाई ही तो हैं। आज यदि उन्हें समझ आ रही है, उनका भ्रम भंग हो गया है, तो हमें गले लगाकर उनका स्वागत करना चाहिए॥ १०९॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२४१

११०. धर्मनिरपेक्ष बनने से हम धर्म से तो दूर हो गये, पर उसकी कीमत पर भी एकता नहीं ला सके॥ ११०॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२४३

१११. किसी भी काम में सफलता प्राप्त करने के लिए शान्ति और प्रेम का रास्ता यद्यपि लम्बा रास्ता है, इसमें प्रतिद्वन्द्वी को नहीं उसके हृदय को जीतना पड़ता है, जीत कर उसे समाप्त नहीं किया जाता, अपितु अपना बनाया जाता है; तथापि टिकाऊ और वास्तविक सफलता प्राप्त करने का एकमात्र रास्ता यही है॥ १११॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-२४७

११२. संगठन के लिए एक ऐसा व्यक्तित्व चाहिए जो सबको साथ लेकर चल सके और जिसके व्यक्तित्व के आधार पर लोग संगठित हो सकें॥ ११२॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२४८

११३. भाई! यह धर्म का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि लोग उसके नाम पर लड़ते हैं॥ ११३॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२५०

११४. धर्म तो कभी लड़ना नहीं सिखाता, पर लोग अपनी स्वार्थसिद्धि हेतु धर्म के नाम पर लड़ते हैं॥ ११४॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२५०

११५. लड़ाती कषाय है, स्वार्थ है और बदनाम धर्म होता है॥ ११५॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२५०

११६. सामाजिक संगठन और शान्ति बनाए रखना और सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त प्रगतिशील समाज की स्थापना ही तो इस बहुमूल्य नरभव की सार्थकता नहीं है; इस मानव जीवन में तो आध्यात्मिक सत्य को खोजकर, पाकर, आत्मिक शान्ति प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करना ही वास्तविक कर्त्तव्य है॥ ११६॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२५२

११७. अपनी वासनाओं को, कषायों को मारना; विकारों को जीतना ही वास्तविक वीरता है॥ ११७॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१८३

११८. शिक्षण त्रिमुखी प्रक्रिया है। उसके तीन केन्द्र बिन्दु होते हैं— शिक्षक, छात्र और विषय। इन तीनों में सम्बन्ध स्थापित करना ही शिक्षण है॥ ११८॥ — वी. वि. प्र. निर्देशिका, पृष्ठ-११

११९. नितान्त अनभिज्ञ छात्रों को वांछित विषय हृदयंगम करा देना सहज कार्य नहीं है। इसके लिए अध्यापक का जागरुक, मननशील व मनोवैज्ञानिक होना आवश्यक है॥ ११९॥ — वी. वि. प्र. निर्देशिका, पृष्ठ-११

१२०. व्यक्तिगत उपलब्धियों का सामाजिक उपयोग न तो उचित ही है और न आवश्यक ही॥ १२०॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-६

१२१. सम्प्रदाय में रहकर सम्प्रदाय के साथियों को सत्य समझाना सरल होने पर भी उनमें क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना संभव नहीं है॥ १२१॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३६

१२२. भौतिकधारा का प्रवाह पूर्ण स्वच्छन्दता की ओर अग्रसर है, जिसकी चरम परिणति से सारा विश्व त्रस्त है॥ १२२॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-४२

१२३. यदि हम चाहते हैं कि हमारी भावी पीढ़ियों में भी धार्मिक संस्कार रहें तो हमें अपने जीवन को संयमित करना होगा, क्योंकि भावी पीढ़ी जितना अपने पूर्वजों के आचार-व्यवहार को देखकर सीखती है, कहने-सुनने मात्र से उसका शतांश भी उनके जीवन में नहीं आता॥ १२३॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-८७

१२४. मित्र रागियों के होते हैं और शत्रु द्वेषियों के, वीतरागियों के कौन मित्र और कौन शत्रु॥ १२४॥ — वी. भ. महावीर, पृष्ठ-१४

१२५. विरोधियों की एक आदत होती है विद्यमान गुणों की चर्चा तक न करना और अविद्यमान अवगुणों की बढ़ा-चढ़ाकर चर्चा करना॥ १२५॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२५

१२६. सामाजिक जीवन में विषमता रहते कभी कोई वर्ग सुखी और शान्त नहीं रह सकता॥ १२६॥ — ती. भ. महावीर, पृष्ठ-११

१२७. सामाजिक जीवन में विषमता रहते अहिंसा नहीं पनप सकती॥ १२७॥

— ती. भ. महावीर, पृष्ठ-११

१२८. व्यक्ति की ऊँचाई का आधार उसकी योग्यता और आचार-विचार है, न कि जन्म॥ १२८॥ — ती. भ. महावीर, पृष्ठ-१२

१२९. शब्दों की भाषा से मौन की भाषा किसी भी रूप में कमजोर नहीं होती, बस उसे समझने वाले चाहिए॥ १२९॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१७

१३०. राजनीति अपना रस सब जगह से ग्रहण करती है। देश की अखण्डता के लिए मात्र जमीन ही जीतना जरूरी नहीं होता, जनता का दिल भी

जीतना होता है। धर्मप्राण जनता धार्मिक सद्भाग्य से ही समर्पित होती है — सम्राट को यह नहीं भूलना चाहिए॥ १३०॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२९

१३१. आपके चाहने न चाहने से क्या होता है? सौभाग्य का उदय हो तो लाभ होता ही है॥ १३१॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३०

१३२. अनुयायी कभी साथ नहीं देते, उनका काम तो अनुसरण करना है॥ १३२॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३७

१३३. लोक में जितनी भी हत्याएँ और आत्महत्याएँ होती हैं, उनमें से अधिकांश क्रोधावेश में ही होती हैं॥ १३३॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३

१३४. क्या दम है नाम की अमरता में? एक नाम के अनेक व्यक्ति होते हैं, भविष्य में कौन जानेगा यह किसका नाम था॥ १३४॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५६

१३५. समाज में त्याग धर्म के सच्चे स्वरूप का प्रतिपादन करनेवाला विद्वान् बड़ा पण्डित नहीं, बल्कि वह पेशेवर पण्डित बड़ा पण्डित माना जाता है, जो अधिक से अधिक चन्दा करा सके॥ १३५॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२८

१३६. यह उस देश का, उस समाज का दुर्भाग्य ही समझो, जिस देश व समाज में पण्डित व साधुओं के बड़प्पन का नाप ज्ञान और संयम से न होकर दान के नाम पर पैसा इकट्ठा करने की क्षमता के आधार पर होता है॥ १३६॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२८

१३७. जिस दिन जैन समाज से सदाचार उठ जायेगा, उस दिन उसकी भी वही दशा होगी जो व्यसनी समाज की होती है॥ १३७॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५०

१३८. जिन मन्दिरों के निर्माण और पंचकल्याणकों पर प्रतिबन्ध लगाने के स्थान पर उनमें समागत विकृतियों का परिमार्जन किया जाना अधिक जरूरी है, उनका उपयोग वीतरागी धर्म के समुचित प्रचार-प्रसार में किया जाना ही सही मार्ग है ॥ १३८ ॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-५

१३९. इस जगत में बुराइयों की तो कमी नहीं है, सर्वत्र कुछ-न-कुछ मिल ही जाती हैं, पर बुराइयों को न देखकर अच्छाइयों को देखने की आदत डालना चाहिए। अच्छाइयों की चर्चा करने का अभ्यास करना चाहिए॥ १३९ ॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-८७

१४०. चर्चा तो वही अपेक्षित होती है, जिससे कुछ अच्छा समझने को मिले, सीखने को मिले॥ १४० ॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-८७

१४१. विज्ञान के बढ़ते प्रभाव ने धार्मिक आस्थाओं पर गहरी चोट की है और होटल संस्कृति के विकास ने शाकाहार पर कुठाराघात किया है ॥ १४१ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१२

१४२. हमारी उपासना की हर क्रिया के पीछे वैज्ञानिक कारण विद्यमान है। कोरा क्रियाकाण्ड कहकर हँसी उड़ाने की अपेक्षा उसकी गहराई में जाना आवश्यक है ॥ १४२ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१६

१४३. विज्ञान की इस दौड़ को पीछे ढकेलना संभव नहीं है, इसकी आवश्यकता भी नहीं है, आवश्यकता इसके सदुपयोग की है, जो धर्म के मार्गदर्शन बिना संभव नहीं है ॥ १४३ ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२७

१४४. आध्यात्मिक चर्चाओं द्वारा हम स्वयं का और समाज का मनोरंजन तो करते हैं, पर सम्यक् श्रद्धान के अभाव में भगवान होने का सही लाभ प्राप्त नहीं होता, आत्मानुभूति नहीं होती, सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं होती, आकुलता समाप्त नहीं होती॥ १४४ ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-७९

१४५. सम्प्रदायों में विभक्त जैनत्व, जो आज साम्प्रदायिक सड़ाँध पैदा कर रहा है, कलह का कारण बन रहा है, यदिं वह उन्मुक्त हो जावे तो अपनी पावनता को तो सहज उपलब्ध कर ही लेगा, अपनी पवित्रता की शक्ति से जैन समाज को ही नहीं सम्पूर्ण दुनिया को प्रकाशित कर देगा, सुख-शान्ति का मार्ग प्रशस्त करेगा॥ १४५॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१२२

१४६. सामाजिक एकता के लिए विशाल दृष्टिकोण से कार्य करना होगा और ऐसा समाधान खोजना होगा, जो संबंधित सभी शक्तियों को स्वीकार हो सके, अन्यथा एकता संभव नहीं हो सकती॥ १४६॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१३२

१४७. समझौते का रास्ता अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी होते हुए भी सहज व सरल नहीं होता; इसमें हमारी बुद्धि, क्षमता, सामाजिक पकड़, धैर्य सभी कसौटी पर चढ़ जाते हैं॥ १४७॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१३२

१४८. व्यक्ति विशेष की महिमा से सम्प्रदाय पनपते हैं और गुणों की महिमा से धर्म की वृद्धि होती है॥ १४८॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१८५

१४९. अव्यवस्थित मतिवाले को जगत अव्यवस्थित नजर आता है, यदि गम्भीरता से विचार करें तो पता चल सकता है कि जगत को व्यवस्थित नहीं करना है, वह तो व्यवस्थित ही है, मुझे अपनी मति व्यवस्थित करनी है॥ १४९॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-६४

१५०. यदि हम शान्ति से रहना चाहते हैं तो हमें दूसरों के अस्तित्व के प्रति सहनशील बनना होगा॥ १५०॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-६०

१५१. किसी का मन तलवार की धार से नहीं पलटा जा सकता॥ १५१॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-६४

१५२. जिनवाणी का गहराई से अध्ययन नहीं करना ही तात्त्विक विवादों का मूल कारण है ॥ १५२ ॥ — निमित्तोपादान, पृष्ठ-२३

१५३. सत्समागम में रहना तो अच्छा है, पर उसके लिए भी व्यग्र होने की आवश्यकता नहीं है ॥ १५३ ॥ — निमित्तोपादान, पृष्ठ-३१

१५४. जिसप्रकार सत्समागम के महत्त्व को अस्वीकार करने में हानि है, उससे अधिक हानि उसे आवश्यकता से अधिक महत्त्व देने में है ॥ १५४ ॥ — निमित्तोपादान, पृष्ठ-३२

१५५. दुनियादारी में उलझानेवाले, जगत के प्रपंच में फँसाने वाले पुरुष कितने ही सज्जन क्यों न हों, सत्पुरुष नहीं हैं ॥ १५५ ॥

— निमित्तोपादान, पृष्ठ-३४

१५६. आध्यात्मिक लोग कोई अलग नहीं होते, उनके अलग गाँव नहीं बसे हैं; जो लोग सच्चा सुख चाहते हैं, शान्ति के इच्छुक हैं, अपनी आत्मा को जानना-पहिचानना चाहते हैं, इस दिशा में प्रयत्नशील हैं, सक्रिय हैं, सज्जन हैं, वे सभी आध्यात्मिक हैं ॥ १५६ ॥

— निमित्तोपादान, पृष्ठ-४४

१५७. धर्म करने के लिए जाति की कोई शर्त नहीं है, भगवान आत्मा के अनुभव करने की शर्त अवश्य है ॥ १५७ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-६४

१५८. न जहाँ सरकार का प्रवेश है और न जहाँ समाज की चलती है, धर्म का काम वहाँ से प्रारम्भ होता है ॥ १५८ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-७८

१५९. मोह-राग-द्वेष की ज्वाला शान्त हो, इसके लिए धर्म, धार्मिक आस्था और धार्मिक आदर्शों से अनुप्रेरित जीवन का होना अत्यन्त आवश्यक है ॥ १५९ ॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१७७

१६०. शत्रु और मित्रों के समान शत्रुता और मित्रता भी शाश्वत नहीं होती॥ १६०॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२१३

१६१. स्वभाव से तो सभी भगवान हैं, पर जो पर्याय से भी वर्तमान में हमें भगवान कहता है, उसने हमें भगवान नहीं बनाया, वरन् अपनी मूर्खता व्यक्त की है॥ १६१॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०८

१६२. खून का धब्बा खून से नहीं धुलता। उत्तेजना, उत्तेजना से शान्त नहीं होती॥ १६२॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-११५

१६३. सामाजिक एकता भी सामाजिक जीवन का परमसत्य है॥ १६३॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२४२

१६४. ज्ञानी होने की घोषणाएँ भी सस्ती लोकप्रियता अर्जित करने की ही वृत्ति है, प्रवृत्ति है॥ १६४॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१६५

१६५. अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण के मूल में भी लोलुपता अर्थात् राग ही कार्य करता है॥ १६५॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-८६

१६६. किसी में मिलने में स्वयं को मिटा देना होता है॥ १६६॥ — बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-७९

१६७. बाड़े का बंधन असह्य प्रतीत होने पर भी बाड़े की सीमा का उल्लंघन करने की कल्पना भी सामान्यजनों को कँपा देती है॥ १६७॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३६

१६८. सशंकित और भयाक्रान्त व्यक्ति कभी भी निराकुल नहीं हो सकता॥ १६८॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४२

१६९. एक झूठ को सौ बार दुहरा जाइए, सच-सा लगने लगता है॥ १६९॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१६७

१७०. जहाँ कर्तावादी दार्शनिकों के द्वारा जगत ईश्वरकृत होने से सादि स्वीकार किया गया है, वहाँ अकर्तावादी या स्वयं कर्तावादी जैनदर्शन

के अनुसार यह विश्व अनादि अनंत है, इसे न तो किसी ने बनाया है और न ही कोई इसका विनाश कर सकता है, यह स्वयं सिद्ध है॥ १७०॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२०४

१७१. बिना मूलतत्त्व के अभ्यास के यदि एक अंधश्रद्धा छूट भी गई तो दूसरी उत्पन्न हो जावेगी॥ १७१॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-२६

१७२. भयाक्रान्त व्यक्ति की विचार शक्ति क्षीण हो जाती है॥ १७२॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-३६

१७३. कर्ता-कर्म सम्बन्ध सर्वाधिक परतन्त्रता का सूचक है॥ १७३॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२०२

१७४. प्रत्येक द्रव्य अपनी परिणति का स्वयं कर्ता है॥ १७४॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२०२

१७५. पात्र जिज्ञासु जीव को दिया गया तत्त्वोपदेश ऊसर भूमि में पड़े हुए बीज के समान व्यर्थ नहीं जाता, सार्थक और सफल होता है॥ १७५॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-९४

साहित्य के नाम पर कलंक है

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, पर यह नहीं भूलना चाहिए कि साहित्य मात्र दर्पण नहीं; दीपक भी है, मार्गदर्शक भी है, प्रेरक भी है। जो साहित्य प्रकाश न.बिखेरे, मार्गदर्शन न करे, सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा न दे; मात्र वर्तमान समाज का कुत्सित चित्र प्रस्तुत करे या मनोरंजन तक सीमित रहे, वह साहित्य साहित्य नहीं, साहित्य के नाम पर कलंक है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-४३

२

शाश्वत सत्य

१. बिन्दु की सुरक्षा भी सिन्धु में समा जाने में ही है; क्योंकि सिन्धु से बिछुड़ने पर बिन्दु का विनाश निश्चित ही है ॥ १७६ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२३

२. संयोगों की क्षणभंगुरता, अशरणता एवं निरर्थकता का भान हुए बिना दृष्टि संयोगों पर से नहीं हटेगी ॥ १७७ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५५

३. जैनधर्म कोई मत या सम्प्रदाय नहीं है, वह तो वस्तु का स्वरूप है, वह एक तथ्य है, परमसत्य है ॥ १७८ ॥ — ती.भ. महावीर, पृष्ठ-३

४. पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने का मार्ग स्वावलंबन है ॥ १७९ ॥

— ती.भ. महावीर, पृष्ठ-९

५. अपने बल पर ही स्वतन्त्रता प्राप्त की जा सकती है ॥ १८० ॥

— ती.भ. महावीर, पृष्ठ-९

६. अनन्त सुख और स्वतन्त्रता भीख में प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं है, और न उसे दूसरों के बल पर ही प्राप्त किया जा सकता है ॥ १८१ ॥

— ती.भ. महावीर, पृष्ठ-९

७. दूसरों के परिणमन या कार्य में हस्तक्षेप करने की भावना ही मिथ्या, निष्फल और दु:ख का कारण है; क्योंकि सब जीवों का जीवन-मरण, सुख-दु:ख स्वयंकृत व स्वयंकृत कार्य का फल है ॥ १८२ ॥

— ती.भ. महावीर, पृष्ठ-१४

८. एकता का आधार समानता ही हो सकती है ॥ १८३ ॥

— ती.भ. महावीर, पृष्ठ-१६

९. व्यक्ति विशेष की आराधना करने वाला धर्म सार्वकालिक नहीं हो सकता, सार्वभौमिक नहीं हो सकता और सार्वजनिक भी नहीं हो सकता ॥ १८४ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१८४

१०. सम्यग्दर्शन-ज्ञानप्रधान चारित्र ही धर्म है और साम्यभावरूप वीतराग चारित्र से परिणत आत्मा ही धर्मात्मा है ॥ १८५ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-५६

११. भय का वातावरण अज्ञान और कषाय से बनता है ॥ १८६ ॥

— क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-९८

१२. जबतक कोई दर्शन समग्र वस्तु व्यवस्था पर प्रकाश नहीं डालता, तबतक 'दर्शन' नाम प्राप्त नहीं कर सकता ॥ १८७ ॥

— प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१७९

१३. मलिनता की सीमा मात्र भ्रम तक ही है, मान्यता तक ही है ॥ १८८ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-२८

१४. परिचित से अपरिचित की ओर, अनुभूत से अननुभूत की तरफ जाना ही सहज होता है ॥ १८९ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२

१५. अपनी आत्मा की पूर्ण शक्तियों को पहिचान कर उनके आश्रय से जगत के सामने दीन न होना ही स्वाभिमान है ॥ १९० ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३५

१६. विश्व का कभी नाश नहीं होता, मात्र परिवर्तन होता है ॥ १९१ ॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-९१

१७. अपनत्व टूट जाने से अपनापना समाप्त नहीं हो जाता ॥ १९२ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-२६

१८. अंधश्रद्धा तर्क स्वीकार नहीं करती॥ १९३॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-३६

१९. भावुकता से तथ्य नहीं बदला करते॥ १९४॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३३

२०. निर्णय न्याय से ही सम्भव है॥ १९५॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१४१

२१. कर्त्तव्य की ठोकर, बुद्धि ही बर्दाश्त कर सकती है, हृदय नहीं॥ १९६॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२९

२२. अपराधी को दण्ड देते समय न्यायाधीश को उसके गुणों और उपयोगिता पर ध्यान नहीं देना चाहिए॥ १९७॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१९

२३. शरीर का घाव तो समय पाकर भर जाता है, पर मन के घाव का भरना सहज नहीं होता॥ १९८॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-५३

२४. बिना नैतिक और धार्मिक जीवन के आध्यात्मिक साधना संभव नहीं है॥ १९९॥ — प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१३८

२५. किसी भी अच्छे कार्य को करना जितना कठिन एवं श्रमसाध्य है, बिगाड़ना उतना ही सरल एवं सहज है॥ २००॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१०७

२६. हार-जीत का निर्णय सत्य-असत्य से होता ही कब है? वह तो शक्ति-अशक्ति के आधार पर होता है॥ २०१॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१८

२७. 'अपनी मदद आप करो'— यही महासिद्धान्त है॥ २०२॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१५७

२८. सफलता उत्साह को बढ़ाती है और असफलता उत्साह भंग करती है॥ २०३॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२९

२९. सफलता संगठन और असफलता विघटन की जननी है॥ २०४॥
— सत्य की खोज, पृष्ठ-१८६

३०. गहरी और सच्ची लगन के बिना जगत में कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता॥ २०५॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१६८

३१. संघर्ष अशान्ति का कारण है और उसमें हिंसा अनिवार्य है॥ २०६॥
— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१८३

३२. अपवादों के अनुसार जगत का व्यवहार नहीं चलता॥ २०७॥
— निमित्तोपादान, पृष्ठ-२७

३३. महापुरुषों की 'हाँ' कोई 'ना' में नहीं बदल सकता और न 'ना' को 'हाँ' में ही बदल सकता है॥ २०८॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-३९

३४. वाणी विचारों की वाहक है॥ २०९॥ — ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-६७

३५. अन्दर में पात्रता हो तो भाषा कोई समस्या नहीं है॥ २१०॥
— गागर में सागर, पृष्ठ-३७

३६. प्रत्येक सिद्धांत तभी मान्य होता है, जब वह प्रयोगों में खरा उतरे॥ २११॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१८४

३७. चाह आज तक किसी की भी पूरी नहीं हुई॥ २१२॥
— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३०

३८. रुचि की प्रतिकूलता में सद्भाग्य भी दुर्भाग्यवत् फलते हैं॥ २१३॥
— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२७

३९. आपके चाहने न चाहने से क्या होता है? सौभाग्य का उदय हो तो लाभ मिलता ही है॥ २१४॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३०

४०. गलत प्रस्तुतिकरण सत्य बात को भी विकृत कर देता है॥ २१५॥
— सत्य की खोज, पृष्ठ-४९

४१. समझ अन्दर से आती है, बाहर से नहीं॥ २१६॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१४४

४२. निजत्व बिना सर्वस्व समर्पण नहीं होता॥ २१७॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-२१

४३. स्वभाव दूसरों के द्वारा प्रश्न करने योग्य नहीं होता॥ २१८॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-८२

४४. पाप के उदय से कोई पापी और पुण्य के उदय से कोई पुण्यात्मा नहीं होता; पापभाव करे सो पापी, पुण्यभाव करे सो पुण्यात्मा और धर्मभाव करे सो धर्मात्मा होता है॥ २१९॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५४

४५. श्रेष्ठ वह है जो न तो अपकार करता है और न उपकार करता है॥ २२०॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१७४

४६. क्रान्ति का वास्तविक लाभ तो शान्तिकाल में ही प्राप्त होता है॥ २२१॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३६

४७. जहाँ रुचि होती है, दृष्टि वहाँ जाती है॥ २२२॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-४३

४८. वियोग होना संयोगों का सहज स्वभाव है॥ २२३॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१६

४९. ऐसा कौनसा दुष्कर्म है, जो अपमानित मानियों के लिए अकृत्य हो॥ २२४॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१७

५०. अपमानित मानी क्रोधित भुजंग एवं क्षुधातुर मृगराज से भी अधिक दु:साहसी हो जाता है॥ २२५॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१७

५१. कोई व्यक्ति ड्रेस से महान नहीं होता है, अपितु अपने विचारों से महान होता है॥ २२६॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-६९

५२. समानता ही सर्वोदय का मूल आधार है ॥ २२७ ॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-९६

५३. पात्रता ही पवित्रता की जननी है ॥ २२८ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-३७

५४. दृष्टि के अन्तर्मुख होते ही समस्त शुभभाव के विकल्पजाल प्रलय को प्राप्त हो जाते हैं ॥ २२९ ॥ — मैं कौन हूँ ?, पृष्ठ-१६

५५. दु:ख का कारण बुरा कार्य ही पाप है ॥ २३० ॥

— बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-१०

५६. प्रयोजनभूत तत्त्वों के विषय में बोला गया झूठ तो महान पाप है, अनन्त संसार का कारण है, अपना और पर का बड़ा भारी अहित करने वाला है ॥ २३१ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८०

५७. अशान्त चित व्यक्ति कोई भी कार्य सही रूप में एवं सफलतापूर्वक नहीं कर सकता है, फिर धर्म की साधना और आत्मा की आराधना तो बहुत दूर की बातें हैं ॥ २३२ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४२

५८. धार्मिक आदर्श भी ऐसे होने चाहिए, जिनका संबंध जीवन की वास्तविकताओं से हो ॥ २३३ ॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१७८

५९. जीवन में समन्वयवृत्ति, सह-अस्तित्व की भावना एवं सहिष्णुता अति आवश्यक है ॥ २३४ ॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१८२

अपमान की बात कहाँ

कोई किसी के लिए कुछ नहीं कर सकता। पर इसमें दिगम्बरत्व के अपमान की बात कहाँ से आ गई? दिगम्बर धर्म आत्मा का धर्म है, शरीर का नहीं। शरीर के विकृत होने से दिगम्बर धर्म का अपमान कैसे हो सकता है ?

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-४४

अमृत कण

१. आत्माराधना एवं लोक कल्याण में समुचित समन्वय स्थापित कर, सुविचारित सन्मार्ग पर स्वयं चलने वाले एवं जगत को ले जाने वाले समर्थ पुरुष विरले ही होते हैं ॥ २३५ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-११७

२. पंथव्यामोह में फँसे लोगों को जितनी चिन्ता येन-केन-प्रकारेण अपने पंथ के प्रचार की रहती है, उतनी मूल जिनधर्म की नहीं, अपने आत्मा के हित-अहित की भी नहीं ॥ २३६ ॥ — प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२५४

३. वास्तविक सेवा तो स्व और पर को आत्महित में लगाना है ॥ २३७ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११०

४. मुक्ति के मार्ग का उपदेश ही हितोपदेश है ॥ २३८ ॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१२०

५. आत्मानुभव की प्रेरणा देना ही सच्चा पाण्डित्य है ॥ २३९ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-३८

६. महापुरुषों की वृत्ति और प्रवृत्ति अत्यन्त सरल और सहज होती है ॥ २४० ॥ — पं.प्र. महोत्सव, पृष्ठ-३७

७. लिखने से पहले लखना, देखना, अनुभव करना, अत्यन्त आवश्यक है ॥ २४१ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-७९

८. जो व्यक्ति अपनी वाणी का सदुपयोग करता है, समाज उसका सम्मान करता है और जो दुरुपयोग करता है, उसकी उपेक्षा या अपमान ॥ २४२ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-७८

९. जिसमें सबको उन्नति के समान अवसर प्राप्त हों, प्रत्येक व्यक्ति सर्वोच्च पद प्राप्त कर सके, सबको पूर्ण सुखी और ज्ञानी होने का पूर्ण अधिकार हो, वही सिद्धान्त सर्वोदय है ॥ २४३ ॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-९६

१०. अखण्ड आत्मा की उपलब्धि ही जीवन की सार्थकता है ॥ २४४ ॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३२

११. आत्महित का मार्ग तो सहज का धंधा है ॥ २४५ ॥

— निमित्तोपादान, पृष्ठ-३६

१२. उपयोग का आत्मसन्मुख होना ही आत्मा की सच्ची उपासना है ॥ २४६ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१९८

१३. दृष्टि के सम्पूर्णत: निर्भार हुए बिना अन्तर प्रवेश सम्भव नहीं ॥ २४७ ॥

— क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-३३

१४. विषय-कषाय का अभिलाषी वीतरागता का उपासक हो ही नहीं सकता ॥ २४८ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२२

१५. विकल्पों में उलझना आत्महित की दृष्टि से हितकर नहीं और उचित भी नहीं ॥ २४९ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-९७

१६. आत्मरुचि, भगवान आत्मा और आत्मज्ञ सत्पुरुष की शोध की ओर पुरुषार्थ को प्रेरित करती है ॥ २५० ॥

— निमित्तोपादान, पृष्ठ-३६-३७

१७. देह से अत्यन्त भिन्न, स्वभाव से ही परम पवित्र निज भगवान आत्मा की साधना-आराधना करना ही इस मानव जीवन में एकमात्र करने योग्य कार्य है ॥ २५१ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-९३

१८. मनुष्य भव की सार्थकता एकमात्र त्रिकाली ध्रुव आत्मा के आश्रय से उत्पन्न सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय धर्म की प्राप्ति में ही है ॥ २५२ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१८

१९. आत्महित के लिए संयोगी पर्यायों पर दृष्टि केन्द्रित करना उपयोगी नहीं; अपितु उन पर से दृष्टि हटाना आवश्यक है, दृष्टि को पर्यायों पर से हटाकर स्वभावसन्मुख करना आवश्यक है ॥ २५३ ॥

— बा.भा. अनुशीलन पृष्ठ-२२

२०. आनन्द प्राप्ति के मार्ग में भोग का कोई स्थान नहीं है ॥ २५४ ॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१७९

२१. आध्यात्मिक धारा त्यागमय धारा है ॥ २५५ ॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१७९

२२. जिन्हें विषयों में रति है, उन्हें दु:खी ही जानो ॥ २५६ ॥

— आ.कुंद. परमागम, पृष्ठ-५८

२३. नाशाग्रदृष्टि, आत्मदर्शन और अप्रमाद की प्रतीक है ॥ २५७ ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२२६

२४. श्रावक धर्म योगपक्ष और भोगपक्ष का अस्थाई समझौता है ॥ २५८ ॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-४२

२५. भारतीय संस्कृति की प्रत्येक क्रिया के पीछे सुविचारित वैज्ञानिक कारण है ॥ २५९ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१४

२६. तत्त्वविचार की श्रेणी में आत्मखोज संबंधी शुभभाव ही आते हैं, अन्य नहीं ॥ २६० ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-१४

२७. हथियार तो मृत्यु के उपकरण हैं, जीवन के नहीं ॥ २६१ ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१०७

२८. हथियार सुरक्षा के साधन नहीं, मौत के ही सौदागर हैं ॥ २६२ ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१०९

२९. शस्त्र सुरक्षा के साधन नहीं हैं; अपितु मौत के ही मौन आमंत्रण हैं॥ २६३॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१०८

३०. हस्तक्षेप की भावना ही आक्रमण को प्रोत्साहित करती है॥ २६४॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-६२

३१. आक्रमण प्रत्याक्रमण को जन्म देता है॥ २६५॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-६२

३२. तत्त्वदृष्टि की एकरूपता ही वास्तविक वात्सल्य उत्पन्न करती है॥ २६६॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-११८

३३. रागसम्बन्धी विकृति भोगों में प्रकट होती है और द्वेषसम्बन्धी विद्रोह में॥ २६७॥ — वी.भ. महावीर, पृष्ठ-७

३४. मृत्यु विनाश हो सकती है; हत्या नहीं, हिंसा नहीं॥ २६८॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-९४

३५. अहिंसक जगत में मृत्यु का नहीं, हत्याओं का अभाव ही अपेक्षित रहता है॥ २६९॥ — अहिंसा म. दृष्टि में, पृष्ठ-३५

३६. जैनदर्शन का मार्ग पूर्ण स्वाधीनता का मार्ग है॥ २७०॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२१८

३७. जैनतत्त्व के प्रतिपादन और उपदेश का मुख्य उद्देश्य सुख की प्राप्ति और दु:ख का नाश रहा है॥ २७१॥ — ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-९३

३८. पर का सहयोग भी एक प्रकार का हस्तक्षेप ही है॥ २७२॥ — प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२९४

३९. संयोग पररूप ही होते हैं॥ २७३॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१०२

४०. विषयों में उलझाने में निमित्त होने से इन्द्रियाँ संयम में बाधक ही हैं; साधक नहीं॥ २७४॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८९

४१. पर में यह अपनत्व, पर के प्रति यह राग ही, सही निर्णय में सबसे बड़ी बाधा है॥ २७५॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-६१

४२. स्वयं में सिमटना ही सबसे बड़ा कार्य है, मिथ्यात्व के नाश का एक मात्र उपाय है ॥ २७६ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-३५

४३. 'भूल मात्र एकसमय की भूल है, पर मैं भूल नहीं हूँ।' - यह नहीं समझना ही सबसे बड़ी भूल है ॥ २७७ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-१९

४४. पर के कर्तृत्व में सभी विकल्प नपुंसक ही होते हैं; उनसे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं ॥ २७८ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१५

४५. पर से एकत्व और ममत्व तोड़ने का एकमात्र उपाय प्रत्येक वस्तु की स्वतंत्र सत्ता का सम्यक् बोध ही है ॥ २७९ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-८२

४६. सापेक्षता (सहितता) ही अशुद्धता है और निरपेक्षता (रहितता) ही शुद्धता है ॥ २८० ॥ — प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२२१

४७. वही परम पवित्र होता है, वही पतित पावन होता है; जिसके आश्रय से पवित्रता प्रगट होती है, पतितपना नष्ट होता है ॥ २८१ ॥

— प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१०८

४८. जो स्वयं स्वभाव से पवित्र है, जिसे पवित्र होने की आवश्यकता नहीं, जो सदा से ही पवित्र है; उसके आश्रय से ही पवित्रता प्रकट होती है ॥ २८२ ॥ — प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१०८

४९. अद्भुत सत्य का आनन्द मात्र बातों से आने वाला नहीं है, अन्तर में परमसत्य के साक्षात्कार से ही अतीन्द्रिय आनन्द का दरिया उमड़ेगा ॥ २८३ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-८७

५०. जानना आसान है, पर पहिचानना नहीं; क्योंकि पहिचानने में जो गहराई है, वह जानने में कहाँ ॥ २८४ ॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-५०

५१. यह भव, भव का अभाव करने के लिए है, किसी पक्ष या सम्प्रदाय के पोषण के लिए नहीं॥ २८५॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३९

५२. वस्तु नहीं, मात्र दृष्टि बदलनी है। दृष्टि बदल जाएगी तो सृष्टि स्वयं बदल जाएगी॥ २८६॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-४३

५३. वह जन्म तो कल्याणस्वरूप ही है, जिसमें जन्म-मरण के नाश करने का अपूर्व पुरुषार्थ किया जाता है॥ २८७॥

— पं.प्र. महोत्सव, पृष्ठ-२५

५४. स्वभावभावों में तो पर का कर्तृत्व है ही नहीं, विभावभावों में भी पर के कर्तृत्व का निषेध किया गया है॥ २८८॥

— निमित्तोपादान, पृष्ठ-१८

५५. अकर्तावादी दृष्टिकोण का एकमात्र सच्चा फल दृष्टि का स्वभावसन्मुख होना ही है॥ २८९॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-३९

५६. मान्यता का सम्बन्ध सीधा वस्तुस्वरूप से और वाणी का व्यवहार लौकिकजनों से होता है॥ २९०॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-७९

५७. घटना समग्र जीवन के एक खण्ड पर प्रकाश डालती है। घटनाओं में जीवन को देखना उसे खण्डों में बाँटना है॥ २९१॥

— वी. भ. महावीर, पृष्ठ-३

५८. 'भावना' शब्द का अर्थ कोरी भावना नहीं है, अपितु आत्माभिमुख स्वसंवेदनरूप परिणमन है॥ २९२॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१०७

५९. एकमात्र 'होना' अर्थात् 'अस्तित्व' ही एक ऐसी जाति है, जिसके आधार पर सम्पूर्ण जगत में एकता स्थापित हो सकती है॥ २९३॥

— प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१५३

६०. फेर-फार करने के भार से बोझिल दृष्टि में यह सामर्थ्य नहीं कि वह स्वभाव की ओर देख सके॥ २९४॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-३३

६१. सच्चा साथी और सन्मित्र ही उसे कहते हैं, जो अपने साथी और मित्र को हित में नियोजित करे॥ २९५॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१४

६२. ना समझ होते हुए जो अपने को समझदार मान बैठा हो, उसे समझाना कठिन ही नहीं, असम्भव है॥ २९६॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१५

६३. जो आस्थाएँ हृदय में गहरी पैठ जाती हैं, वे सहज समाप्त नहीं होतीं॥ २९७॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२५

६४. आशारूपी पिशाची से ग्रस्त प्राणी सदा कल्पनालोक में विचरण करता रहता है, जीवन के ठोस धरातल पर उसके पैर नहीं टिकते॥ २९८॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-४१

६५. अंतर में वास्तविक चारित्र प्रगट हो जावे और बाह्य प्रवृत्ति अनर्गल बनी रहे, यह संभव ही नहीं है॥ २९९॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-८५

६६. जब किसी व्यक्ति को कहीं से अधिक लाभ की आशा बँध जाती है तो उसका चिंतन प्रायः उसी दिशा में चलता रहता है॥ ३००॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१०३

६७. हजारों तर्क-वितर्क जहाँ निष्फल हो जाते हैं, हृदय को पिघला देने वाली भावनाओं का उद्वेग वहाँ भी रास्ता निकाल लेता है॥ ३०१॥

— पं.प्र. महोत्सव, पृष्ठ-३४

६८. जिसे तुम प्रेम से रहना कहते हो, शान्ति से रहना कहते हो; वह प्रेम ही तो अशान्ति का वास्तविक जनक है, हिंसा का मूल है॥ ३०२॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-८४

६९. अनुकूल संयोगों में प्रसन्न और प्रतिकूल संयोगों में अप्रसन्न होना हमारा स्वभाव नहीं है, यदि कमजोरी के कारण कदाचित् ऐसा होता भी है तो वह हमारी भूल ही होगी॥ ३०३॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-५५

७०. किसी एक महान शक्ति को समस्त जगत् का कर्त्ता-हर्त्ता मानना एक कर्तावाद है, तो परस्पर एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य का कर्त्ता-हर्त्ता मानना अनेक कर्तावाद॥ ३०४॥ — यु.का. स्वामी, पृष्ठ-९५

७१. हमें मरण नहीं, जीवन सुधारना है॥ ३०५॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-४३

७२. दूसरों से कटने का मौन सबसे सशक्त साधन है॥ ३०६॥

— पं.प्र. महोत्सव, पृष्ठ-५९

७३. मिथ्यारुचि और राग निर्णय को प्रभावित करते हैं॥ ३०७॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-६०

७४. विकल्पों का शमन करके निर्विकल्प होने में ही सार है॥ ३०८॥

— प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-९९

७५. नित्यता की नियामक अनन्तता ही है, अनादिपना नहीं है॥ ३०९॥

— प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२३३

७६. अशुद्धता शाश्वत नहीं है॥ ३१०॥ — प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२१२

७७. स्वभाव की महिमा आये बिना दृष्टि स्वभावसन्मुख नहीं होगी॥ ३११॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५५

७८. अनुकूल संयोग ही लौकिक लाभ है॥ ३१२॥

— निमित्तोपादान, पृष्ठ-४५

७९. जबतक स्वयं परखने की दृष्टि न हो, उधार की बुद्धि से कुछ लाभ नहीं होता॥ ३१३॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-६३

८०. संयोग के अनुसार राग का निर्णय नहीं होता तथा राग के अनुसार श्रद्धा का निर्णय नहीं किया जा सकता॥ ३१४॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१५९

८१. जब भी क्रांति की लहर उठती है तो उसका सहज प्रतिरोध होता है॥ ३१५॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१६१

८२. दु:खों से, विकारों से, बंधनों से मुक्त होना ही मोक्ष है ॥ ३१६ ॥
— पं.प्र. महोत्सव, पृष्ठ-८२

८३. अच्छाइयों की चर्चा करने से अच्छाइयाँ फैलती हैं और बुराइयों की चर्चा करने से बुराइयाँ फैलती हैं ॥ ३१७ ॥
— पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-८७

८४. धर्मप्राण जनता धार्मिक सद्भाग्य से ही समर्पित होती है ॥ ३१८ ॥
— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२९

८५. तीव्र रुचिवाले उग्र पुरुषार्थी के लिए सब कुछ संभव है ॥ ३१९ ॥
— गागर में सागर, पृष्ठ-४७

८६. यह स्वार्थी जगत बिना प्रयोजन तो किसी को भी याद करता ही नहीं है ॥ ३२० ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-६८

८७. बिना समझे किया गया ग्रहण-त्याग अनर्थक ही होता है ॥ ३२१ ॥
— गागर में सागर पृष्ठ-७३

८८. बिना परीक्षा किए एवं बिना हिताहित का विचार किये कोरी आज्ञाकारिता गुलाम मार्ग है ॥ ३२२ ॥
— पं. टो. व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ-१८८

८९. कर्तृत्व के अहंकार से कुछ नहीं होता, जो कुछ होता है वह सब सहजभाव से घटित होता है ॥ ३२३ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२६

९०. सिद्धान्त शास्त्रों के गहन अध्येता का अभिनंदन वास्तव में एक प्रकार से सिद्धान्त शास्त्रों का ही अभिनंदन है ॥ ३२४ ॥
— बिखरे मोती, पृष्ठ-६२

९१. यद्यपि सरस्वती के आराधकों, उपासकों, लाड़ले सपूतों को इन लौकिक अभिनंदनों की आकांक्षा नहीं होती, होनी भी नहीं चाहिए, तथापि सरस्वती की प्रतिदिन वंदना करने वाली, जिनवाणी भक्त

धर्मप्रेमी समाज को भी अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है ॥ ३२५ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-६२

९२. भावशून्य क्रिया कभी भी वांछित फल नहीं दे सकती ॥ ३२६ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-८८

९३. हृदय परिवर्तन का जो काम है, वह समय सापेक्ष होता है ॥ ३२७ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१८०

९४. हमें अपने हृदय की पवित्रता का परिचय देना पड़ता है; तब हम सामने वाले से हृदय परिवर्तन की अपेक्षा रख सकते हैं ॥ ३२८ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१८०

९५. किसी भी वस्तु को जानने के लिए उसका लक्षण (परिभाषा) जानना बहुत आवश्यक है, क्योंकि बिना लक्षण जाने उसे पहिचानना तथा सत्यासत्य का निर्णय करना सम्भव नहीं है ॥ ३२९ ॥

— तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-१४

९६. जिनदेव के बताये मार्ग पर चलने वाला ही सच्चा जैन है ॥ ३३० ॥

— बालबोध पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-१६

९७. एकत्व-विभक्त निज भगवान आत्मा को जाने-पहिचाने बिना ही जो साधक आत्मा की साधना करना चाहते हैं, वे न तो स्वयं ही सन्मार्ग में हैं और न अपने अनुयायियों को सन्मार्ग दिखा सकते हैं ॥ ३३१ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१९७

९८. बहिर्मुखीदृष्टि वाले को राग-द्वेष घटने में कुछ घटना-सा नहीं लगता ॥ ३३२ ॥

— वी.भ. महावीर, पृष्ठ-९

९९. अनिष्ट संयोग पाप के उदय के बिना सम्भव नहीं है तथा वैभव और भोगों में उलझाव पाप भाव के बिना असम्भव है ॥ ३३३ ॥

— वी.भ. महावीर, पृष्ठ-६

१००. प्रत्येक कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए व्यवस्थित वैज्ञानिक विधि और तत्संबंधी कार्यकुलता आवश्यक है ॥ ३३४ ॥

— वी.वि. प्र. निर्देशिक. पृष्ठ-१०

१०१. शिक्षण की सफलता सुयोग्य शिक्षकों पर निर्भर है ॥ ३३५ ॥

— वी.वि.प्र. निर्देशिका, पृष्ठ-११

१०२. ज्ञानानंद की दशा ऐसी होती है कि बाहर की अनंत प्रतिकूलताएँ और अनूकूलताएँ उसे भग्न नहीं कर सकतीं ॥ ३३६ ॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-१६

१०३. आत्मज्ञान ही ज्ञान है, शेष सभी अज्ञान।
विश्वशांति का मूल है, वीतराग-विज्ञान ॥ ३३७ ॥

— वी. वि. प्र. निर्देशका, पृष्ठ-९

१०४. आत्मोन्मुखी दृष्टि ही दूरदृष्टि है ॥ ३३८ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-२१०

१०५. कर्तावाद के निषेध का तात्पर्य मात्र इतना नहीं है कि कोई शक्तिमान ईश्वर जगत् का कर्ता नहीं है, अपितु यह भी है, कोई भी द्रव्य किसी दूसरे द्रव्य का कर्ता-हर्ता नहीं है ॥ ३३९ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२०२

१०६. जैनदर्शन का अकर्तावाद मात्र ईश्वरवाद के निषेध तक की सीमित नहीं, किन्तु समस्त परकर्तृत्व के निषेध एवं स्वकर्तृत्व के समर्थनरूप है। अकर्तावाद यानी स्वयं कर्तावाद ॥ ३४० ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२०२

१०७. स्वयं कर्तृत्व होने पर भी उसका भार जैनदर्शन को स्वीकार नहीं; क्योंकि वह सब सहज स्वभावगत परिणमन है ॥ ३४१ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२०२

१०८. स्वभाव तो उसका नाम है, जिसके आश्रय से पर्याय भी पवित्र हो जावे ॥ ३४२ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६९

१०९. धमकियाँ तो महापुरुषों के निश्चय को और अधिक दृढ़ कर देती हैं ॥ ३४३ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३९

११०. भाई! संसार का स्वरूप ही ऐसा है। एक दिन हम सबको भी जाना है, दो-चार वर्ष पीछे या दो-चार वर्ष आगे - इससे क्या अंतर पड़ता है? अत: हम सभी को अपना जीवन इतना व्यवस्थित बनाना चाहिए कि हम प्रतिपल जाने को तैयार रहें, यदि मौत सामने भी आ जाये तो हमें एक समय भी यह विकल्प नहीं आना चाहिए कि जरा ठहरो! यह काम निबटा लूँ ॥ ३४४ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-६०

१११. 'लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे' की भावना से ओत-प्रोत होकर जीने और मरने के लिए सदैव तैयार रहना ही वास्तविक जीवन है ॥ ३४५ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-६०

मैं तो द्रव्य तत्त्व हूँ

षट्कारक किसी न किसी क्रिया के होते हैं, क्रिया की अपेक्षा रखते हैं, पर मैं तो निष्क्रिय तत्त्व हूँ; क्रिया पर्याय में होती है, क्रिया स्वयं पर्याय ही है; अत: कारक भी पर्याय में ही होते हैं, पर मैं तो द्रव्यतत्त्व हूँ, पर्यायतत्त्व नहीं।

जब कुछ नया होता है तो उसमें कारकों का चक्र घटित होता है, पर मैं तो अनादिनिधन ध्रुवतत्त्व हूँ; मुझमें कुछ नया हुआ ही नहीं है, होता ही नहीं; तो फिर कारक चक्र भी कैसे घटित होगा ?

पर्यायों से पार होने के कारण मैं (जीवतत्त्व) कारक चक्र की प्रक्रिया से भी पार हूँ, कारक चक्रों के विकल्पों से भी पार हूँ।

- समयसार अनुशीलन भाग-२, पृष्ठ-३६

प्रेरणा

१. प्रत्येक आत्मार्थी को चाहिए कि वह जगत के प्रपंचों से दूर रहकर तत्त्वाभ्यास में प्रयत्नशील रहे ॥ ३४६ ॥

— वी. वि. पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-२४

२. अपने मार्ग पर दृढ़ता से चलते हुए सुसमय की प्रतीक्षा करते रहने के अतिरिक्त शांतिप्रिय आत्मार्थियों के लिए कोई उपायान्तर नहीं है ॥ ३४७ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१३२

३. भाई! आज की दुनिया संघर्ष की नहीं, सहयोग की दुनिया है ॥ ३४८ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१४७

४. यह हमारी प्रतिज्ञा है और हमारे सारे प्रवक्ताओं को निर्देश भी है कि कोई किसी की निंदा न करे ॥ ३४९ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१७६

५. हमारा यह बहुमूल्य जीवन तो आत्महित और जिनवाणी की सेवा में ही सम्पूर्णत: समर्पित है ॥ ३५० ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१३९

६. जो कुछ करो समझपूर्वक करो, विवेकपूर्वक करो ॥ ३५१ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-८८

७. हमारा दृढ़ विश्वास है कि विवादों में उलझकर चित्त को कलुषित करते रहना मानव जीवन की सबसे बड़ी हार है और उनसे तटस्थ रहकर आत्महित और आत्महितकारी चिन्तन-मनन-अध्ययन,

उपदेश और लेखन में संलग्न रहना ही जीवन है, जीवन की सबसे बड़ी जीत है॥ ३५२॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१३१

८. हमारी नीति वाद-विवादों में उलझने की न कभी रही है और न रहेगी॥ ३५३॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१२२

९. अनावश्यक गर्म-जोशी में ऐसा कोई प्रयास न करें कि जो समाज को विघटन की ओर ले जावे॥ ३५४॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-९६

१०. अपनी सम्पूर्ण शक्ति आत्महितकारी शास्त्रों के अभ्यास में लगाओ, आत्मानुभवन करने के प्रयत्न में लगाओ; हमारा तो यही आदेश है, यही उपदेश है॥ ३५५॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२१८

११. आत्महित करना है तो इन प्रतिकूल संयोगों में ही करना होगा। इन संयोगों को हटाना अपने हाथ की बात तो है नहीं। हाँ, हम चाहें तो इन संयोगों पर से अपना लक्ष्य हटा सकते हैं, दृष्टि हटा सकते हैं। यही एक उपाय है आत्महित करने का, अन्य कोई उपाय नहीं॥ ३५६॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२१५

१२. मार्ग अन्तर की रुचि में से ही मिलेगा, पर के भरोसे कुछ नहीं होगा॥ ३५७॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२११

१३. अंतर से समझने का प्रयत्न करते रहिए, जिज्ञासा जगाए रखिए, समय पर अवश्य और अपने आप समझ में आ जाएगा॥ ३५८॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१४४

१४. वीतरागी तत्त्वज्ञान की यह निर्मलधारा निरंतर बहती रहे, दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती रहे; यह बात हमारी मंगल कामनाओं तक ही सीमित न रहे, अपितु एक ऐतिहासिक सत्य बन जावे, इसके लिए समर्पित भाव से निरंतर प्रयत्नशील रहना हम सबका ऐतिहासिक दायित्व है॥ ३५९॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-७०

१५. गुण और दोष सम्बंधी तात्त्विक अज्ञान के कारण कभी-कभी हम अक्षम्य अपराधों को भी गुणों के रूप में स्मरण करने लगते हैं ॥ ३६० ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-४

१६. आध्यात्मिक जागृति और साधु व श्रावकों के निर्मल आचरण के लिए आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का अध्ययन गहराई से किया जाना उपयोगी ही नहीं अत्यंत आवश्यक है ॥ ३६१ ॥

— आ.कुंद. परमागम, पृष्ठ-११८

१७. श्रद्धा और चारित्र के इस संकटकाल में कुन्दकुन्द के पंच परमागमों में प्रवाहित ज्ञान गंगा में आकण्ठ निमज्जन (डुबकी लगाना) ही परम शरण है ॥ ३६२ ॥ — आ.कुंद. परमागम, पृष्ठ-११८

१८. जो लोग तत्त्व की गहराई तक पहुँच जाते हैं; उन्हें तो परमतत्त्व की प्राप्ति हो ही जाती है, किन्तु जो अपनी स्थूलबुद्धि के कारण परमतत्त्व को प्राप्त नहीं कर पाते हैं, उन्हें भी इतना लाभ तो होता ही है कि वे जगत के वासनामय, कषायमय, विषाक्त वातावरण से तो बहुत कुछ बचे रहते हैं; उनका जीवन सहज सात्विक बना रहता है, परिणामों में भी निर्मलता बनी रहती है ॥ ३६३ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-२०५

१९. यदि अच्छी होनहार हो तो काल पाकर उनका भी पुरुषार्थ जागृत हो जाता है और आज नहीं तो कल वे भी निजतत्त्व तक पहुँच ही जाते हैं ॥ ३६४ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२०५

२०. समझ में समझने से आता है, समझाने से नहीं; अतः स्वयं समझने के लिए प्रयत्नशील व चिंतनशील बनना चाहिए ॥ ३६५ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ १८

२१. यदि हमने समय को नहीं पहचाना, युग की आवाज की अनसुनी कर दी तो समय हमें कभी क्षमा नहीं करेगा ॥ ३६६ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१४७

२२. जो युग की आवाज को, समय की पुकार को सुनता है; उसके अनुसार चलता है, समय उसका ही साथ देता है॥ ३६७॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१४७

२३. बहिष्कार वाली बातें आज नहीं चल पावेंगी, कहीं दूसरों का बहिष्कार करने चलें और स्वयं ही बहिष्कृत न हो जावें, उन्हें इस पर भी विचार कर लेना चाहिए॥ ३६८॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-९५

२४. विध्वंस से विरत होकर अपनी शक्ति और परिश्रम को निर्माण में लगावें॥ ३६९॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-९६

२५. यदि हम गुरुदेवश्री के सच्चे शिष्य हैं तो हमें गुरुदेवश्री के चले जाने पर वही राह अपनानी चाहिए, जो महावीर के अन्यतम शिष्य गौतम ने अपनाई थी॥ ३७०॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-४२

२६. यदि हमने गुरुदेवश्री जैसे आत्महितकारी अद्‌भुत निमित्त का थोड़ा भी सत्संग प्राप्त किया है तो जगत के प्रपंचों से दूर रहकर हमें आत्मानुभव प्राप्त कर उन जैसा पावन जीवन व्यतीत करना चाहिए॥ ३७१॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१२४

२७. सोनगढ़ को श्वेताम्बर कहनेवालों को ध्यान रखना चाहिए कि वे सर्वश्रेष्ठ दिगम्बर आचार्य कुन्दकुन्द के परमभक्तों को श्वेताम्बर कहकर एक प्रकार से आचार्य कुन्दकुन्द को ही श्वेताम्बर कहने का महापाप कर रहे हैं॥ ३७२॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१२०

जानना मोह का कारण नहीं

परपदार्थों को जानने मात्र से उनसे मोह उत्पन्न नहीं होता; मोह तो उन्हें अपना जानने से, उन्हें अपना मानने से; उनमें जमने-रमने से उत्पन्न होता है।

— समयसार अनुशीलन भाग-१, पृष्ठ-३०५

जो कहीं नहीं

१. असफलता के समान सफलता का पचा पाना भी हर एक का काम नहीं ॥ ३७३ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३३

२. धर्म विज्ञान का विरोधी नहीं, मार्गदर्शक है ॥ ३७४ ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२६

३. धर्म और विज्ञान एक दूसरे के विरोधी नहीं, अपितु पूरक ही हैं ॥ ३७५ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२८

४. धर्म के मार्गदर्शन में चलने वाले विज्ञान का विकास, विनाश नहीं निर्माण करेगा ॥ ३७६ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२६

५. वैज्ञानिक कल्पना का आधार मात्र बौद्धिक है, पर आत्मिक कल्पना बौद्धिक होने के साथ ही शास्त्राधार पर निर्मित होती है ॥ ३७७ ॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-१५

६. भटकना श्रद्धा का दोष है और अटकना चारित्र की कमजोरी है ॥ ३७८ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-५७

७. वस्तुतः बंधन की अनुभूति ही बंधन है ॥ ३७९ ॥

— ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-७०

८. आज हमें ऐसे योग्य अध्यापकों की आवश्यकता है; जो —
१. बालकों में वीतराग-विज्ञान के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न कर सकें,

२. उन्हें सामान्य तत्त्वज्ञान करा सकें तथा

३. सदाचार से युक्त नैतिक जीवन बिताने के लिए प्रेरित कर सकें ॥ ३८० ॥ — वी.वि. प्र. निर्देशिका-३, पृष्ठ-१०

९. जिसने जिसके प्रति उपकार किया होता है, उसे उसके प्रति बहुमान का भाव आये बिना नहीं रहता ॥ ३८१ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-२३४

१०. देशनालब्धि में पढ़ने की अपेक्षा सुनने को अधिक महत्त्व दिया गया है; क्योंकि भाषा के साथ हावभावों से भी बहुत कुछ स्पष्टीकरण होता है ॥ ३८२ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१९८

११. किसी भी प्रकार के वाद-विवाद में नहीं उलझना ही आत्मार्थ है, आत्मार्थिता की सच्ची निशानी है ॥ ३८३ ॥

— पं.प्र. महोत्सव, पृष्ठ-६२

१२. खून और हड्डी चाहे पवित्र हों या अपवित्र, उनका आत्मा की पवित्रता से कोई सम्बन्ध नहीं है ॥ ३८४ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६७

१३. पवित्र कहते ही ऐसे हैं, जिसको छूने से छूने वाला पवित्र हो जाए ॥ ३८५ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६९

१४. सुधार भी जगत का नहीं, अपनी दृष्टि का, अपने ज्ञान का करना है ॥ ३८६ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७७

१५. दीनता बिना माँगना संभव ही नहीं है। माँगने में दीनता आती ही है। माँगना स्वयं दीनता है, वह दीनता का रूप ही है ॥ ३८७ ॥

— भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१६४

१६. वस्तुतत्त्व की सही जानकारी नहीं है तो अप-शनाप बोलने से नहीं बोलना - चुप रहना हितकर है ॥ ३८८ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८०

१७. समझौते में सत्यवादी की बात नहीं, शक्तिशाली की बात मानी जाती है ॥ ३८९ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८१

१८. निरन्तर पर को ही जानने वाला ज्ञान भी एक तरह से पर का ही हो जाता है ॥ ३९० ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-९६

१९. उपवास तो आत्मस्वरूप के समीप ठहरने का नाम है ॥ ३९१ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०२

२०. उपदेश देने-लेने की गम्भीरता को समझिये, इसे मनोरंजन और समय काटने की चीज मत बनाइये ॥ ३९२ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१४

२१. जिसके पास सब-कुछ होता है; उसे राजा कहते हैं और जिसके पास कुछ नहीं होता अर्थात् जो अपने पास कुछ भी नहीं रखता जिसे कुछ नहीं चाहिए, उसे महाराज कहा जाता है ॥ ३९३ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३३

२२. युद्ध के मैदान में दूसरों को जीतने वाले, मारने वाले युद्धवीर हो सकते हैं, धर्मवीर नहीं ॥ ३९४ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१८३

२३. जिस प्रवचनकार के प्रवचन में आत्महित की प्रेरणा न हो, आत्मानुभव करने पर बल न हो; वह जिनवाणी का प्रवचनकार ही नहीं है ॥ ३९५ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-३७

२४. भगवान आत्मा की बात समझाना, भगवान आत्मा के दर्शन करने की प्रेरणा देना, अनुभव करने की प्रेरणा देना, आत्मा में ही समा जाने की प्रेरणा देना ही सच्चा प्रवचन है ॥ ३९६ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-३८

२५. प्रवचन करने का प्रयोजन पाण्डित्य प्रदर्शन नहीं, अपितु आत्मोपकारी तत्त्व की बात जन-जन तक पहुँचाना है ॥ ३९ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-३८

२६. स्वयं आत्मानुभव में प्रवृत्त होना और एकमात्र आत्मानुभव की प्रेरणा देना ही सच्चा पाण्डित्य है॥ ३९८॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-३८

२७. सम्यक् समझ बिना ग्रहण और त्याग संभव ही नहीं है॥ ३९९॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-७३

२८. आंतरिक ज्ञान के साथ बाह्य व्यक्तित्व का समन्वय ही अच्छे वक्ता की कसौटी है॥ ४००॥ — पं.टो. व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ-२११

२९. वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए जिस वैज्ञानिक प्रक्रिया की जरूरत होती है, उसमें किसी भी मान्यता या सिद्धांत को तबतक सिद्ध नहीं माना जाता, जबतक वह तथ्यों की प्रायोगिक विधि से सिद्ध नहीं हो जाता॥ ४०१॥ — पं.टो. व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ-२१५

३०. दार्शनिक विषयवस्तु के विश्लेषण में तर्क और युक्तियों की प्रधानता रहती है॥ ४०२॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-९

३१. तर्क और युक्तियों के भार को गद्य ही बर्दाश्त कर पाता है॥ ४०३॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-४०३

३२. आत्मख्याति टीका में बुद्धि और हृदय का अद्‌भुत समन्वय है॥ ४०४॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१०

३३. यद्यपि यह बात पूर्णतः सत्य है कि तारे सूरज-सा आलोक नहीं बिखेर पाते; तथापि यह भी सत्य है कि घना अंधकार भी नहीं होने देते॥४०५॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-३७

३४. जगत का काम रुकता नहीं, कुछ काम तारों के प्रकाश में होता है, कुछ काम दीपकों के प्रकाश में होता है॥ ४०६॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-३७

३५. सूरज तो जब उगता है, स्वयं उगता है; उगाने से नहीं उगता॥ ४०७॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-३७

३६. कमी लालों की नहीं; उन्हें पहचाननेवालों की है, संभालनेवालों की है ॥ ४०८ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-७

३७. जैन कथा साहित्य भी अकर्तृत्व का पोषक होना चाहिए ॥ ४०९ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-७

३८. देश की अखंडता के लिए मात्र जमीन ही जीतना जरूरी नहीं होता, जनता का दिल भी जीतना होता है ॥ ४१० ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२९

३९. चेहरे की भाषा पढ़ना हर कोई थोड़े ही जानता है, उसके लिए तीक्ष्ण प्रज्ञा अपेक्षित है ॥ ४११ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३८

४०. सही दिशा में सक्रिय युवकों का सहयोग करना सभी समझदार लोगों का नैतिक दायित्व है ॥ ४१२ ॥ — शाकाहार, पृष्ठ-१

४१. वह एक श्रोता ही पर्याप्त है, जो मात्र सुनता ही नहीं, समझता भी है; तद्रूप परिणमन भी करता है ॥ ४१३ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-३७

४२. घर का काम तो घरवालों को ही सँभालना पड़ता है, समझानेवाले नहीं सँभालते ॥ ४१४ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२८

४३. काम समझने वालों को सँभालना होगा, समझाने वालों को नहीं ॥ ४१५ ॥ — बिखरे मोती पृष्ठ-३८

४४. उत्तरदायित्व किसका? जो समझे, अनुभव करे उसका जो अनुभव ही न करे, उसको क्या कहें? ॥ ४१६ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-३८

४५. व्यक्ति वाणी से ही सबकुछ नहीं कहत, उसकी मुद्रा व उसके हाव-भाव भी बहुत कुछ कहते हैं ॥ ४१७ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-४४

४६. भावों के सम्प्रेषण में अकेली वाणी की ही आवश्यकता नहीं होती; अपितु उसके साथ-साथ हाव-भावों का भी अपना एक महत्त्व होता है ॥ ४१८ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-४४

४७. जिसमें मतभेद की कहीं कोई गुंजाइश नहीं है — ऐसे तत्त्वज्ञान पर विशेष जोर देना चाहिए। उसके प्रचार-प्रसार में अपनी शक्ति लगानी चाहिए॥ ४१९ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-८८

४८. भौतिकधारा को भोग में तनिक भी मर्यादा स्वीकार नहीं तथा आध्यात्मिकधारा को भोग की अणुमात्र भी उपस्थिति स्वीकार नहीं है॥ ४२० ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-४२

४९. जैनाचरण के व्यावहारिक पक्ष को, सैद्धान्तिक रूप में चरणानुयोग के शास्त्रों से और प्रयोगात्मक रूप में जैन पुराणों के अनुशीलन से भली-भाँति जाना जा सकता है॥ ४२१ ॥— मैं कौन हूँ, पृष्ठ-५७-५८

५०. धार्मिक पर्वों का प्रयोजन तो आत्मा में वीतरागभाव की वृद्धि करने का है॥ ४२२ ॥ — वी.वि. पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-३८

५१. धार्मिक पर्व तो वीतरागता की वृद्धि करनेवाले संयम और साधना के पर्व हैं॥ ४२३ ॥ — वी.वि. पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-४१

५२. साधारण देव-देवी (धरणेन्द्र-पद्मावती) तीनलोक के नाथ की क्या रक्षा करेंगे॥ ४२४ ॥ — वी.वि. पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-४५

५३. यौवनागम में कल्पना की उत्ताल तरंगों से आजतक कौन बच पाया है? फिर भी बड़ों की मर्यादा विनयशील युवक कभी नहीं छोड़ते॥ ४२५ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-३

५४. यह आत्मा दूसरों को सुधारने के निरर्थक प्रयत्न में जितनी शक्ति और समय नष्ट करता है,यदि उसका शतांश भी अपने को सुधारने में लगाए तो यह पूर्ण सुखी हुए बिना न रहे॥ ४२६ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१७

५५. उपदेश कोई दवा तो है नहीं, जो व्यक्तिगत दी जाए॥ ४२७ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-३९

५६. अभाव का अनुभव करनेवाला असंतुष्ट और सद्भाव का अनुभव करनेवाला संतुष्ट नजर आता है ॥ ४२८ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-४३

५७. जगत में कोई खोटा सिक्का चलाए तो उसको रोकना अपने बस की बात नहीं है, पर अपनी तिजोरी में खोटा सिक्का न आ जाए, इसका ध्यान तो रखना ही पड़ता है ॥ ४२९ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-६३

५८. जब आदमी स्वयं किसी बड़े धोखे से बच जाता है तो उसे अपने से अधिक चिन्ता उन लोगों को बचाने की हो जाती है, जो अभी भी उसीप्रकार के धोखे में फँसे हुए हैं ॥४३० ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-६६

५९. वे बड़े भाग्यवान हैं — जो या तो स्वयं हिताहित का विवेक रखते हैं, सत्यासत्य का निर्णय करने में स्वयं समर्थ हैं या वे जो ज्ञानियों में श्रद्धा रखकर उनके सहयोग से सत्य का निर्णय करते हैं ॥ ४३१ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-८७

६०. विभिन्न पदार्थों की एकता का ज्ञान और रागद्वेषोत्पादक विचार न तो वास्तविक तत्त्वज्ञान है और न तत्त्वविचार ॥ ४३२ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-९२

६१. जो तत्त्व से बँधेगा, वही वास्तविक साथी होगा ॥ ४३३ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-११८

६२. युद्धक्षेत्र में शत्रु का नाश किया जाता है और धर्मक्षेत्र में शत्रुता का ॥ ४३४ ॥ — वी. भ. महावीर, पृष्ठ-५

६३. युद्धक्षेत्र में पर को जीता जाता है और धर्मक्षेत्र में स्वयं को ॥ ४३५ ॥

— वी.भ. महावीर, पृष्ठ-५

६४. युद्धक्षेत्र में पर को मारा जाता है और धर्मक्षेत्र में अपने विकारों को ॥ ४३६ ॥ — वी. भ. महावीर, पृष्ठ-६

६५. शत्रु-मित्र के प्रति समभाव का अर्थ ही शत्रु-मित्र का अभाव है ॥ ४३७ ॥ — ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-६७-६८

६६. विषय का सर्वांग अनुशीलन ही द्वन्द्व और संघर्ष से बचने का एकमात्र उपाय है ॥ ४३८ ॥ — निमित्तोपादान, पृष्ठ-१

६७. जिन्हें त्रिकाली सत् का परिचय नहीं, वे सत्पुरुष नहीं; उनकी संगति भी सत्संगति नहीं है ॥ ४३९ ॥ — निमित्तोपादान, पृष्ठ-३४

६८. सच्चा आत्मार्थी ही वास्तविक विद्वान होता है और जिनवाणी का जानकार विद्वान ही सच्चा आत्मार्थी हो सकता है ॥ ४४० ॥

— प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१८२

६९. जिनवाणी का अध्ययन उलझना नहीं, सुलझना है और पण्डित बनना हीनता की नहीं, गौरव की बात है ॥ ४४१ ॥

— प.प्र.नयचक्र, पृष्ठ-१८२

७०. रुचि ध्यान की नियामक है ॥ ४४२ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-९३

७१. दोष हमारी दृष्टि में है और उसे हम खोज रहे हैं लोक में ॥ ४४३ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३१

७२. पड़ौसियों को अमृत बाँटने में हम इतने व्यस्त भी न हो जावें कि अपना घर ही न सँभाल पावें ॥ ४४४ ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-११

७३. राह चलते लोगों से व्यर्थ के विवाद में न उलझें ॥ ४४५ ॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१९

७४. जिसके प्रति हमारे हृदय में अरुचि होती है, उसकी उपेक्षा हमसे सहज ही होती रहती है ॥ ४४६ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१८५

७५. खोई वस्तु के तीव्र राग में हमारा सहज विवेक भी लुप्त हो जाता है ॥ ४४७ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१८०

७६. जैनकुल में पैदा हो जाने मात्र से कोई जैन नहीं होता॥ ४४८॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-६३

७७. जिसे अपने शस्त्रों पर ही भरोसा न हो उसकी हार तो निश्चित ही है॥ ४४९॥ — पं.प्र.महोत्सव, पृष्ठ-३५

७८. गृहस्थ धर्म में ऐसा ही होता है, अन्तरंग रुचि भी रहती है, उचित वैराग्य भी रहता है और भूमिकानुसार राग भी होता ही है॥ ४५०॥

— पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-३७

७९. इस बात का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है कि कहीं दूसरों के सुधार के चक्कर में हम अपना अहित न कर बैठें॥ ४५१॥

— पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-५४

८०. कथा-साहित्य का दिशा बोधक यंत्र (कुतुबनुमा) तत्त्वज्ञान होता है॥ ४५२॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३

८१. आत्मज्ञान बिना जो व्रतादिरूप शुभभाव होते हैं, वे सच्चे व्रत नहीं हैं॥ ४५३॥ — वी.वि. पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-२६

संयम की रुचि

श्रद्धा और ज्ञान तो क्षणभर में परिवर्तित हो जाते हैं, पर जीवन में संयम आने में समय लग सकता है। संयम धारण करने की जल्दी तो प्रत्येक ज्ञानी धर्मात्मा को रहती ही है, पर अधीरता नहीं होती; क्योंकि जब सम्यग्दर्शन-ज्ञान और संयम की रुचि (अंश) जग गई है तो इसी भव में, इस भव में नहीं तो अगले भव में, उसमें नहीं तो उससे अगले भव में, संयम भी आयेगा ही; अनन्तकाल यों ही जानेवाला नहीं है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-१८४

६

नारी

१. नारी सहज श्रद्धामयी भावनाप्रधान प्राणी है ॥ ४५४ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-४९

२. सहज श्रद्धावान नारी में यदि समुचित शिक्षा के सद्भाव से विवेक का भी विकास हो जावे तो सोने में सुगंध हो जाने की कहावत चरितार्थ हो जावे ॥ ४५५ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१३

३. जबतक सहज श्रद्धालु नारी जाति शिक्षित नहीं होगी, तबतक उन्हें ढोंगी साधुओं और धूर्त महात्माओं से बचाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है ॥ ४५६ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-६२

४. सहज श्रद्धालु नारी को कोई न कोई श्रद्धेय चाहिए, जहाँ वह अपने श्रद्धासुमन समर्पित कर सके ॥ ४५७ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-८१

५. नारी जैसी एकनिष्ठता आप अन्यत्र कहीं नहीं पा सकते। वह जिस पर रीझ गई, सो रीझ गई, वह उसी में तन्मय हो जाती है ॥ ४५८ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-८२

६. नारियों की सबसे बड़ी शक्ति ही भावावेग है ॥ ४५९ ॥

— पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-३४

७. करुणा की जैसी तीव्रतम अनुभूति नारियों में पाई जाती है, कठोर हृदय पुरुषों में वह बहुत कम देखने को मिलती है ॥ ४० ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-७१

८. सुख-दु:ख सहने की जितनी सामर्थ्य नारियों में होती है, उतनी पुरुषों में कहाँ?॥ ४६१ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-५६

९. बिना डींग हाँके दुर्भाग्य से लड़ने की जितनी क्षमता नारियों में सहज देखी जा सकती है; पुरुषों में उसके दर्शन असंभव नहीं तो दुर्लभ तो हैं ही॥ ४६२ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-५६

१०. आँसू स्त्रियों की सबसे प्रबल भाषा और सबसे बड़ा हथियार है, विशेषकर पति को परास्त करने के लिए॥ ४६३ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-४२

११. मानवस्वभाव की जैसी गहरी पकड़ उन अनपढ़ पनिहारिनों में पाई जाती है; वैसी पकड़ विश्वविद्यालयीन कारखानों में ढले डिग्रीधारी पत्रकारों में प्राप्त होना असम्भव नहीं तो दुर्लभ तो है ही॥ ४६४ ॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-६६

१२. देखी है आपने पुरुषों की पशुता! स्वयं चाहे हजारों औरतों से सब प्रकार के सम्बन्ध रखें, परन्तु स्त्री को किसी से बात करते देख लिया तो हो गये पागल। यह नहीं सोचते कि नारियाँ भी तो पुरुषों के समान ही हाड़मांस वाली प्राणी हैं॥ ४६५ ॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-७३

१३. पण्डितों के प्रवचनों में वह सामर्थ्य कहाँ, जो नारियों के आँसुओं में है। वे अपनी बात को आँसुओं से भीगी भाषा में रखने में इतनी चतुर होती हैं कि बड़े-बड़े धर्मात्मा भी अपने को पापी समझने लगें॥ ४६६ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-७५

१४. पुरुषों को परास्त करने, झुकाने, अपनी बात मनवाने में जितने सफल आँसू रहे हैं, उतना और कोई नहीं॥ ४६७ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-४२

१५. बालक और स्त्रियाँ जब हठ पर अड़ जाती हैं तो उन्हें भगवान भी नहीं समझा सकता और समझ में समझाने से आता ही कब है, समझने से आता है ॥ ४६८ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१५

१६. स्त्रियाँ सन्तुलित रह ही नहीं सकतीं। उनकी भावुकता उनके सन्तुलन को सदा डाँवाडोल बनाये रखती है ॥ ४६९ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-७०

१७. तीर्थयात्रा का भ्रमण और वह भी पति के साथ — यह तो भारतीय नारी के जीवन की सबसे बड़ी साध होती है ॥ ४७० ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१२

१८. महासती सीता को आदर्श माननेवाली भारतीय ललनाओं को यह याद रखना चाहिए कि अपने ही लोगों के असद्व्यवहार से विरक्त सीता ने आत्महत्या का मार्ग न चुनकर आत्मसाधना का रास्ता अपनाया था ॥ ४७१ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-८३

यही सन्देश है

जिसने जीवन में सत्य को अपनाया, जो व्यवहार में प्रामाणिक रहा; वह लाखों घड़ियाँ मनमानी कीमत पर बेच लेता है और जो सत्य पर कायम नहीं रहता, उसे शुद्ध घी बेचने में भी पसीना छूटता है।

सत्य की उपासना ही समृद्धि का कारण है — यही सन्देश है सत्यनारायण की कथा का, जिसे हमने भुला दिया है। सत्य (प्रामाणिकता) को जीवन में अपनाकर अनार्य देश समृद्ध होते जा रहे हैं और हम झांझ-मंजीरे से सत्यनारायण की पूजन करने में ही मग्न हैं।

सत्यधर्म को जीवन में अपनाने की प्रेरणा देने वाली यह कथा सचमुच ही महान है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-१७१

७

व्यक्तित्व

१. भू-स्वामित्व को हारकर तो सभी को छोड़ना पड़ता है, पर बाहुबली ने इसे जीतकर छोड़ा था ॥ ४७२ ॥ — गोम्मटेश्वर बाहुबली, पृष्ठ-७

२. बाहुबली का त्याग अप्राप्ति की मजबूरी नहीं; अपितु प्राप्ति का परित्याग था, विरक्तता का परिणाम था ॥ ४७३ ॥

— गोम्मटेश्वर बाहुबली, पृष्ठ-७

३. बाहुबली की क्षमा 'मजबूरी में महात्मा गाँधी' का नाम नहीं थी; अपितु 'वीर का आभूषण' थी ॥ ४७४ ॥

— गोम्मटेश्वर बाहुबली, पृष्ठ-७

४. विन्ध्यगिरि पर स्थित लता गुल्मों से आवेष्टित इस विराट दिगम्बर जिनबिम्ब की स्थापना का एक उद्देश्य शिथिलाचारी दिगम्बरों के समक्ष दिगम्बर साधुता का एक कठोर रूप प्रस्तुत करना भी रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं; क्योंकि उस समय शिथिलाचार आरंभ हो गया था ॥ ४७५ ॥ — गोम्मटेश्वर बाहुबली, पृष्ठ-९

५. परमपावन नग्न दिगम्बर दशा का यह अजोड़ जिनबिम्ब, दिगम्बरत्त्व की साधना का यह सर्वोत्कृष्ट प्रतीक जहाँ एक ओर जगत को दिगम्बरत्त्व की ओर आकृष्ट कर रहा है, वहीं दूसरी ओर यह भी जता रहा है कि दिगम्बरत्त्व हँसी-खेल नहीं है ॥ ४७६ ॥

— गोम्मटेश्वर बाहुबली, पृष्ठ - ९

६. जिसके हृदय में अपराध भावना होती है, उसकी आँख नीची हुए बिना नहीं रहती॥ ४७७॥ — गोम्मटेश्वर बाहुबली, पृष्ठ-१४

७. ऐसा त्यागी, ऐसा तपस्वी, ऐसा निस्पृही, ऐसा दृढ़ संकल्पी व्यक्तित्व कि जिसने पीछे मुड़कर देखना सीखा ही न हो, जो जब युद्ध में जमा तो जमा ही रहा और विजयश्री का वरण करके ही दम ली तथा जब अपने में जमा, अपने में रमा तो ऐसा जमा, ऐसा रमा कि बाहर की ओर देखा ही नहीं। कर्म-शत्रुओं का नाश कर अनंतचतुष्टयरूप लक्ष्मी का वरण कर इस युग में सर्वप्रथम मुक्ति प्राप्त की॥ ४७८॥

— गोम्मटेश्वर बाहुबली, पृष्ठ-८

८. छह खण्ड भरत के सामने नहीं, भरत चक्रवर्ती के सामने झुके थे और बाहुबली से भरत चक्रवर्ती नहीं, सिर्फ भरत लड़ रहे थे॥ ४७९॥

— गोम्मटेश्वर बाहुबली, पृष्ठ-१३

९. बाहुबली का द्वेष जो भरत के स्पर्श से राग में बदल गया था - इस घटना (युद्ध) से वह राग वैराग्य में बदल गया। इस तरह द्वेष राग में और राग वैराग्य में परिणमित हो गया॥ ४८०॥

— गोम्मटेश्वर बाहुबली, पृष्ठ-१६

१०. भले ही भरत इस चक्रवर्तित्व को न छोड़ सके, पर इसमें रहकर गर्व का अनुभव नहीं कर सकता, इसमें रम नहीं सकता॥ ४८१॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३५

११. चक्रवर्तित्व भरत का गौरव नहीं; मजबूरी है, मजबूरी...॥ ४८२॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३५

१२. जैनाचार्यों की यह विशेषता रही है कि महान से महान कार्यों को करने के बाद भी उन्होंने अपने लौकिक जीवन के बारे में कहीं कुछ भी नहीं लिखा है॥ ४८३॥

— तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-४४

१३. जिन-अध्यात्म के प्रतिष्ठापक आचार्य कुन्दकुन्द का स्थान दिगम्बर जिन-आचार्य परम्परा में सर्वोपरि है ॥ ४८४ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-९

१४. आचार्य कुन्दकुन्द दिगम्बर आचार्य परम्परा के चूडामणि हैं ॥ ४८५ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-१९

१५. आचार्य कुन्दकुन्द विगत दो हजार वर्षों में हुए दिगम्बर आचार्यों, सन्तों, आत्मार्थी विद्वानों एवं आध्यात्मिक साधकों के आदर्श रहे हैं, मार्गदर्शक रहे हैं, भगवान महावीर और गौतम गणधर के समान प्रातः स्मरणीय रहे हैं, कलिकाल सर्वज्ञ के रूप में स्मरण किये जाते रहे हैं ॥ ४८६ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-१९

१६. आचार्य कुन्दकुन्द दिगम्बर परम्परा के शिरमौर हैं एवं उनके ग्रंथ दिगम्बर साहित्य की अनुपम निधि हैं ॥ ४८७ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-२९

१७. आचार्य कुन्दकुन्द बहुत गंभीर प्रकृति के निरभिमानी आचार्य थे ॥ ४८८ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-४

१८. आचार्य कुन्दकुन्द का सच्चा परिचय तो उनके ग्रंथों में प्रतिपादित वह विषयवस्तु है, जिसे जानकर जैनदर्शन के हार्द को भलीभाँति समझा जा सकता है ॥ ४८९ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-३२

१९. यदि आचार्य कुन्दकुन्द दिगम्बर जिन-आचार्य परम्परा में शिरोमणि हैं तो शुद्धात्मा का प्रतिपादक उनका यह ग्रंथाधिराज समयसार सम्पूर्ण जिनवाङ्मय का शिरमौर है ॥ ४९० ॥

— आ.कुंद. परमागम, पृष्ठ-३३

२०. आध्यात्मिक शांति और सामाजिक क्रांति का जैसा अद्‌भुत संगम इस अपराजेय व्यक्तित्व में देखने को मिलता है, वैसा अन्यत्र असंभव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है ॥ ४९१ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-११७

२१. यदि हम जिन-अध्यात्म की ज्योति जलाये रखना चाहते हैं, श्रावकों को सदाचारी बनाये रखना चाहते हैं, संतों को शिथिलाचार से बचाये रखना चाहते हैं तो हमें कुन्दकुन्द को जन-जन तक पहुँचाना ही होगा, उनके साहित्य को जन-जन की वस्तु बनाना ही होगा ॥ ४९२ ॥

— आ.कुंद. परमागम, पृष्ठ-११८

२२. आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथों का नियमित स्वाध्याय एवं विधिवत् पठन-पाठन न केवल आत्महित के लिए आवश्यक है; अपितु सामाजिक शांति और श्रमण संस्कृति की सुरक्षा के लिए भी अत्यंत आवश्यक है ॥ ४९३ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-११८

२३. जब-जब भी दिगम्बर-श्वेताम्बर सम्प्रदायों के लोगों ने कुन्दकुन्द के जिन अध्यात्म को अपनाया; तब-तब वे एक दूसरे के नजदीक आये हैं ॥ ४९४ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२२

२४. ग्रंथाधिराज समयसार का मूल प्रतिपाद्य अर्थात् प्रतिपादन केन्द्रबिन्दु परमपारिणामिकभावरूप वह भगवान आत्मा ही है ॥ ४९५ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१९३

२५. आचार्य कुन्दकुन्द का समयसार एक ऐसा क्रांतिकारी आध्यात्मिक ग्रंथ है, जिसने विगत दो हजार वर्षों में बनारसीदासजी जैसे अनेक लोगों को आध्यात्मिक धारा की ओर मोड़ा है ॥ ४९६ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२१

२६. आचार्य कुन्दकुन्द के जिन-अध्यात्म में कुछ ऐसी अद्‌भुत शक्ति विद्यमान है, जो शताब्दियों से अत्यन्त विभक्त दिगम्बर-श्वेताम्बर सम्प्रदायों को नजदीक लाने का कार्य करता रहा है, एक मंच पर लाने का कार्य करता रहा है ॥ ४९७ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२२

२७. समयसार का मूलाधार महावीर, गौतमस्वामी, भद्रबाहु से होती हुई, कुन्दकुन्द के साक्षात् गुरु तक आई श्रुत परम्परा से प्राप्त ज्ञान है ॥ ४९८ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-२२

२८. समयसार जिन-अध्यात्म का प्रतिष्ठापक अद्वितीय महान् शास्त्र है ॥ ४९९ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-३१

२९. समयसार की यह विशेषता है कि जिसमें दृष्टि के विषय को, सम्यग्दर्शन के विषयभूत भगवान आत्मा को हाथ में आँवले के समान दिखाने का सफल प्रयास किया गया है ॥ ५०० ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१९८

३०. ग्रंथाधिराज समयसार में नवतत्त्वों के माध्यम से मूल प्रयोजनभूत उस शुद्धात्मवस्तु का प्ररूपण है, जिसके आश्रय से निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग प्रगट होता है ॥ ५०१ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-५१

३१. सम्यग्दर्शन के विषयभूत भगवान आत्मा की बात भी जिन्होंने नहीं सुनी है, उनके लिए ही समयसार लिखा गया है ॥ ५०२ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-५३

३२. आचार्य कुन्दकुन्ददेव द्वारा रचित पञ्चास्तिकाय संग्रह एक ऐसा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है; जिसके अध्ययन बिना समयसार, प्रवचनसारआदि महान ग्रंथों का मर्म समझ पाना सहज सम्भव नहीं है ॥ ५०३ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-८५

३३. अपनी विशिष्ट शैली में वस्तुस्वरूप के प्रतिपादक प्रवचनसार का प्रवेश सर्वत्र अबाध है ॥ ५०४ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-५५

३४. उपदेश, आदेश, अनुशासन-प्रशासन, कुन्दकुन्द की मजबूरी थी, जीवन नहीं। उनका हार्द नियमसार है ॥ ५०५ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-८७

३५. नियमसार नामक परमागम की रचना दिगम्बर परम्परा के सर्वश्रेष्ठ आचार्य कुन्दकुन्द ने सम्पूर्णतः स्वान्तःसुखाय ही की है ॥ ५०६ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-८८

३६. अष्टपाहुड एक ऐसा अंकुश है, जो शिथिलाचार के मदोन्मत्त गजराज को बहुत कुछ काबू में रखता है, सर्वविनाश नहीं करने देता ॥ ५०७ ॥

— आ.कुंद. परमागम, पृष्ठ-१००

३७. सम्पूर्ण अष्टपाहुड श्रमणों में समागत या संभावित शिथिलाचार विरुद्ध एक समर्थ आचार्य का सशक्त अध्यादेश है, जिसमें सम्यग्दर्शन पर तो सर्वाधिक बल दिया ही गया है, साथ में श्रमणों के संयमाचरण के निरतिचार पालन पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है, श्रमणों को पग-पग पर सतर्क किया गया है ॥ ५०८ ॥

— आ.कुंद. परमागम, पृष्ठ-११६

३८. आचार्य अमृतचंद्र की 'समय व्याख्या' टीका से अलंकृत इस पञ्चास्तिकाय संग्रह ग्रंथ के अध्ययन-मनन में वस्तु व्यवस्था के सम्यग्ज्ञान के साथ-साथ जो आध्यात्मिक आनंद प्राप्त होगा, वह अन्यत्र असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है ॥ ५०९ ॥

— आ.कुंद. परमागम, पृष्ठ-८५

३९. सम्यग्दर्शन की मुख्यता से लिखे गये इस समयसार परमागम को मुख्यरूप से तो मिथ्यादृष्टियों को ही पढ़ना चाहिए; क्योंकि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तो उन्हें ही करना है, मुनिराज तो सम्यग्दृष्टि ही होते हैं; क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना मुनि होना संभव ही नहीं है ॥ ५१० ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-५२

४०. प्रौढ़ विवेक के धनी आचार्यदेव ने विदेहगमन की चर्चा न करके अच्छा ही किया है; पर उनके चर्चा न करने से उक्त घटना को अप्रमाणिक कहना देवसेनाचार्य एवं जयसेनाचार्य जैसे दिग्गज आचार्यों पर अविश्वास व्यक्त करने के अतिरिक्त और क्या है? ॥ ५११ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-२५

४१. आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी उन गौरवशाली आचार्यों में हैं; जिन्हें समग्र आचार्य परम्परा में पूर्ण प्रामाणिकता और सम्मान प्राप्त है ॥ ५१२ ॥ — वी.वि. पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-१२

४२. जो महत्त्व वैदिकों में गीता का, ईसाइयों में बाइबिल का और मुसलमानों में कुरान का माना जाता है, वही महत्त्व जैन परम्परा में गृद्धपिच्छ उमास्वामी के तत्त्वार्थसूत्र को प्राप्त है ॥ ५१३ ॥

— वी.वि. पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-१२

४३. जब अमृतचंद्र वस्तुस्वरूप का विश्लेषण करते हैं, तो प्रवाहमय प्रांजल गद्य का उपयोग करते हैं और जब वे परमशांत अध्यात्मरस में निमग्न हो जाते हैं, तो उनकी लेखनी से विविधवर्णी छन्द प्रस्फुटित होने लगते हैं ॥ ५१४ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१०

४४. जिन-अध्यात्म गगन के दैदीप्यमान नक्षत्र कविवर पण्डित बनारसीदासजी हिन्दी साहित्य-गगन के भी चमकते सितारे हैं, हिन्दी आत्मकथा साहित्य के तो आप आद्यप्रणेता ही हैं ॥ ५१५ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१२

४५. फक्कड़ शिरोमणी महाकवि बनारसीदास ने अपने जीवन में जितने उतार-चढ़ाव देखे, उतने शायद ही किसी महापुरुष के जीवन में आये हों ॥ ५१६ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१३

४६. यदि कोई अन्य उल्लेखनीय गुण न भी हो तो भी सौ वर्ष की आयु की उपलब्धि, अकेली स्वयं उल्लेखनीय है, चर्चनीय है, अभिनन्दनीय भी है; फिर बापूजी श्री रामजीभाई में तो अनेक अभिनंदनीय, उल्लेखनीय विशेषताएँ भी हैं ॥ ५१७ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-४५

४७. पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी की अध्यात्मधारा से हिन्दी जगत को गहराई से परिचित करानेवाले आद्य प्रवक्ता श्री खीमचंदभाई ही थे ॥ ५१८ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-५२

४८. आचार्य समन्तभद्रजी महाराज ने महाराष्ट्र के आंचलिक प्रदेशों में जो शैक्षणिक क्रांति का शंखनाद किया था; ब्र. पण्डित श्री माणिकचन्दजी चवरे उस क्रांति के पुरोधा योद्धा थे॥ ५१९॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-६३

४९. नाम के लिए दान देनेवालों की तो समाज में आज कमी नहीं है॥ ५२०॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-६५

५०. अमर संस्थाओं से जीवन दानियों को जोड़ने की कला और रीति-नीति गोदीकाजी के जीवन से सीखी जा सकती है॥ ५२१॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-६६

५१. गोदीकाजी जैसे दानियों के दर्शन आज दुर्लभ ही हैं, जिन्होंने जमीन भी स्वयं खरीदी और उसपर पूरा स्मारक भवन और उसके अगल-बगल में ३६ कमरे, जिनालय, कार्यालय, भोजनालय, तलघर, विद्वत् निवास, सार्वजनिक प्याऊ, गैरेज, कुआँ एवं अतिथिगृह बनाकर ट्रस्ट को समर्पित कर दिया और उसपर कहीं भी अपना नाम तक न लिखाया॥ ५२२॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-६५

५२. मेरे लिए मित्रता और अमित्रता का आधार कोई लौकिक नहीं रह गया है; यह आध्यात्मिक कार्य ही एक ऐसा आधार है, जो अनुकूलों और प्रतिकूलों के बीच की विभाजन रेखा है॥ ५२३॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-६९

५३. अंतर की गहराई से निकले श्री पूरणचंदजी गोदीका के उक्त शब्द भी यही बताते हैं कि वे धार्मिक सम्बन्धों के आधार पर लौकिक कार्य सिद्ध नहीं करना चाहते थे; अपितु लौकिक सम्बन्धों के माध्यम से भी वीतरागी तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार की गतिविधियों को स्थिरता प्रदान करना चाहते थे॥ ५२४॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-६८

५४. वृद्धावस्था में भी जवानी के जोश से भरे वीतरागी तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में सम्पूर्णत: समर्पित, जिन-अध्यात्म के तलस्पर्शी विद्वान, कर्त्तव्यनिष्ठ, कर्मठ कार्यकर्ता एवं गुरु गंभीर व्यक्तित्व के धनी, लौहपुरुष श्री नेमीचंदजी पाटनी से सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज में आज कौन अपरिचित है?॥ ५२५॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-७१

५५. आध्यात्मिकसत्पुरुष पूज्य श्री कानजीस्वामी द्वारा संपन्न आध्यात्मिक क्रान्ति को मूल दिगम्बर जैन समाज में प्रवाहित करने के भगीरथी प्रयासों के प्रमुख सूत्रधारों में वे (पाटनीजी) भी एक प्रमुख सूत्रधार है॥ ५२६॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-७१

५६. जरा सी प्रतिकूलता आने पर हम प्रवचन नहीं करेंगे या इस काम में सहयोग नहीं देंगे। इसप्रकार की प्रवृत्तिवालों को अपने अंतर को गहराई से देखने की महती आवश्यकता है और पाटनीजी के आदर्श जीवन और विचारों से बहुत कुछ सीखने की आवश्यकता भी है॥ ५२७॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-७६

५७. वीतरागी तत्त्वज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने का कोई भी अवसर चूकना उन्हें स्वीकार नहीं होता, अपितु उसका अच्छे से अच्छा उपयोग कर लेना उनकी अपनी विशेषता है॥ ५२८॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-७६

५८. किसी को खुश करने के लिए जनता के बेशकीमती समय की रेबड़ी बाँटना कतई उचित नहीं है। यदि हमने ऐसा किया है तो उसकी कोई मर्यादा नहीं रहेगी और धीरे-धीरे समय का बहुत बड़ा भाग उन्हीं की भेंट चढ़ जायेगा॥ ५२९॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-७७

५९. ध्यान रहे, हमारा यह बहुमूल्य मनुष्यभव न तो किसी पोपडम के पोषण के लिए समर्पित हो सकता है और न इसे किसी की असीम महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए बलिदान ही किया जा सकता है। हमारा यह बहुमूल्य जीवन तो आत्महित और जिनवाणी की सेवा में ही सम्पूर्णत: समर्पित है॥ ५३०॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१३९

विवेक

१. हिताहित के ज्ञान को ही विवेक कहा जाता है ॥ ५३१ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२१४

२. सत्य, असत्य और अच्छे-बुरे की पहचान ही विवेक है ॥ ५३२ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२१४

३. क्रोधादि मनोविकारों से आत्मा को भिन्न जानना ही विवेक है ॥ ५३३ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२१४

४. वास्तविक तत्त्वज्ञान ही विवेक है ॥ ५३४ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२१५

५. विवेक के बिना जीव जहाँ भी जायेगा ठगा जायेगा, क्योंकि सत्यासत्य का निर्णय करना विवेक का ही काम है ॥ ५३५ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-८१

६. जहाँ विवेक है, वहाँ आनन्द है, निर्माण है और जहाँ अविवेक है वहाँ कलह है, विनाश है ॥ ५३६ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१९९

७. बिना विवेक के श्रद्धा अंधी होती है ॥ ५३७ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-८१

८. जिनागम का मर्म जानने के लिए आगम के आधार के साथ-साथ जागृत विवेक की आवश्यकता भी कदम-कदम पर है ॥ ५३८ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-८२

९. यद्यपि विवेक का स्थान सर्वोपरि है, किन्तु वह विनय और मर्यादा को भंग करनेवाला नहीं होना चाहिए॥ ५३९॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२५

१०. विनय के बिना तो विद्या प्राप्त होती ही नहीं, पर विवेक और प्रतिभा भी अनिवार्य है, इनके बिना भी विद्यार्जन असंभव है॥ ५४०॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२५

११. सत्यासत्य का निर्णय हृदय से नहीं, बुद्धि से, विवेक से होता है॥ ५४१॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३३

१२. विवेकी का मार्ग आलोचना का मार्ग नहीं॥ ५४२॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-३७

१३. विवेकी का विकार क्षणिक होता है; क्योंकि विवेक विकार को टिकने नहीं देता है॥ ५४३॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२१५

१४. अपना विकार दूर करने के लिए अपने में विवेक उत्पन्न करना चाहिए, दुनिया में परिवर्तन नहीं॥ ५४४॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२१६

१५. विवेकी का कार्य तो यही है कि अपनी बात इसप्रकार रखे कि सुननेवाले के सम्मान को चोट भी न पहुँचे और सत्य उसके सामने आ जाए॥ ५४५॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१२

१६. विवेकी वक्ता को सहिष्णु अवश्य बनना चाहिए॥ ५४६॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-३७

१७. विवेकी को रचनात्मक मार्ग अपनाना चाहिए॥ ५४७॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-३७

१८. वह सद्बुद्धि भी किस काम की, जो समय रहते काम न आवे॥ ५४८॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-८५

१९. अनुशासन-प्रशासन हृदय से नहीं, बुद्धि से चलते हैं॥ ५४९॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१९

२०. विवेकीजन यथासंभव संघर्ष को टालने में ही अपनी जीत समझते हैं, उलझने में नहीं ॥ ५५० ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१६

२१. विवेकी वैरागियों पर न तर्क का वश चलता है और न वे भावनाओं के वेग में ही बहते हैं ॥ ५५१ ॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-३४

२२. जबतक स्वयं परखने की दृष्टि न हो तो उधार की बुद्धि से कुछ लाभ नहीं होता ॥ ५५२ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-६३

२३. बुद्धि भी भवितव्य का अनुसरण करती है, जब समय खोटा आता है तो बड़े-बड़े बुद्धिमानों की बुद्धि पर भी पत्थर पड़ जाते हैं ॥ ५५३ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-६४

२४. निरंकुश विवेक पूर्वजों से प्राप्त श्रुतपरम्परा के लिए घातक सिद्ध हो सकता है ॥ ५५४ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२५

२५. स्वयं से उद्घाटित सत्य जितना लाभदायक होता है, उतना दूसरों के द्वारा उद्घाटित नहीं ॥ ५५५ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-६३

२६. सफलता विवेक के धनी कर्मठ बुद्धिमानों के चरण चूमती है ॥ ५५६ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२३

२७. विवेक के खो देने से तो कोई काम दुनिया में सफल नहीं होता है ॥ ५५७ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१६८

२८. विवेकपूर्वक किया गया आचरण ही सफल होता है ॥ ५५८ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०८

२९. समय तो एक ही होता है पर जिससमय अविवेकी निरंतर षड्यन्त्रों में संलग्न रह बहुमूल्य नरभव को यों ही बरबाद कर रहे होते हैं; उसीसमय विवेकीजन अमूल्य मानव-भव का एक-एक क्षण सत्य के अन्वेषण, रमण एवं प्रतिपादन द्वारा स्व-पर हित में संलग्न रह सार्थक व सफल करते रहते हैं ॥ ५५९ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१९९

१

ज्ञानी और अज्ञानी

१. जो समस्त कर्तृत्व के भार से मुक्त हो, उसे ही ज्ञानी कहा जाता है ॥ ५६० ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२०२

२. ज्ञानीजन तो वे हैं, जिन्हें पुण्यभाव भी हेय प्रतिभासित हो ॥ ५६१ ॥
— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१०८

३. ज्ञानी तो अपने प्रयोजन की सिद्धि की सफलता में ही अपनी जीत मानते हैं ॥ ५६२ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१६

४. ज्ञानी को रागात्मक भूमिका में वस्तु का सच्चा स्वरूप जन-जन तक पहुँचाने का भाव आए बिना रहता नहीं है ॥ ५६३ ॥
— सत्य की खोज, पृष्ठ-२५१

५. ज्ञानियों की भक्ति भी उनके प्रमुदित मन का परिणाम होती है, किसी अन्य की प्रसन्नता के लिए नहीं ॥ ५६४ ॥
— पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-४०

६. ज्ञानी भक्त आत्मशुद्धि के अलावा और कुछ नहीं चाहता ॥ ५६५ ॥
— बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-६

७. ज्ञानी की मान्यता तो वस्तुस्वरूप के अनुसार होती है और वचन व्यवहार लोक-व्यवहार के अनुसार होता है ॥ ५६६ ॥
— क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-७९

८. ज्ञानी के हृदय को समझने के लिए उन जैसी गहराई चाहिए, अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है॥ ५६७॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-५५

९. रागियों का राग ज्ञानियों को क्या प्रभावित करेगा? ज्ञान और वैराग्य की किरणें तो अज्ञान और राग को नाश करने में समर्थ होती हैं॥ ५६८॥ — वी. वि. पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-२७

१०. अज्ञानी को अज्ञानवश तथा कदाचित् ज्ञानी को भी रागवश संयोगों और पर्यायों को स्थिर करने की विकल्प तरंगें उठा ही करती हैं॥ ५६९॥ — बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३४

११. अज्ञानजन्य आकुलता-व्याकुलता तो अज्ञानियों को ही होती है, सम्यग्दृष्टि ज्ञानियों को नहीं॥ ५७०॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२४

१२. संयोगीभावों के आधार पर राग या वैराग्य का निर्णय करना उचित नहीं है, ज्ञानी-अज्ञानी का निर्णय भी संयोग और संयोगीभाव के आधार पर नहीं किया जा सकता॥ ५७१॥

— पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-३९

१३. अज्ञानी और ज्ञानी में यही अंतर है कि अज्ञानी के समान ज्ञानी के नकली साधुता नहीं आ सकती। आ जाए तो वह ज्ञानी कैसा?॥ ५७२॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-७१

१४. भोगी के अन्दर विषय-कषाय की अनन्त ज्वाला जलती रहती है और योगियों के भीतर अनंत अकषाय-शान्ति॥ ५७३॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-३९

१५. आत्मानुभूतिप्राप्त पुरुषों के चित्त को वर्तमान आपत्तियाँ और सम्पत्तियाँ विचलित नहीं कर पाती हैं॥ ५७४॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-१७

१६. आत्मानुभवी आत्मा भी जगत के क्रियाकलापों में व्यस्त रहते दिखाई देने पर भी आत्म-विस्मृत नहीं होता॥ ५७५॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-१८

१७. आत्मानुभूतिप्राप्त पुरुष विषयों के बीच रहकर भी विषयों के प्रति रुचि के अभाव एवं आत्मरुचि के सद्भाव के कारण अज्ञानी के समान भोगों में मग्न नहीं होता है॥ ५७६॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-१९

१८. आत्मार्थी का मूल ज्ञेय निजात्मा है, शेष सब प्रासंगिक॥ ५७७॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-९६

१९. आत्मार्थी तो आत्मा की रुचि और आराधना से ही होता है॥ ५७८॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-५१

२०. ध्याता पुरुष अपना अहं ध्येय में स्थापित करता है; साधन में नहीं, साध्य में भी नहीं॥ ५७९॥ — प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१०८

२१. विरागी विवेकियों की प्रवृत्ति सहजसाध्य कार्यों में ही देखी जाती है, मुक्तिमार्ग भी सहजसाध्य ही है; अतः ज्ञानीजनों का चिन्तन भी सहजसाध्य होता है॥ ५८०॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-११०

२२. सम्यग्दृष्टि ज्ञानी धर्मात्मा को क्रिया करते हुए एवं उसका फल भोगते हुए भी यदि कर्मबंध नहीं होता है और निर्जरा होती है तो उसका कारण उसके अन्दर विद्यमान ज्ञान और वैराग्य का बल ही है॥ ५८१॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-४४

२३. कर्मजाल, योग, हिंसा और भोग क्रिया के कारण बंध नहीं होता, तथापि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी धर्मात्मा के अनर्गल प्रवृत्ति नहीं होती और न होनी चाहिए; क्योंकि पुरुषार्थहीनता और भोगों में लीनता मिथ्यात्व की भूमिका में ही होते हैं॥ ५८२॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-४७

२४. निज को जानना, मानना, निज में ही जमना, रमना आत्मार्थी का मूल प्रयोजन है ॥ ५८३ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-९५

२५. आत्मरुचिवान आत्मार्थी जीव निज को तो निज जानने के लिए जानता ही है, परन्तु पर को भी जितना जानना चाहता है, उसके मूल में भी आत्मा के विभावादि को जानना ही रहता है ॥ ५८४ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-९९

२६. आत्मार्थी का एकमात्र कर्त्तव्य समस्त जगत पर से दृष्टि हटाकर एकमात्र त्रैकालिक ध्रुव निज शुद्धात्मतत्त्व पर ही दृष्टि केन्द्रित करना है ॥ ५८५ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१४२

२७. अव्रती और व्रती ज्ञानी के भूमिकानुसार पर्याय में रागांश विद्यमान रहने पर भी वह उन्हें उपादेय नहीं मानता, विधेय भी नहीं मानता ॥ ५८६ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१५३

२८. धर्मात्मा के लौकिक कार्य सहज ही सधे तो सधे पर उनके लक्ष्य से धर्म साधन करना ठीक नहीं है ॥ ५८७ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व एवं कर्तृत्त्व, पृष्ठ-१८८

२९. वीतरागभाव से देखनेवाले ज्ञानियों के तो प्रत्येक घटना मात्र ज्ञान का ज्ञेय बनकर रह जाती है ॥ ५८८ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२१६

३०. योगी जब अन्तर प्रविष्ट होता है तो शान्ति और आनंद का अनुभव करता है, अत: वह एकान्त पसंद करता है ॥ ५८९ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-३९

३१. शुद्धनय के विषयभूत अर्थ (निज भगवान आत्मा) का आश्रय करने वाले ज्ञानीजनों को अनंत संसार के कारणभूत आस्रव-बंध नहीं होते ॥ ५९० ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-४२

३२. किसी भी प्रयोजनभूत-अप्रयोजनभूत परपदार्थ को जानकर उसे ही जानते रहना आत्मार्थी का लक्षण नहीं है ॥ ५९१ ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१६२

३३. आत्मार्थी किसी भी नय का सर्वथा निषेध नहीं कर सकता है ॥ ५९२ ॥ — प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१९७

३४. अविवेकी दुष्कर्म करना तो छोड़ता नहीं और प्राप्त संयोगों पर क्रोध करता है ॥ ५९३ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२१४

३५. तीव्र कषायी अज्ञानी जीवों से की गई तत्त्व चर्चा उनके क्रोध को ही बढ़ाती है ॥ ५९४ ॥ — वी.वि. पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-२३

३६. विषय-कषाय में विचरण करनेवाले मोहीजन विषय-कषाय की ही चर्चा करते हैं ॥ ५९५ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५०

३७. पर में अपनेपन की बुद्धि और राग अज्ञानी को सही निर्णय नहीं करने देते, सही दिशा में सोचने भी नहीं देते ॥ ५९६ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-६१

३८. अज्ञानी जीव पुण्य और पाप में अच्छे-बुरे का भेदकर पुण्य को अपनाना चाहता है, उपादेय मानता है, मोक्षमार्ग जानता है, जबकि आस्रवतत्त्व होने से पाप के समान पुण्यतत्त्व भी हेय है उपादेय नहीं; संसारमार्ग है, मोक्षमार्ग नहीं ॥ ५९७ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-४०

उसकी क्या कीमत ?

भगवान ने यदि 'भव्य' कहा तो इससे महान अभिनन्दन और क्या होगा? भगवान की वाणी में 'भव्य' आया तो मोक्ष प्राप्त होने की गारंटी हो गई। पर इस मूर्ख जगत ने यदि 'भगवान' भी कह दिया तो उसकी क्या कीमत? स्वभाव से तो सभी भगवान हैं, पर जो पर्याय से भी वर्तमान में हमें भगवान कहता है; उसने हमें भगवान नहीं बनाया, वरन् अपनी मूर्खता व्यक्त की है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-७९

१०

पुरुषार्थ

१. मुक्ति के मार्ग में आत्मानुभव की प्राप्ति का प्रयास ही पुरुषार्थ है ॥ ५९८ ॥
— क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-५४

२. दृष्टि का स्वभाव की ओर ढलना ही मुक्ति के मार्ग में अनन्त पुरुषार्थ है ॥ ५९९ ॥
— क्रमबद्धपर्याय पृष्ठ-५४

३. मुक्तिरूपी कार्य सभी जीवों के स्वसमयानुसार पुरुषार्थपूर्वक ही होता है ॥ ६०० ॥
— प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-३२०

४. सर्वज्ञता का सही स्वरूप समझने के लिए आत्मोन्मुखी पुरुषार्थ अपेक्षित है ॥ ६०१ ॥
— क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-६७

५. यदि पात्रता हो तो कुछ भी अलभ्य नहीं, पुरुषार्थियों की पिपासा तृप्त होती ही है, पर सब कुछ अन्तर की लगन पर निर्भर करता है ॥ ६०२ ॥
— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२२

६. पुरुषार्थी को अन्य साधन स्वयमेव मिलते हैं, किन्तु पुरुषार्थ का विवेकपूर्वक सही दिशा में होना अति आवश्यक है ॥ ६०३ ॥
— पं. टो. व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ-१७८

७. उपदेश का महत्त्व भी मात्र प्रेरणातक ही सीमित है, कार्यसिद्धि पुरुषार्थ पर ही निर्भर करती है ॥ ६०४ ॥
— पं. टो. व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ-१७८

८. उपदेश तो सभी सुनते हैं, जिसका काल पक जाता है, जिनकी होनहार ठीक होती है, जो सही दिशा में सही पुरुषार्थ करता है, वह उद्यमी पुरुष सफल होता है ॥ ६०५ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२०२

११

पुण्य-पाप

१. पुण्यभाव और पापभाव दोनों आत्मा की विकारी अन्तःवृत्तियाँ हैं ॥ ६०६ ॥ — ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१०६

२. पापभावों से प्राप्त होनेवाली प्रतिकूलताओं में तो दुःख है ही, पुण्यभावों, शुभपरिणामों से प्राप्त होनेवाली लौकिक अनुकूलताओं एवं भोग सामग्री का उपभोग भी दुःख ही है ॥ ६०७ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-५८

३. सारा जगत फल भोगता नित पुण्य एवं पाप का।
सब त्याग समरस निरत जिनवर सफल जीवन आपका ॥ ६०८ ॥

— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-१७३

४. पुण्य एवं पाप से है पार मग सुख-शान्ति का ॥ ६०९ ॥

— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-५३

५. लौकिक अनुकूलता-प्रतिकूलता अपने-अपने भावों द्वारा पूर्वोपार्जित पुण्य-पाप का फल है ॥ ६१० ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२२

६. बुद्धिमत्ता और अनुभव का कमाई से कोई संबंध नहीं है। कमाना और गमाना तो पुण्य-पाप का खेल है ॥ ६११ ॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-५५

७. पुण्य के उदय में अनुकूल परपदार्थों का बिना मिलाये भी सहज संयोग होता है ॥ ६१२ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१४६

८. धनादि संयोगों की प्राप्ति पूर्वकृत पुण्य का फल है॥ ६१३॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५४

९. पुण्य के अभाव और पाप के उदय में परपदार्थ तो अपने आप ही छूट जाते हैं, पर ममत्व नहीं छूटता॥ ६१४॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१४५

लिखने से पहले लखना आवश्यक है

सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति में पोथियों का भी अपना स्थान है, उनकी भी उपयोगिता है; पर वे ही सब-कुछ नहीं हैं। हम शास्त्रों का अध्ययन करें ही नहीं - मैं यह नहीं कहना चाहती, पर यह बात अवश्य कहना चाहती हूँ कि सम्पूर्णत: उन पर ही निर्भर हो जाना उचित नहीं है। हमें अपने ज्ञान को वस्तुनिष्ठ बनाना चाहिए। किसी भी वस्तु के बारे में अन्तिम निर्णय पर पहुँचने से पहले पोथियों में उसके बारे में क्या लिखा है - यह जानने के साथ-साथ उस वस्तु का अवलोकन भी आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है; अन्यथा हमें तत्सम्बन्धी सत्य का साक्षात्कार नहीं होगा।

आत्मा के सम्बन्ध में तो यह बात और भी अधिक महत्त्व रखती है। उसे जानने के लिए तो हमें निम्नांकित चार सोपानों से गुजरना होगा –

आत्मस्वरूप के प्रतिपादक शास्त्रों का अध्ययन, आत्मज्ञानी गुरुओं से उनके मर्म का श्रवण, विविध युक्तियों द्वारा समुचित परीक्षण एवं आत्मावलोकन अर्थात् आत्मानुभवन। - इन चारों में आत्मानुभवन का सर्वाधिक महत्त्व है, उसके बिना शेष सब निरर्थक ही समझिये।

इसीलिए तो मैं कहती हूँ लिखने से पहले लखना, देखना, अनुभव करना अत्यन्त आवश्यक है।

— चिंतन की गहराहयाँ, पृष्ठ-५४

१२

सुख-दुःख

१. प्रत्येक व्यक्ति के सुख-दुःख के कारण स्वयं उसमें ही विद्यमान हैं ॥ ६१५ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१७

२. अपने सुख-दुःख के कारण अपने में हैं, दूसरों में नहीं; उन्हें अपने में खोजो, दूसरों में नहीं ॥ ६१६ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१७७

३. सच्चा सुख तो आत्मा द्वारा अनुभव की वस्तु है, कहनें की नहीं, दिखाने की भी नहीं ॥ ६१७ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-४

४. हम अपनी गलती से दुःखी हैं और अपनी भूल सुधारकर सुखी हो सकते हैं ॥ ६१८ ॥ — बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-३४

५. दुःख के कारण भौतिक जगत में नहीं, मानसिक जगत में विद्यमान हैं ॥ ६१९ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-५६

६. भोगसामग्री से प्राप्त होनेवाला सुख वास्तविक सुख है ही नहीं, वह तो दुःख का ही तारतम्य रूप भेद है ॥ ६२० ॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-४

७. अपने में से अपनापन खो जाना ही अनन्त दुःखों का कारण है और अपने में अपनापन हो जाना ही अनन्त सुख का कारण है ॥ ६२१ ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-४६

८. चाह स्वयं दुःखरूप है, चाह का अभाव ही सुख है ॥ ६२२ ॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-५

९. सुखी होना ही सुगति और दु:खी होना ही दुर्गति है॥ ६२३॥
— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१५२

१०. इच्छाओं की पूर्ति में सुख है ही नहीं; यह तो सिर का बोझ कंधे पर रखकर सुख मानने जैसा है॥ ६२४॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-३

११. सच्चा सुख तो इच्छाओं के अभाव में है, इच्छाओं की पूर्ति में नहीं॥ ६२५॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-३

१२. संयोगों में सुख खोजना समय और शक्ति का अपव्यय है॥ ६३६॥
— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५०

१३. सुख की प्राप्ति के लिए संयोगों की शोध-खोज में किए गए सम्पूर्ण प्रयत्न निरर्थक ही हैं॥ ६२७॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५१

१४. अनुकूल संयोगों की प्राप्ति होने पर भी संसार में सुख की प्राप्ति सम्भव नहीं है॥ ६२८॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४५

१५. अनुकूल संयोगों की प्राप्ति को सुख मात्र व्यवहार से ही कहा जाता है॥ ६२९॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४५

१६. प्रतिकूल संयोगों को दूरकर एवं अनुकूल संयोगों को मिलाकर सुखी होने की दिशा में किये गये किसी के भी प्रयत्न न तो आजतक सफल हुए हैं और न कभी होंगे॥ ६३०॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४८

१७. संयोग संसार के फन्द ही हैं, फन्दे में फँसानेवाले ही हैं और मानसिक द्वन्द्वरूप चिद्वृत्तियाँ भी दु:खरूप ही हैं॥ ६३१॥
— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४५

१८. परोन्मुखी दृष्टिवाले को सच्चा सुख कभी प्राप्त नहीं हो सकता॥ ६३२॥
— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-४

१९. संयोगों में सुख नहीं है, संयोगों में सुख की कल्पना ही दु:ख का मूल है॥ ६३३॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४७

२०. अपने अज्ञान के कारण परलक्ष्य से उत्पन्न होनेवाले संयोगीभाव यथार्थ में दु:खपरम्परा के बीज हैं ॥ ६३४ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२०६

२१. स्वभावदृष्टिवन्त ही वस्तुत: सुखी होता है ॥ ६३५ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-४४

२२. सुखी होने का सही रास्ता सत्य पाना है, सत्य समझना है ॥ ६३६ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-६३

२३. सच्चा सुख तो आत्मा द्वारा अनुभव की वस्तु है ॥ ६३७ ॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-४

२४. सुख पाने की नहीं, भोगने की वस्तु है, अनुभव करने की चीज है ॥ ६३८ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-५

२५. सुखार्थी को तो स्वाधीनता ही श्रेयस्कर है ॥ ६३९ ॥

— निमित्तोपादान, पृष्ठ-३७

२६. दु:ख का मूल कारण स्वयं को नहीं जानना, नहीं पहचानना ही है ॥ ६४० ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-७६

२७. मूढ़भाव ही अनन्त आकुलता का कारण है ॥ ६४१ ॥

— निमित्तोपादान, पृष्ठ-४३

२८. दृष्टि का सम्यक् होना ही सुख का कारण है और दृष्टि का मिथ्या होना ही अनन्त दु:खों का घर है ॥ ६४२ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-४४

२९. अतीन्द्रिय सुख और अतीन्द्रिय ज्ञान की प्राप्ति के लिए इन्द्रिय-ज्ञान की भी उपेक्षा आवश्यक है ॥ ६४३ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-९०

३०. दूसरों के परिणमन या कार्य में हस्तक्षेप करने की भावना ही मिथ्या, निष्फल और दु:ख का कारण है ॥ ६४४ ॥

— यु.का. स्वामी, पृष्ठ-९५

३१. सुख की प्राप्ति के लिए तो सुख के सागर निजस्वभाव की शोध-खोज आवश्यक है, निजस्वभाव का आश्रय आवश्यक है, उसी का ज्ञान-श्रद्धान आवश्यक है, ध्यान आवश्यक है ॥ ६४५ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५१

३२. निज आत्मा को जाने बिना संसार में सुख की प्राप्ति सम्भव नहीं है ॥ ६४६ ॥ — बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४६

३३. सात तत्त्वों को भली-भाँति जानकर एवं समस्त परतत्त्वों पर से दृष्टि हटाकर अपने आत्मतत्त्व पर दृष्टि ले जाना ही सच्चा सुख प्राप्त करने का उपाय है ॥ ६४७ ॥ — वी.वि. पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-१५

३४. सुख का वास्तविक स्वरूप समझे बिना मात्र सुख चाहने का कोई अर्थ नहीं ॥ ६४८ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-१

३५. सुख भी आत्मा का एक गुण है, जड़ का नहीं; अत: सुख की प्राप्ति आत्मा में ही होगी, शरीरादि जड़ पदार्थों में नहीं ॥ ६४९ ॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-४

३६. सच्चा सुख पाने के लिए हमें परोन्मुखी दृष्टि छोड़कर स्वयं को (आत्मा को) देखना होगा, स्वयं को जानना होगा; क्योंकि अपना सुख अपनी आत्मा में है ॥ ६५० ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-४

३७. पुण्योदय से प्राप्त भोगों में न उलझकर सम्पूर्ण शक्ति से अपने को जानो-पहिचानो और अपने में ही जम जावो, रम जावो, सुखी होने का एकमात्र यही उपाय है ॥ ६५१ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१५२

३८. यदि परपदार्थ या उनके संयोग से सुख-दु:ख माना जाये तो इसके दु:ख का कभी भी अंत होना संभव नहीं है ॥ ६५२ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२०६

३९. दु:ख के यथार्थ कारण को नहीं जाना तो फिर अनंत आनन्द का यथार्थ कारण जो आत्मस्वभाव का आलंबन, उस पर इसकी दृष्टि जाना कैसे सम्भव है? ॥ ६५३ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२०६

४०. सुख की लालसा से संयोगों की ओर देखनेवाले जगत को इस बात का विचार करना, चिन्तन करना, मंथन करना अत्यन्त आवश्यक है कि जिन संयोगों के लिए तू इतना लालायित हो रहा है, जिन्हें जुटाने के लिए सबकुछ भूलकर जमीन-आसमान एक कर रहा है; उनमें सुख है भी या नहीं, उनके मिल जाने पर सुख प्राप्त होगा भी या नहीं? ॥ ६५४ ॥
— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४८

४१. करना ही है तो स्वाध्याय करो, मनन करो, चिन्तन करो और यदि बन सके तो अपने में ही जम जाओ, अपने में ही रम जाओ, सुखी होने का एकमात्र यही उपाय है ॥ ६५५ ॥
— सत्य की खोज, पृष्ठ-२१६

४२. भ्रमरोगवश भव-भव भ्रमण संसार का आधार है ॥ ६५६ ॥
— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४५

४३. दु:ख-द्वन्द्व हैं चिद्वृत्तियाँ संयोग ही जगफन्द है ॥ ६५७ ॥
— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४५

४४. स्वाधीनता सुख-शान्ति का आवास है एकत्व में ॥ ६५८ ॥
— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५९

४५. रागादि विभाव किए जितने, आकुलता उनका फल पाया ॥ ६५९ ॥
— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-१०९

४६. सुख नहीं विषय भोगों में है, तुमको लख यह सद्ज्ञान हुआ ॥ ६६० ॥
— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-१०९

४७. इच्छा निरोध की नहीं चाह, कैसे मिटता भव-विषय-दाह ॥ ६६१ ॥
— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-११०

४८. आकुलतामय संसार सुख, जो निश्चय से है महादु:ख ॥ ६६२ ॥
— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-११०

४९. शुभ-अशुभ वृत्ति एकान्त दु:ख, अत्यन्त मलिन संयोगी है ॥ ६६३ ॥
— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-१२४

५०. संयोगाधीन दृष्टि ही संसार दु:खों का मूल है ॥ ६६४ ॥
— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६२

१३

भक्ति

१. असली भक्ति तो भगवान के गुणों में अनुराग का नाम है ॥ ६६५ ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२१६

२. आत्मीय सद्गुणों में अनुराग को भक्ति कहते हैं ॥ ६६६ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ-१७६

३. जैनदर्शन में निःस्वार्थ भाव की भक्ति है ॥ ६६७ ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२१३

४. निःस्वार्थ भाव की भक्ति वैज्ञानिक और स्वाभाविक भी है ॥ ६६८ ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२१६

५. पूजा-भक्ति का सच्चा लाभ तो विषय-कषाय से बचना है ॥ ६६९ ॥

— वी. वि. पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-९

६. विषयाभिलाषा से की गई भगवान की भक्ति, राग की तीव्रता और भोगों की अभिलाषा से युक्त होने से पुण्यबंध का कारण भी नहीं होती, क्योंकि भोगाभिलाषा एवं रागभाव तो पापभाव है ॥ ६७० ॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-५५

७. ज्ञानी जीव लौकिक लाभ की दृष्टि से भगवान की आराधना नहीं करता है, उसे तो सहज ही भगवान के प्रति भक्ति का भाव आता है ॥ ६७१ ॥

— वी.वि. पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-९

८. लौकिक सुख-भोग की आकांक्षा से परमात्मा की उपासना करने वाला व्यक्ति वीतरागी-सर्वज्ञ भगवान का उपासक नहीं हो सकता॥ ६७२॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२०

९. विषयों की आशा से भगवान की भक्ति करनेवाला भगवान का भक्त नहीं, भोगों का भिखारी है, भिखारी॥ ६७३॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१८३

१०. भोगों की आकांक्षा से भक्ति के नाम पर भगवान से भोगों की भीख माँगनेवालों को पुण्य का बंध भी नहीं होता है॥ ६७४॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१९

११. कपोलकल्पित चमत्कारों की बढ़ा-चढ़ाकर चर्चा करना भगवान का बहुमान नहीं, भक्ति नहीं; वरन् उनमें विद्यमान वीतरागता, सर्वज्ञता, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य आदि गुणों का चिन्तवन, महिमा, बहुमान ही वास्तविक भक्ति है॥ ६७५॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२९

१२. अष्टद्रव्य से पूजनीय तो वीतरागी-सर्वज्ञदेव, वीतरागी मार्ग के निरूपक शास्त्र और नग्न दिगम्बर भावलिंगी गुरु ही हैं॥ ६७६॥

— वी.वि. पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-८

१३. वीतरागता के उपासक अर्थात् मुक्ति के पथिक को मुक्तात्माओं के प्रति भक्ति का भाव आता ही है॥ ६७७॥

— वी.वि. पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-९

१४. चाहे हम साध्यभाव से उपासना करें, चाहे साधकभाव से; पर उपास्य तो एकमात्र निज भगवान आत्मा ही है। उपासना तो निज भगवान आत्मा की ही करनी है॥ ६७८॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१९५

अहिंसा

१. भगवती अहिंसा भगवान महावीर की साधना की चरम उपलब्धि है, उनकी पावन दिव्यध्वनि का नवनीत है, जन्म-मरण का अभाव करनेवाला रसायन है, परम अमृत है ॥ ६७९ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-९५

२. अहिंसा तो अमृत है, जो इस अमृत के प्याले को पियेगा, वह अमर होगा, सुखी होगा, शान्त होगा ॥ ६८० ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-९६

३. महावीर ने जन साधारण में संभावित शारीरिक हिंसा को कम करने के लिए सह-अस्तित्व, सहिष्णुता और समभाव पर जोर दिया, तो वैचारिक हिंसा से बचने के लिए अनेकान्त का समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्रदान किया ॥ ६८१ ॥ — ती.भ. महावीर, पृष्ठ-११

४. भगवान महावीर ने अहिंसा का जो उपदेश आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व दिया था, उसकी जितनी आवश्यकता आज है, उतनी महावीर के जमाने में भी नहीं थी; क्योंकि आज हिंसा ने भयंकररूप धारण कर लिया है ॥ ६८२ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-६९

५. जैनाचार के मूल में सर्वत्र अहिंसा विद्यमान है ॥ ६८३ ॥

— ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१७०

६. जिसमें सब पाप प्रणालियाँ गर्भित हैं, ऐसी हिंसा ही सबसे बड़ा अधर्म है और जिसमें सर्वधर्म गर्भित हैं, ऐसी अहिंसा ही परमधर्म है ॥ ६८४ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-४५

७. अन्य दर्शनों की अहिंसा जहाँ समाप्त होती है, जैनदर्शन की अहिंसा वहाँ से आरम्भ होती है ॥ ६८५ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-८२

८. हिंसा का संबंध मृत्यु के होने या न होने से नहीं है, हिंसक भावों के सद्भाव से है ॥ ६८६ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-९४

९. हिंसा और अहिंसा का निर्णय प्राणी के मरने या न मरने से नहीं, रागादिभावों की उत्पत्ति और अनुत्पत्ति से है ॥ ६८७ ॥

— वी. वि. पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-२३

१०. हिंसा-अहिंसा का संबंध परजीवों के जीवन-मरण, सुख-दुःख से न होकर आत्मा में उत्पन्न होनेवाले राग-द्वेष-मोह के परिणामों से है ॥ ६८८ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-२४

११. यदि कोई व्यक्ति राग-द्वेषादि भाव न करके, योग्यतम आचरण करें तथा सावधानी रखने पर भी यदि किसी जीव का घात हो जाये, तो वह हिंसा नहीं है ॥ ६८९ ॥ — वी.वि. पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-२३

१२. कोई जीव अंतरंग में कषायभाव रखे और बाह्य में भी असावधान रहे; पर उसके निमित्त से किसी जीव का घात न भी हुआ हो तो भी वह हिंसक है ॥ ६९० ॥ — वी.वि. पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-२३

१३. हिंसा-अहिंसा का संबंध सीधा आत्मपरिणामों से है ॥ ६९१ ॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-२४

१४. अहिंसा तो वीतराग परिणति का नाम है, शुभाशुभ राग का नाम नहीं ॥ ६९२ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-२७

१५. हिंसा-अहिंसा जड़ में नहीं होती, जड़ के कारण भी नहीं होती ॥ ६९३ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-२४

१६. हिंसा की उत्पत्ति हिंसक के हृदय में होती है, हिंसक की आत्मा में होती है, हिंस्य में नहीं ॥ ६९४ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-९५

१७. सामाजिक जीवन में विषमता रहते अहिंसा नहीं पनप सकती ॥ ६९५ ॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-५८

१८. अहिंसा के सामाजिक प्रयोग के लिए जीवन में समन्वय वृत्ति, सह-अस्तित्त्व की भावना एवं सहिष्णुता अति आवश्यक है ॥ ६९६ ॥

— ती.भ. महावीर, पृष्ठ-११

१९. यदि हम चाहते हैं कि हमारे जीवन में हिंसा प्रस्फुटित ही न हो तो हमें उसे आत्मा के स्तर पर, मन के स्तर पर ही रोकना होगा; क्योंकि यदि आत्मा या मन के स्तर पर हिंसा उत्पन्न हो गई तो वह वाणी और काया के स्तर पर भी प्रस्फुटित होगी ही ॥ ६९७ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-८२

२०. जिसका आचार अहिंसक है, जिसने विचार में वस्तुतत्त्व को स्पर्श किया है तथा जो अपने में उतर चुका है; चाहे वह चांडाल ही क्यों न हो; वह मानव ही नहीं देव से भी बढ़कर है ॥ ६९८ ॥

— तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-५७

२१. परमसत्य की स्वीकृति ही भगवती अहिंसा की सच्ची आराधना है ॥ ६९९ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-९५

२२. वीरता हिंसा की पर्याय नहीं, अहिंसा का स्वरूप है ॥ ७०० ॥

— ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-७१

२३. यदि हिंसा एक बार आत्मा में, मन में उत्पन्न हो गई तो फिर वह कहीं न कहीं प्रकट अवश्य होगी ॥ ७०१ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-८०

२४. हिंसा प्रतिहिंसा को जन्म देती है ॥ ७०२ ॥— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-६०

२५. जान की बाजी लगाने से अहिंसा धर्म की रक्षा नहीं होती है, हिंसा उत्पन्न होती है ॥ ७०३ ॥ — अहिंसा म. दृष्टि में, पृष्ठ-३०

२६. आचारशुद्धि के लिए अहिंसा और विचारशुद्धि के लिए अनेकान्तात्मक दृष्टिकोण आवश्यक है ॥ ७०४ ॥ — ती.भ. महावीर, पृष्ठ-८

२७. अहिंसा की ही दिव्य-ज्योति विचार के क्षेत्र में अनेकान्त, वचन व्यवहार के क्षेत्र में स्याद्वाद और सामाजिक तथा आत्मशाक्ति के क्षेत्र में अल्पपरिग्रह या अपरिग्रह के रूप में प्रगट होती है ॥ ७०५ ॥

— ती.भ. महावीर, पृष्ठ-११

२८. आज हिंसा का भी राष्ट्रीयकरण हो गया है ॥ ७०६ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-७३

२९. हिंसात्मक प्रवृत्तियों से ही तो देश और समाज नष्ट होते हैं ॥ ७०७ ॥

— तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-५५

३०. द्वेषमूलक हिंसा भी मूलतः रागमूलक ही है ॥ ७०८ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-८९

३१. राग चाहे अपनों के प्रति हो या परायों के प्रति हो, चाहे अच्छे लोगों के प्रति हो या बुरे लोगों के प्रति हो, पर है तो वह हिंसा ही, बुरा ही ॥ ७०९ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-८७

३२. अकेली हिंसा ही नहीं,पाँचों पापों का मूलकारण एकमात्र रागभाव ही है ॥ ७१० ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-८६

३३. राग की तीव्रता और अधिकता ही महाहिंसा है ॥ ७११ ॥

—धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-९३

३४. वीतरागभाव ही अहिंसा है, वस्तु का स्वभाव होने से वही धर्म है और वही मुक्ति का कारण है ॥ ७१२ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ-२०३

१५

शाकाहार

१. मनुष्य प्रकृति से शाकाहारी ही है ॥ ७१३ ॥ — शाकाहार, पृष्ठ-६

२. शाकाहारी पशुओं के समान मनुष्य भी सामाजिक प्राणी है, उसे मिलजुलकर ही रहना है। मिलजुलकर रहने में ही संपूर्ण मानवजाति का भला है ॥ ७१४ ॥ — शाकाहार, पृष्ठ-६

३. शाकाहारियों में जबरदस्त जीवनशक्ति होती है ॥ ७१५ ॥

— शाकाहार, पृष्ठ-६

४. जीवदया जैनाचार का मूल आधार है ॥ ७१६ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२१७

५. जैनाहार विज्ञान का मूल आधार अहिंसा है ॥ ७१७ ॥

— शाकाहार, पृष्ठ-११

६. जैनाचार एवं जैनविचार प्रकृति के अनुकूल है, पूर्णत: वैज्ञानिक है; आवश्यकता उन्हें सही एवं सशक्त रूप में प्रस्तुत करने की है ॥ ७१८ ॥ — शाकाहार, पृष्ठ-८

७. मांसाहार से होनेवाली आर्थिक एवं स्वास्थ्य संबंधी हानि और उसके त्याग से होनेवाले लाभों का दिग्दर्शन किया जाना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक नैतिकता एवं अहिंसा के आधार पर भावनात्मक स्तर पर मांसाहार से अरुचि कराना भी है ॥ ७१९ ॥

— शाकाहार, पृष्ठ-१४

८. शुद्ध सात्विक सदाचारी जीवन के बिना सुख-शांति प्राप्त होना तो दूर सुख-शांति प्राप्त करने का उपाय समझने की पात्रता भी नहीं पकती ॥ ७२० ॥ — शाकाहार, पृष्ठ-१६

९. लौकिक सुख-शांति के अभिलाषियों को भी शाकाहारी तो होना ही होगा, अन्यथा उनका जीवन एवं परिकर भी विकृत हुए बिना नहीं रहेगा ॥ ७२१ ॥ — शाकाहार, पृष्ठ-१६

१०. जो पदार्थ स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हों, उन पदार्थों का सेवन तीव्र राग बिना संभव नहीं है ॥ ७२२ ॥ — शाकाहार, पृष्ठ-१३

११. अभक्ष्य खाने से और खाने के भाव से आत्मा का पतन होता है ॥ ७२३ ॥ — बालबोध पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-२१

१२. अंडे की तुलना दूध से असंगत तो है ही, अज्ञान की सूचक भी है ॥ ७२४ ॥ — शाकाहार, पृष्ठ-१

१३. अंडा दूध के समान नहीं है, गाय के बछड़े के समान है ॥ ७२५ ॥ — शाकाहार, पृष्ठ-१०

१४. अंडे को शाकाहारी बताना अंडे के व्यापारियों का षड्यंत्र है, जिसके शिकार शाकाहारी लोग हो रहे हैं ॥ ७२६ ॥ — शाकाहार, पृष्ठ-१०

१५. शाकाहारी अंडे के दुष्प्रचार से शाकाहारियों को बचाना हम सब का प्राथमिक कर्त्तव्य है ॥ ७२७ ॥ — शाकाहार, पृष्ठ-११

१६. रात्रि भोजन में गृद्धता अधिक होने से राग की तीव्रता रहती है; अत: वह आत्म-साधना में भी बाधक है ॥ ७२८ ॥ — बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-१८

१७. जब शाकाहारी पशुओं के भी सहज ही रात्रि भोजनत्याग होता है तो फिर मनुष्य का रात्रि भोजन करना कहाँ तक उचित है? ॥ ७२९ ॥ — शाकाहार, पृष्ठ-६

१८. मनुष्य और शाकाहारी पशु प्रकृति से दिवाहारी ही होते हैं; अत: जैनधर्म का रात्रि भोजनत्याग का उपदेश प्रकृति के अनुकूल एवं पूर्णत: वैज्ञानिक है ॥ ७३० ॥ — शाकाहार, पृष्ठ-७

१६

पंचकल्याणक

१. पंचकल्याणक वे महान क्रांतिकारी घटनाएँ, हैं जो प्राय: प्रत्येक तीर्थंकर के जीवन में घटित होती हैं और उनके परम कल्याण का कारण बनती हैं ॥ ७३१ ॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-३

२. ये पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव भगवान बनने की प्रक्रिया के महोत्सव हैं ॥ ७३२ ॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-७

३. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव जैनसमाज का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नैमित्तिक महोत्सव है ॥ ७३३ ॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-१

४. यह महोत्सव अन्य लौकिक मेलों के समान आमोद-प्रमोद का मेला नहीं है, यह एक विशुद्ध आध्यात्मिक मेला है ॥ ७३४ ॥। — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-१

५. महान धर्मोत्सवों को मनोरंजन एवं मानप्रतिष्ठा का साधन न बनाकर वीतरागी तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार का साधन बनाया जाना चाहिए ॥ ७३५ ॥। — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-७३

६. रंगारंग के कार्यक्रम तो राग-रंग में ही निमित्त बनते हैं, वीतरागतारूप धर्म के निमित्त तो वीतरागता के पोषक कार्यक्रम ही हो सकते हैं ॥ ७३६ ॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-७३

७. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव व्यवहार के सर्वोत्कृष्ट नाटक हैं, जो हमारे जीवन को परिमार्जित करते हैं ॥ ७३७ ॥। — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-११

८. आवश्यकतानुसार ही होनेवाले जिनमंदिरों के निर्माण और पंचकल्याणकों पर प्रतिबंध लगाने के स्थान पर उनमें समागत विकृतियों का परिमार्जन किया जाना अधिक जरूरी है, उनका उपयोग वीतरागी धर्म के समुचित प्रचार-प्रसार में किया जाना ही सही मार्ग है॥ ७३८॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-५

९. जन्म लेना कोई अच्छी बात नहीं है, पर जिस जन्म में जन्म-मरण का नाश कर भगवान बना जा सके, वही जन्म सार्थक है॥ ७३९॥

— बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-३२

१०. जो जन्म स्व-पर के कल्याण से सार्थक हुआ हो, वही जन्म कल्याणरूप होता है, इसीकारण तीर्थंकरों का जन्मकल्याणक महोत्सव मनाया जाता है॥ ७४०॥। — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-२६

११. जिस जन्म के बाद मरण न हो, निर्वाण हो; वह जन्म ही कल्याण स्वरूप है॥ ७४१॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-२६

१२. जो दिव्यध्वनि खिरी, वही भगवान ऋषभदेव का उपदेश है, उसके पूर्व उन्होंने जो कुछ भी कहा, वह सब राजा ऋषभदेव की कथनी है, जो मुक्तिमार्ग में आवश्यक नहीं॥ ७४२॥

— पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-३०

आत्मा स्वयं परमात्मा है

विश्व के समस्त दर्शनों में जैनदर्शन ही एक ऐसा दर्शन है, जो यह कहता है कि प्रत्येक आत्मा स्वयं परमात्मा है। अपना यह आत्मा स्वभाव से तो परमात्मा है ही, यदि स्वयं को जाने, पहिचाने और स्वयं में ही जम जावे, रम जावे तो प्रकट रूप से पर्याय में भी परमात्मा बन सकता है। **— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-१४१**

१७

देव

१. भगवान जन्मते नहीं, बनते हैं॥ ७४३॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-२९

२. भगवान कोई अलग नहीं होते। जो पुरुषार्थ करे, वही भगवान बन सकता है॥ ७४४॥ — बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-३४

३. भगवान की शरण में जाने वाले भगवानदास बनते हैं, भगवान नहीं॥ ७४५॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२०३

४. भगवान दीन-हीन नहीं होते और दीन-हीन भगवान नहीं होते॥ ७४६॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-७३

५. तीर्थंकर भगवान वस्तुस्वरूप को जानते हैं, बताते हैं; बनाते नहीं॥ ७४७॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१९

६. वीतरागी भगवान पर को जानते तो हैं, पर वे उनमें उलझते नहीं हैं, अटकते नहीं, भटकते भी नहीं॥ ७४८॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-५९

७. मंदिर के विकृत हो जाने से उसमें विराजमान देवता विकृत नहीं हो जाते॥ ७४९॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१५

८. कर्तृत्व के अहंकार एवं अपनत्व के ममकार से दूर रहकर जो स्व और पर को समग्र रूप से अप्रभावित रहकर एक समय में परिपूर्ण जाने; वही भगवान है॥ ७५०॥

— तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-५९

९. परमात्मा पूर्ण निराकुल होने से अनंत सुखी हैं ॥ ७५१ ॥

— वी. वि. पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-११

१०. भगवान धर्म की स्थापना नहीं करते, वरन् धर्म का आश्रय लेकर आत्मा से परमात्मा बनते हैं ॥ ७५२ ॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-२२

११. भगवान को सही रूप में पहिचाने बिना सही अर्थों में उनकी उपासना की ही नहीं जा सकती ॥ ७५३ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२२

१२. पंचपरमेष्ठी का स्वरूप वीतराग-विज्ञानमय है; अतः वे पूज्य हैं ॥ ७५४ ॥ — बालबोध पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-१२

१३. वस्तुतः हम मूर्ति के नहीं, मूर्ति के माध्यम से मूर्तिमान (वीतरागी सर्वज्ञ भगवान) के पुजारी हैं ॥ ७५५ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-५३

१४. वीतरागी परमात्मा का उपासक ही वीतरागता का उपासक होता है ॥ ७५६ ॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-११९

१५. सर्वज्ञ का स्वरूप स्पष्ट हुए बिना शास्त्रों का मर्म समझना भी संभव न होगा ॥ ७५७ ॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-८१

१६. सर्वज्ञता की श्रद्धा बिना, पर्याय में सर्वज्ञता प्रकट नहीं होती ॥ ७५८ ॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-७८

१७. केवली भगवान जिसप्रकार स्वयं को स्वयं में लीन होकर जानते हैं, उसप्रकार पर को उसमें लीन होकर नहीं जानते ॥ ७५९ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-४६

१८. सर्वज्ञ की भविष्यज्ञता से इन्कार करने का अर्थ समस्त जिनागम को तिलाञ्जलि देना होगा ॥ ७६० ॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-१०

१९. समस्त जिनागम की प्रामाणिकता का आधार वीतरागी सर्वज्ञ परमात्मा ही है ॥ ७६१ ॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१२१

२०. सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का सही स्वरूप समझना ही कुगुरु, कुदेव-कुशास्त्र से बचने का सच्चा उपाय है॥ ७६२॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-६३

२१. यदि हम सामाजिक स्तर पर उन वीतरागता विरोधी प्रवृत्तियों को नहीं हटा सकते तो इनसे अपने आपको तो बचा ही सकते हैं॥ ७६३॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-५४

यह विचारने की बात है

पहले के जमाने में युद्ध के मैदान में सिपाही लड़ते थे और सिपाही ही मरते थे; पर आज युद्ध सिपाहियों तक ही सीमित नहीं रह गया है, युद्ध मैदानों तक ही सीमित नहीं रह गया है; आज उसकी लपेट में सारी दुनिया आ गयी है। आज की लड़ाइयों में मात्र सिपाही ही नहीं मरते, किसान भी मरते हैं, मजदूर भी मरते हैं, व्यापारी भी मरते हैं, खेत-खलियान भी बर्बाद होते हैं, कल-कारखाने भी नष्ट होते हैं, बाजार और दुकानें भी तबाह हो जाती हैं। अधिक क्या कहें, आज के इस युद्ध में अहिंसा की बात कहनेवाले हम जैसे पण्डित और साधुजन भी नहीं बचेंगे, मन्दिर-मस्जिद भी साफ हो जावेंगे। आज के युद्ध सर्वविनाशक हो गये हैं। आज हिंसा जितनी भयानक हो गयी है, भगवान महावीर की अहिंसा की आवश्यकता भी आज उतनी ही अधिक हो गयी है।

इस स्थिति में भगवान महावीर को आउट ऑफ डेट कहना, अनुपयोगी कहना कहाँ तक उचित है ? — यह विचारने की बात है।

- चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-२५८-५९

१८

शास्त्र

१. वीतरागता की पोषक ही जिनवाणी कहलाती है ॥ ७६४ ॥

— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-९५

२. वीतराग की वाणी वीतरागता की ही पोषक होती है ॥ ७६५ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-७९

३. शास्त्र की अच्छाई तो वीतरागतारूप धर्म के वर्णन में है, कोरी कहानियों में नहीं ॥ ७६६ ॥ — वी. वि. पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-१९

४. समस्त शास्त्रों का तात्पर्य मात्र वीतरागता है, क्योंकि वीतराग की वाणी के आधार पर ही तो शास्त्रों का निर्माण हुआ है ॥ ७६७ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-७८

५. सच्चे सुख और शान्ति की मार्गदर्शक यह नित्यबोधक वीतराग वाणी ही है, जिनवाणी ही है ॥ ७६८ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१८३

६. जब वीतरागी-सर्वज्ञदेव का अभाव हो, वीतरागी संतों के भी दर्शन दुर्लभ हो जावें; तब शास्त्र-साहित्य ही एकमात्र शरण है ॥ ७६९ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-७४

७. सर्वज्ञ भगवान के इस क्षेत्र, काल में अभाव होने एवं आत्मज्ञानियों की विरलता होने से एक जिनवाणी ही शरण है ॥ ७७० ॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१२२

८. बुद्धि की हीनता के कारण अब केवल श्रुत के आधार पर सिद्धान्त की सुरक्षा सम्भव नहीं है। अब उसे लिखित रूप से भी सुरक्षित किया जाना चाहिए॥ ७७१॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२१

९. हम उन आचार्य भगवन्तों का जितना उपकार मानें कम है, जिन्होंने अत्यन्त करुणा करके आत्म-हितकारी जिनवाणी लिपिबद्ध करके सुरक्षित कर दी॥ ७७२॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-४३

१०. जिनेन्द्र परमात्मा की वाणी सुनने का साक्षात् सुअवसर प्राप्त न होने पर उनकी वाणी के अनुसार लिखी गई जिनवाणी का स्वाध्याय कर उसके विशेषज्ञ वक्ताओं से उसका मर्म सुनकर, समझकर आत्मकल्याण में प्रवृत्त होना चाहिए॥ ७७३॥

— पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-७९

११. जिस भी ज्ञानी धर्मात्मा से भगवान आत्मा की बात सुनने को मिले; उसे उसी प्रेमभाव से सुनो, जिस प्रेमभाव से परमात्मा की बात सुनना चाहते हो; क्योंकि बात तो उसी परमात्मा की है, तुम्हारे आत्मा की है॥ ७७४॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-७८

१२. उपादान के रूप में निजात्मा और निमित्त के रूप में जिनवाणी ही आज हमारी सर्वस्व है॥ ७७५॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१८४

१३. क्रोधादि का अभाव या कम करने का उपाय एकमात्र तत्त्वज्ञान का अभ्यास ही है॥ ७७६॥। — बिखरे मोती, पृष्ठ-२१५

१४. परमात्मा की दिव्यध्वनि का सार जहाँ से भी प्राप्त हो; वहाँ से ही प्राप्तकर अपने कल्याण में प्रवृत्ति करना चाहिए॥ ७७७॥

— पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-७९

१५. जबतक अंतर में विषयों से अरुचि और निज भगवान आत्मा में सच्ची रुचि जागृत नहीं होगी; तबतक ऊपर-ऊपर से अध्ययन करने से कुछ होनेवाला नहीं है॥ ७७८॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१९९

१६. भले ही साक्षात् परमात्मा से सुने, पर अरुचिपूर्वक सुनने से कुछ हाथ नहीं लगेगा॥ ७७९॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-७८

१७. यदि हमें अपने इस परिभ्रमण को रोकना है, संसारचक्र को तोड़ना है तो स्वयं के उपयोग को स्वयं में जोड़ना होगा, सम्पूर्ण जगत से नाता तोड़ना होगा और स्वयं को जानकर-पहिचान कर स्वयं में ही समा जाना होगा। यही एक मार्ग है, शेष सब उन्मार्ग हैं। यही भगवान की दिव्यध्वनि का सार है॥ ७८०॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-८०

१८. साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, पर यह नहीं भूलना चाहिए कि साहित्य मात्र दर्पण नहीं, मार्गदर्शक भी है, प्रेरक भी है। जो साहित्य प्रकाश न बिखेरे, मार्गदर्शन न करे, सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा न दे, मात्र वर्तमान समाज का कुत्सित चित्र प्रस्तुत करे या मनोरंजन तक सीमित रहे, वह साहित्य साहित्य नहीं, साहित्य के नाम पर कलंक है॥ ७८१॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२

१९. जिनवाणी में बिना प्रयोजन एक शब्द का भी प्रयोग नहीं होता॥ ७८२॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-५५

२०. जिनागम अगाध है, उसका पार पाना सहज संभव नहीं है॥ ७८३॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-८७

२१. शास्त्रों का मर्म समझने के लिए भी बुद्धि की तीक्ष्णता चाहिए॥ ७८४॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-७७

२२. कथन शैली का ज्ञान हुए बिना जैन साहित्य का मर्म समझ में नहीं आ सकता॥ ७८५॥। — पं. टो. व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ-१२७

२३. शास्त्रों में विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार के कथन होते हैं। उनकी सही अपेक्षा समझकर उनका अर्थ समझना चाहिए; अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है॥ ७८६॥। — सत्य की खोज, पृष्ठ-७८

२४. भटक जाने के अवसर भी कम नहीं हैं, अत: आत्मार्थियों के लिए स्वाध्याय के साथ-साथ सत्समागम भी अपेक्षित है ॥ ७८७ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१९८

२५. समाज के जागृत रहने पर ही तीर्थ सुरक्षित रहेंगे और जीवन्त तीर्थ जिनवाणी भी सुरक्षित रहेगी ॥ ७८८ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-५८

२६. जिनवाणी मात्र आलमारियों में ही सुरक्षित नहीं रहना चाहिए, लोगों के कण्ठों में भी बसना चाहिए, दिलों और दिमाग से भी सुरक्षित रहना चाहिए ॥ ७८९ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-५९

२७. समस्त जिनागम की रचना का एकमात्र उद्देश्य आत्मस्वरूप का प्रतिपादन करना है ॥ ७९० ॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१६४

एक शुद्धात्मा ही है

तात्पर्य यह है कि पर से भिन्न और अपने से अभिन्न इस भगवान आत्मा में प्रदेशभेद, गुणभेद एवं पर्यायभेद का भी अभाव है। भगवान आत्मा के अभेद-अखण्ड इस परमभाव को ग्रहण करनेवाला नय ही शुद्धनय है और यही भूतार्थ है, सत्यार्थ है; शेष सभी व्यवहारनय अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं। जो व्यक्ति इस शुद्धनय के विषयभूत भगवान आत्मा को जानता है, वह समस्त जिनशासन का ज्ञाता है; क्योंकि समस्त जिनशासन का प्रतिपाद्य एक शुद्धात्मा ही है, इसके ही आश्रय से निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप मोक्षमार्ग प्रगट होता है। मोक्षार्थियों के द्वारा एकमात्र यही आराध्य है, यही उपास्य है; इसकी आराधना-उपासना का नाम ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-३००

१९

गुरु

१. यदि देव साक्षात् मोक्षस्वरूप हैं तो गुरु साक्षात् मोक्षमार्ग (संवर, निर्जरा) हैं ॥ ७९१ ॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१२६

२. आत्मविश्वास (सम्यग्दर्शन), आत्मज्ञान (सम्यग्ज्ञान) और आत्मलीनता (सम्यग्चारित्र) जिसमें हो तथा जिसका बाह्याचरण भी आगमानुकूल हो, वास्तव में गुरु तो वही है ॥ ७९२ ॥

— वी. वि. पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-१३

३. जैनदर्शन में गुरुत्व की कल्पना कुलादिक की अपेक्षा नहीं है, किन्तु दर्शन, ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा से है ॥ ७९३ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ-१७५

४. ज्ञानी गुरुओं के संरक्षण और मार्गदर्शन में ही आत्मा की खोज का पुरुषार्थ प्रारम्भ होता है ॥ ७९४ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१६७

५. ज्ञान का मूल तो गुरु ही हैं ॥ ७९५ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ-१७५

६. गुरुदेव बनते हैं, बनाए नहीं जाते; जो बनाने से बनते हैं या बनाये जाते हैं, वे गुरु नहीं, महंत होते हैं, मठधारी होते हैं; उनसे गुरुगम नहीं मिलता, गुरुडम चलता है ॥ ७९६ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-३९

७. गुरु के प्रति अडिग आस्था का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, पर वह आतंक की सीमा तक न पहुँचना चाहिए, अन्यथा वह विवेक को कुण्ठित कर देगी ॥ ७९७ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२५

८. एकमात्र नग्नता ही मार्ग है, शेष सब उन्मार्ग हैं ॥ ७९८ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-१०३

९. गुरु नग्न रहते हैं, यह तो सत्य है; पर नग्न रहने मात्र से कोई गुरु नहीं हो जाता ॥ ७९९ ॥ — वी. वि. पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-१२

१०. समागत समस्याओं का समुचित समाधान तो स्व-विवेक से ही संभव है; क्योंकि गुरु की उपलब्धि तो सदा सर्वत्र संभव नहीं, परम्पराएँ भी हर समस्या का समाधान प्रस्तुत नहीं कर सकतीं; क्योंकि एक तो समस्याओं के अनुरूप परम्पराओं की उपलब्धि सदा संभव नहीं रहती; दूसरे परिस्थितियाँ भी तो बदलती रहती हैं ॥ ८०० ॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२५

११. जो अपने गुरु का निर्णय भी स्वयं से नहीं करना चाहता है, उसका ठगाया जाना तो निश्चित ही है ॥ ८०१ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-२०८

१२. भीड़ तो भयाक्रांत भोगी चाहते हैं, निर्भय योगी नहीं ॥ ८०२ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-३९

१३. मुनिराज जो धर्मगुरु हैं, जातियों की सुरक्षा उनका उत्तरदायित्व नहीं ॥ ८०३ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२५३

१४. सहज सरलता के धनी महात्माओं का कुछ भी तो गुप्त नहीं होता ॥ ८०४ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१७

१५. शत्रु-मित्र के प्रति समभाव रखनेवाले साधु ही सच्चे साधु हैं ॥ ८०५ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-६५

१६. साधु को श्रुत के सागर से संयम का सागर होना अधिक आवश्यक है ॥ ८०६ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१९

१७. साधु बनना बहुत सरल है, साधु होना बहुत कठिन है ॥ ८०७ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-६५

१८. साधु बनने में वेष पलटना पड़ता है, साधु होने में स्वयं पलट जाता है ॥ ८०८ ॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-६५

१९. साधु बनना अभिनय है, साधु होना वस्तुस्थिति है ॥ ८०९ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-६५

२०. वस्तुतः साधु की कोई ड्रेस नहीं है, सब ड्रेसों का त्याग ही साधु का वेष है ॥ ८१० ॥ — वी. भ. महावीर, पृष्ठ-११

२१. बिना आत्मज्ञान के तो कोई मुनि बन ही नहीं सकता ॥ ८११ ॥ — वी. वि. पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-१३

२२. बिना सम्यक् श्रद्धा और ज्ञान के सच्ची साधुता प्रकट नहीं होती ॥ ८१२ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-७०

२३. सच्ची साधुता से जगत-हित होता है, पर जगत-हित के लिए साधु नहीं बना जाता है ॥ ८१३ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-७०

२४. सच्चे साधुओं के द्वारा आत्महित के साथ-साथ जगत-हित भी सहज ही होता है ॥ ८१४ ॥। — सत्य की खोज, पृष्ठ-७०

२५. दिगम्बर कोई वेष नहीं है, सम्प्रदाय नहीं है, वस्तु का स्वरूप है ॥ ८१५ ॥ — वी. भ. महावीर, पृष्ठ-१२

२६. दिगम्बर मुनिधर्म ही दिगम्बर आम्नाय का मूल आधार है ॥ ८१६ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१७४

२७. वास्तविक धर्म तो शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म ही है ॥ ८१७ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-७१

२८. साधुता तो सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक सहज वैराग्य परिणति का फल है ॥ ८१८ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-७१

२९. वीतरागी नग्न दिगम्बर साधु भी हमारे सिरमौर हैं ॥ ८१९ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१७२

३०. जो व्यक्ति सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवन्त मुनिराजों की भी मत्सरभाव से वन्दना नहीं करते हैं, वे भी सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा नहीं हैं॥ ८२०॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-१०२

३१. जो साधु आत्मध्यान और अध्ययन-मनन-चिन्तन को छोड़कर जगत प्रपंचों में उलझे रहते हैं; वे साधु नहीं, पाखण्डी हैं॥ ८२१॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१८३

३२. प्रपंचों में उलझे गृहस्थी की संगति साधु को पल मात्र भी नहीं करनी चाहिए॥ ८२२॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२३३

३३. वनवासी मुनिराज नगरवासी गृहस्थों की संगति से जितने अधिक बचे रहेंगे, उतनी ही अधिक आत्म-साधना कर सकेंगे॥ ८२३॥

— पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-५८

३४. गृहस्थों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे भी मुनिराजों को जगत के प्रपंचों में न उलझावें॥ ८२४॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-६१

३५. जो कार्य जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस रूप में होना होता हैं; वह उसी क्षेत्र में, उसी काल में, उसी रूप में होता है; उसे कोई भी व्यक्ति बदलने में समर्थ नहीं है, फिर भी अज्ञानी जीव व्यर्थ की आकुलता करके दु:खी हुआ करते हैं और ढ़ोंगी-पाखंडी साधुओं के चक्कर में अपना सब कुछ खो बैठते हैं॥ ८२५॥

— सत्य का खोज, पृष्ठ-२

३६. मंत्र-तन्त्रवाद साधुता की शोभा नहीं॥ ८२६॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-३९

३७. भीड़ से घिरा रहना और मेला लगा रहना कोई महान साधुता की निशानी नहीं है॥ ८२७॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-३९

३८. साधु पुरुषों को अपने व्यवहार और विकल्पों की सीमा को पहिचानना ही चाहिए। समाज और देश में उत्तेजना फैलानेवाले कार्य श्रमण भूमिका में तो अक्षम्य अपराध ही हैं॥ ८२८॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-४

३९. सम्यग्दर्शन रहित शिथिल श्रमण स्वयं को तो संसार सागर में डुबोते ही हैं, साथ ही अनुयायियों को भी ले डूबते हैं तथा निर्मल दिगम्बर जिनधर्म को भी कलंकित करते हैं, बदनाम करते हैं ॥ ८२९ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-११६

४०. देहसम्बन्धी मिथ्या विकल्पों में उलझना ऋषियों का कार्य नहीं ॥ ८३० ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१५

४१. गृहस्थोचित शुभराग तो मुनियों के लिए सर्वथा हेय ही है ॥ ८३१ ॥

— आ. कुंद. परमागम पृष्ठ-७१

४२. साधु भी कहीं आदेश निकालते हैं, वे तो परहित की भावना से मात्र उपदेश ही देते हैं, वह भी उनका मुख्य कार्य नहीं है, मुख्यकार्य तो ध्यान और अध्ययन है ॥ ८३२ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१७८

४३. मुनिजन क्षमा के भण्डार होते हैं ॥ ८३३ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२

४४. साधुओं के पास अध्यात्म की बात के अतिरिक्त और क्या मिल सकता है ? ॥ ८३४ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१७८

४५. मौनव्रती साधकों की महानता को, वाचाल साधक नहीं पहुँच सकता ॥ ८३५ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१९

४६. जिनके मुख से सभी को 'धर्मवृद्धि' का आशीर्वाद ही निकलता है, जिनकी वाणी से निरन्तर उपदेशामृत ही झरता है; वे कभी आदेश निकालेंगे - यह बात समझ में आने जैसी नहीं है ॥ ८३६ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-२१३

४७. मुनिधर्म इतना महान है, इतना सहज है, इतना दुर्धर है कि उसका सही स्वरूप जनता के सामने आवे तो जनता अभिभूत हुए बिना न रहे ॥ ८३७ ॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-६२

४८. सर्व वेष शृंगारसूचक हैं, साधु को शृंगार की आवश्यकता ही नहीं॥ ८३८॥ — वी. भ. महावीर, पृष्ठ-१२

४९. सच्चा साधु होना सिद्ध होने जैसा गौरव है॥ ८३९॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-७३

५०. साधुता बंधन नहीं है, उसमें सर्वबंधनों की अस्वीकृति है॥ ८४०॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-६६

५१. जो योगी अपने आत्मा में अच्छी तरह लीन हो जाता है, वह निर्मल चारित्र योगी अवश्य निर्वाण की प्राप्ति करता है॥ ८४१॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-११३

५२. जब साधु आदेश ही नहीं देते हैं तो फिर बहिष्कार के आदेश का तो प्रश्न ही कहाँ उठता है ?॥ ८४२॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१७८

५३. शुद्धात्मा की भावना से रहित मुनियों द्वारा किया गया बाह्य परिग्रह का त्याग, गिरि कन्दरादि का आवास, ध्यान, अध्ययन आदि सभी क्रियायें निरर्थक हैं॥ ८४३॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-१०८

५४. यद्यपि मोह-राग-द्वेष और तत्संबंधित समस्त सदसदाचरण अपराध ही है, तथापि साधु और श्रावकों में अपनी-अपनी भूमिकानुसार सीमित राग-द्वेष तो पाये ही जाते हैं; पर ध्यान रहे पाये जाने मात्र से वे गुण नहीं हो जाते हैं, रहते तो दोष ही हैं, उन्हें दोष नहीं मानना अपराध है॥ ८४४॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-४

५५. भावुकता में वर्तमान परिणामों के भरोसे ही महानतम पद को स्वीकार कर लेना और बाद में शिथिल हो जाना साधुता के साथ अन्याय है॥ ८४५॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-७३

५६. जिसप्रकार सत्य दर्शन की सुरक्षा आवश्यक है, भले ही उसके कारण अनेक गलत भी चलते रहें; उसीप्रकार एक सच्चे साधु के अप्रतिबंधित

विहार के लिए अनेक तथाकथित साधुओं पर भी प्रतिबंध लगाना सम्भव नहीं है ॥ ८४६ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-६८

५७. मुनिराज नहाने का नहीं, नहाने के राग का त्याग करते हैं ॥ ८४७ ॥
— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६७

५८. भावसहित द्रव्यलिंग से ही कर्मों का नाश हो जाता है ॥ ८४८ ॥।
— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-१०८

५९. भावरहित नग्नत्व से दुःखों की ही प्राप्ति होती है, संसार में ही भ्रमण होता है ॥ ८४९ ॥। — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-१०८

विजयश्री का वरण

यह विशाल मूर्ति मात्र बाहुओं के असीम बलधारी की नहीं है, अपितु असीम आत्मबलधारी की है। बाहुबली के बाहुओं का बल तो चक्रवर्ती भरत के साथ युद्ध में तब प्रदर्शित हुआ था, जब वे पोदनपुर के राजा थे। पर यह मूर्ति पोदनपुर के महाराजा की नहीं, परम तपस्वी मुनिराज बाहुबली की है, जिसमें उनके अजेय तपोबल का धीरोदात्तरूप प्रस्फुटित हुआ है। उन जैसा स्वाभिमानी और दृढ़संकल्पी व्यक्तित्व इतिहास में तो बहुत दूर, पुराणों के पृष्ठों में भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

ऐसा त्यागी, ऐसा तपस्वी, ऐसा निस्पृही, ऐसा दृढ़संकल्पी व्यक्तित्व कि जिसने पीछे मुड़कर देखना सीखा ही न हो, जो जब युद्ध में जमा तो जमा ही रहा और विजयश्री का वरण करके ही दम ली तथा जब अपने में जमा, अपने में रमा, तो ऐसा जमा, ऐसा रमा कि बाहर की ओर देखा ही नहीं; कर्म-शत्रुओं का नाशकर अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मी का वरण कर इस युग में सर्वप्रथम मुक्ति प्राप्त की। — **चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-१६७**

२०

धर्म

१. अहिंसक वीतराग परिणति ही वास्तविक धर्म है॥ ८५०॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१७१

२. आत्मा का ध्यान ही धर्म है॥ ८५१॥।

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२२७

३. ज्ञान आत्मवस्तु का स्वभाव है, अतः ज्ञान धर्म है॥ ८५२॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११

४. धर्म परम्परा नहीं, स्वपरीक्षित साधना है॥ ८५३॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१०

५. अपने आत्मा में अपनापन स्थापित करना ही एकमात्र कर्त्तव्य है, धर्म है॥ ८५४॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-५०

६. पर्याय के बिन्दु का स्वभाव के सिंधु में समा जाना ही वास्तविक धर्म है॥ ८५५॥ — बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२३

७. धर्म तो व्यक्तिगत विश्वास है, जो विवेकपूर्वक स्वीकार किया जाता है॥ ८५६॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-११

८. वस्तु के स्वरूप की सत्य समझ का नाम धर्म है॥ ८५७॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८१

९. धर्म परिभाषा नहीं, प्रयोग है और जीवन है धर्म की प्रयोगशाला॥ ८५८॥ — यु. का. स्वामी, पृष्ठ-९६

१०. स्वभाव के साक्षात्कार से, आश्रय से, जो स्वभावपर्याय प्रकट होती है; वही प्राप्तव्य धर्म है, उसे ही पाना है ॥ ८५९ ॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-९७

११. अपने में अपनापन आनन्द का जनक है, परायों में अपनापन आपदाओं का घर है; यही कारण है कि अपने में अपनापन ही साक्षात् धर्म है और परायों में अपनापन महा अधर्म है ॥ ८६० ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-४६

१२. अतीन्द्रिय ज्ञानानन्द स्वभावी ध्रुवतत्त्व पर सम्पूर्ण प्रगट ज्ञानशक्ति का केन्द्रीभूत हो जाना धर्म की दशा है ॥ ८६१ ॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-९

१३. महावीर द्वारा प्रतिपादित धर्म मात्र 'धर्म नहीं', 'आत्मधर्म' है, जो मोक्ष का मार्ग है, दु:खों से छूटने का उपाय है ॥ ८६२ ॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-९७

१४. दर्शन के द्वारा विवेचित तत्त्व का आचरण भी धर्म के अंतर्गत आ जाता है ॥ ८६३ ॥ — पं. टो. व्यक्तित्व कर्तृत्व, पृष्ठ-३

१५. सर्वज्ञता धर्म का मूल है ॥ ८६४ ॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-६६

१६. धर्म आत्मा में प्रकट होता है, तिथि में नहीं ॥ ८६५ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६

१७. धर्म का आधार तिथि नहीं, आत्मा है ॥ ८६६ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६

१८. जो क्रिया दूसरों के बिना सम्पन्न न हो सके, वह धर्म नहीं हो सकती ॥ ८६७ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२४

१९. धर्म पर के संयोग का नाम नहीं, अपितु वियोग का नाम है ॥ ८६८ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२४

२०. धर्म तो स्वतन्त्रता का नाम है, जिसमें अनन्त बंधन हों, वह धर्म कैसा ?॥ ८६९ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०

२१. धर्म अविरोध का नाम है, विरोध का नहीं॥ ८७० ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-८५

२२. दिगम्बर जैनधर्म आत्मा का धर्म है, शरीर का नहीं॥ ८७१ ॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१०

२३. जो वास्तविक धर्म हैं, वे पूर्णत: प्रकट हो जाने के बाद समाप्त नहीं होते॥ ८७२ ॥। — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७४

२४. दश धर्म नहीं, धर्म के दश लक्षण हैं॥ ८७३ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७

२५. धर्म धारण में कुल का विचार करना ठीक नहीं॥ ८७४ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-११

२६. धर्म की तुलना में क्षुद्र जातिवाद को अधिक महत्त्व देना धर्म का अवर्णवाद नहीं तो और क्या है ?॥ ८७५ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२५३

२७. धर्मानुराग धर्म का प्रकार नहीं, राग का प्रकार है; अत: वह धर्म नहीं, राग ही है; धर्म तो एक वीतरागभाव ही है॥ ८७६ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-९०

२८. अज्ञानपूर्वक की गई कोई भी प्रक्रिया धर्म नहीं कहला सकती है॥ ८७७ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-५३

२९. शुभ राग, राग होने से हिंसा में आता है, अत: उसे धर्म नहीं माना जा सकता॥ ८७८ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-२६

३०. राग जितना घटे, उतना ही अच्छा है; पर उसके सद्भाव को धर्म नहीं कहा जा सकता है॥ ८७९ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-२६

३१. धर्म तो मिथ्यात्व और कषाय के अभाव का नाम है, इनकी मंदता का नहीं ॥ ८८० ॥। — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-९

३२. मंद कषाय और शुभभावानुसार पुण्य बंध भी होता है, पर वे सच्चे धर्म नहीं कहे जा सकते ॥ ८८१ ॥

— वी. वि. पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-१७

३३. मिथ्यात्व का नाश किये बिना धर्म का आरम्भ नहीं होता ॥ ८८२ ॥

— बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-६

३४. अज्ञान (मिथ्याज्ञानपर्याय) आत्मा का विभाव है; अत: वह अधर्म है ॥ ८८३ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११

३५. राग को धर्म मानने का अर्थ कषाय को धर्म मानना है, जबकि धर्म तो अकषायभाव का नाम है ॥ ८८४ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६२

३६. धर्म करने के लिए जाति की कोई शर्त नहीं है, भगवान आत्मा के अनुभव करने की शर्त अवश्य है ॥ ८८५ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-६४

३७. यदि धर्म में पर से निवृत्ति की बात है तो साथ में स्व में प्रवृत्ति की चर्चा भी कम नहीं है ॥ ८८६ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०

३८. धर्म का सम्बन्ध समस्त चेतन जगत से है, क्योंकि सभी प्राणी सुख और शांति से रहना चाहते हैं ॥ ८८७ ॥

— तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-६०

३९. सम्पूर्ण नियमसार में एक ही ध्वनि है कि पारिणामिकभावरूप निज शुद्धात्मा की आराधना में ही समस्त धर्म समाहित हैं ॥ ८८८ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-९६

४०. व्यक्ति विशेष की महिमा से सम्प्रदाय पनपते हैं और गुणों की महिमा से धर्म की वृद्धि होती है ॥ ८८९ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१८५

४१. धर्म का सर्वोदय स्वरूप तबतक प्राप्त नहीं हो सकता, जबतक कि आग्रह समाप्त नहीं हो जाता; क्योंकि आग्रह विग्रह को जन्म देता है, प्राणी को असहिष्णु बना देता है॥ ८९०॥

— ती. भ. महावीर, पृष्ठ-१३

४२. धर्म में संकीर्णता और सीमा नहीं होती। आत्मधर्म सभी आत्माओं के लिए है और धर्म को मात्र मानव से जोड़ना भी एक प्रकार की संकीर्णता है, वह तो प्राणी मात्र का धर्म है॥ ८९१॥

— ती. भ. महावीर, पृष्ठ-१३

४३. 'डार्बिन' शारीरिक विकास की बात करता है, पर जैनधर्म आत्मिक विकास की, यह दोनों में महान अंतर है॥ ८९२॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-९०

४४. मोह-राग-द्वेष की ज्वाला शांत हो - इसके लिए धर्म, धार्मिक आस्था और धार्मिक आदर्शों से अनुप्रेरित जीवन का होना अत्यन्त आवश्यक है॥ ८९३॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-५६

४५. जब धर्म की प्रवृत्ति आरंभ होती है, तो उसका विरोध भी आरंभ हो जाता है और असली धर्मात्माओं से अधिक नकली धर्मात्मा खड़े हो जाते हैं॥ ८९४॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-५२

४६. पंचपरमेष्ठी का आराधक होने के कारण ही जैनदर्शन सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवं सार्वजनिक है॥ ८९५॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१८६

४७. भगवान की भी गुलामी से मुक्त करनेवाला अनन्त स्वतन्त्रता का उद्घोषक यह जैनदर्शन एक अद्भुत दर्शन है॥ ८९६॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-५०

२१

मोक्षमार्ग

१. सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही शील है, इनकी एकता ही मोक्षमार्ग है ॥ ८९७ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-११५

२. आध्यात्मिक विकारों से बचने के उपाय का नाम ही मोक्षमार्ग है ॥ ८९८ ॥ — पं. टो. व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ-२४०

३. स्वभावसन्मुखता के अतिरिक्त और कोई मुक्ति का मार्ग नहीं है ॥ ८९९ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-५६

४. मुक्ति का मार्ग शान्ति का मार्ग है, तनाव का नहीं, व्यग्रता का नहीं ॥ ९०० ॥ — निमित्तोपादन, पृष्ठ-३७

५. समस्त सांसारिक दु:खों को दूर करने के इलाज का नाम ही जैनधर्म है, मोक्षमार्ग है ॥ ९०१ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-३९

६. एक वीतरागभाव ही निरपराध दशा है; अत: वह मोक्ष का कारण है ॥ ९०२ ॥ — बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-२३

७. मुक्ति का मार्ग अर्थात् दु:खों से मुक्ति का उपाय, विकारों से मुक्ति का उपाय ॥ ९०३ ॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-९३

८. मोक्षमार्ग में स्थापित होने का क्रियात्मक रूप आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्माचरण (आत्मध्यान) ही है, इससे भिन्न कुछ नहीं ॥ ९०४ ॥ — बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१३६

९. मोक्ष की प्राप्ति के लिए मोक्ष की भावना से भी अधिक महत्त्व मोक्षमार्ग की भावना का है ॥ ९०५ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१३३

१०. मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्ररूप मिथ्याभावों के निवारण करने का एकमात्र उपाय अपने आत्मा को निहारना ही है ॥ ९०६ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१४३

११. आत्मा को निहारने-दर्शन करने, जानने, ध्यान करने का नाम ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है ॥ ९०७ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१४३

१२. सबसे पहले संपूर्ण शक्ति लगाकर सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, तदुपरांत निर्मल और दृढ़ चारित्र धारण करना चाहिए ॥ ९०८ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१९८

१३. बिना सम्यग्दर्शन ज्ञान के मात्र बाह्य क्रियाकाण्डरूप चारित्र धारण कर लेने से कुछ भी होनेवाला नहीं है ॥ ९०९ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-१०४

१४. पापभाव की अपेक्षा पुण्यभाव को भला कहा गया है; किन्तु मोक्षमार्ग में उसका स्थान अभावात्मक ही है ॥ ९१० ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ-१७२

१५. यद्यपि लौकिक दृष्टि से पाप की अपेक्षा पुण्य अच्छा है व इसी तथ्य को लक्ष्य में रखकर शास्त्रों में उसे व्यवहार से धर्म भी कहा गया है; तथापि मुक्ति के मार्ग में उसका स्थान अभावात्मक ही है ॥ ९११ ॥

— तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-२२

१६. निज शुद्धात्म स्वरूप के ज्ञान, श्रद्धान एवं ध्यान बिना चार गति और चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण करते हुए प्राणियों के लिए अनंत दु:खों से मुक्ति के लिए निजात्मा का ज्ञान-श्रद्धान एवं ध्यान ही एक मात्र नियम से करने योग्य कार्य है ॥ ९१२ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-८९

१७. मुक्ति के मार्ग पर चलने की क्रिया-प्रक्रिया स्वाधीन क्रिया है, स्वाधीन प्रक्रिया है॥ ९१३॥ — निमित्तोपादान, पृष्ठ-३३

१८. पर्याय में पूर्णता की प्राप्ति हो जाना साध्यदशा है और आत्मोपलब्धि होकर पूर्णता की ओर अग्रसर होना साधक दशा है॥ ९१४॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१९७

१९. आत्मशुद्धि ही धर्म है; अत: इसे इसप्रकार भी कह सकते हैं कि शुद्धि की उत्पत्ति संवर, शुद्धि की वृद्धि निर्जरा और शुद्धि की पूर्णता ही मोक्ष है। पूर्ण शुद्धि का प्रगट हो जाना ही भाव मोक्ष है॥ ९१५॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१३२

२०. मुक्तिमार्ग का मूल तो परमागम ही है॥ ९१६॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-२८

२१. मुक्तिमार्ग के पथिकों को सर्वप्रथम अपने भावों को ही पहिचानना चाहिए॥ ९१७॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-१०५

२२. अनन्त सुख रूप मोक्ष-अवस्था सर्व संयोगों के अभाव रूप ही होती है॥ ९१८॥ — बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२८

२३. संसार दु:खों से मुक्त होने के लिए मुक्ति के मार्ग का पथिक होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है॥ ९१९॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५६

२४. सर्वज्ञता प्राप्त करने का प्रारंभिक उपाय सर्वज्ञता का स्वरूप समझना है॥ ९२०॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-५९

२५. भगवान बनने का उपाय जगत से अलिप्त रहकर साक्षीभाव से ज्ञाता-दृष्टा बने रहना ही है॥ ९२१॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१४

२६. मोक्ष आत्मा की अनन्त आनन्दमय, अतीन्द्रिय दशा है॥ ९२२॥

— पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-८२

२२

आत्मा

१. निज भगवान आत्मा की आराधना ही दु:खों से मुक्ति का सच्चा उपाय है ॥ ९२३ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१९६

२. आत्मा के हित के लिए भगवान आत्मा का जानना ही पर्याप्त है ॥ ९२४ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-५९

३. द्वादशांग का प्रतिपाद्य एकमात्र भगवान आत्मा ही है ॥ ९२५ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-३०

४. भगवान आत्मा ही सम्पूर्ण श्रुतज्ञान का सार है ॥ ९२६ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-३०

५. अनंत धर्मों का अधिष्ठाता यह भगवान आत्मा वचनों से युगपत् नहीं बताया जा सकता है; पर ज्ञान द्वारा जाना जा सकता है ॥ ९२७ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२९५

६. भगवान आत्मा अपने प्रदेशों में सीमित रहकर भी सम्पूर्ण लोकालोक को जान सकता है, जानता है ॥ ९२८ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-३११

७. भगवान आत्मा ज्ञेयों को जानता तो है; पर उनमें जाता नहीं, उनमें प्रवेश नहीं करता ॥ ९२९ ॥। — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-३११

८. पर को जानने में दोष नहीं; पर पर में अटकने में, उलझने में तो हानि है ही ॥ ९३० ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-५७

९. ज्ञेयों को सहजभाव से जानना भगवान आत्मा का सहज स्वभाव है ॥ ९३१ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-३१३

१०. आत्मा समझ तो सकता है, समझा नहीं सकता; क्योंकि समझना उसका स्वभावगत धर्म है ॥ ९३२ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-३१

११. पर को जानना आत्मा का स्वभाव है। पर को तो मात्र जानना ही है अपने को जानना भी है, पहिचानना भी है, उसी में जमना भी है, रमना भी है ॥ ९३३ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-६४

१२. जिसका पर को जानना स्व के जानने में बाधक नहीं है, उसे पर के जानने से मना नहीं किया जाता, पर जिसका पर को जानना स्व के जानने में बाधक है, उसे पर से उपयोग हटाकर स्व में लगाने की प्रेरणा दी जाती है ॥ ९३४ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-५७

१३. आचार्य भगवन्तों का मात्र यही आदेश है, यही उपदेश है, यही सन्देश है कि सम्पूर्ण जगत से दृष्टि हटाकर एकमात्र अपनी आत्मा की साधना करो, आराधना करो; उसे ही जानो; उसी में जम जावो, उसमें ही समा जावो, इससे ही अतीन्द्रियानन्द की प्राप्ति होगी - परमसुखी होने का एकमात्र यही उपाय है ॥ ९३५ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-७०-७१

१४. चिन्तन-मनन के विकल्पों से भी विरक्त होकर मात्र निज को ही जानते रहना है और कुछ नहीं करना है; जानने का विकल्प भी नहीं करना है, जानना भी सहज होने देना है। कर्तृत्व का तनाव रंचमात्र भी नहीं रखना है; बस मात्र सहज जानना, जानना, जानना होने दो ॥ ९३६ ॥ — बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-८४

१५. सर्वप्रकार से स्नेह तोड़कर स्वयं में ही समा जाने में ही सार है ॥ ९३७ ॥ — बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-८९

१६. शुद्धात्मा की साधना ही साधना का सार है ॥ ९३८ ॥

— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-४९

१७. शुद्धात्मा की साधना, आराधना का मर्म है ॥ ९३९ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१६०

१८. यदि हम इस भगवान आत्मा को न समझ सके, इसका अनुभव न कर सके तो सबकुछ समझकर भी नासमझ ही हैं, सबकुछ पढ़कर भी अपढ़ ही हैं, सबकुछ अनुभव करके भी अनुभवहीन ही हैं, सबकुछ पाकर भी अभी कुछ नहीं पाया है — यही समझना ॥ ९४० ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-४५

१९. ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥ ९४१ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-९

२०. आत्मा स्वभाव से ही सुखरूप है और उसके आश्रय से सुख की उत्पत्ति होती है; अतः वह सुख का कारण भी है ॥ ९४२ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६७

२१. जिसने चेतनस्वरूप आत्मा की बात प्रसन्न चित्त से सुनी है, वह अल्पकाल में ही परमात्मपद को प्राप्त करेगा ॥ ९४३ ॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-१०

२२. यदि सही दिशा में पुरुषार्थ किया जाये तो प्रत्येक आत्मा परमात्मा बन सकता है ॥ ९४४ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-५१

२३. स्वभाव से तो सभी आत्माएँ परम पवित्र ही हैं, विकृति मात्र पर्याय में है ॥ ९४५ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६८

२४. पर्याय के पवित्र होने का एकमात्र उपाय परमपवित्र आत्मस्वभाव का आश्रय लेना है ॥ ९४६ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६८

२५. आत्मा का धर्मरूप परिणमित हो जाना ही धर्मात्मा बन जाना है। धर्मपरिणत आत्मा को ही धर्मात्मा कहा जाता है ॥ ९४७ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२४

२६. आत्मा का हित आत्मा को जानने में है; अतः पर में लगा ज्ञान का क्षयोपशम, ज्ञान की बर्बादी ही है, आबादी नहीं ॥ ९४८ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-९३

२७. श्रद्धेय, ध्येय, आराध्य तो एक आत्मा ही है ॥ ९४९ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-९६

२८. परमार्थ आत्मा के आश्रय से ही मुक्ति की प्राप्ति संभव है ॥ ९५० ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१७५

२९. पर से विभक्त और निज में एकत्व को प्राप्त आत्मा ही परमपदार्थ, परमार्थ है ॥ ९५१ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१०७

३०. भवताप का अभाव तो स्वयं के आत्मा के दर्शन से होता है ॥ ९५२ ॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१४

३१. भवतापहारी तो पर और पर्याय से भिन्न निज परमात्म तत्त्व ही है ॥ ९५३ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१४

३२. आत्मा के बिना धर्म की कल्पना भी संभव नहीं है ॥ ९५४ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-४९

३३. निज भगवान आत्मा ही परमतत्त्व है और मुख्यतः इसका सम्यग्ज्ञान ही तत्त्वज्ञान है ॥ ९५५ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-३६८

३४. आत्मा के सिद्धि के सम्पूर्ण साधन आत्मा में ही विद्यमान हैं ॥ ९५६ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-३२४

३५. अपने आत्मा का ध्यान ही एकमात्र कर्त्तव्य है ॥ ९५७ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-५३

३६. निज भगवान आत्मा की उपासना ही आत्मा की शरण में जाना है ॥ ९५८ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१९९

३७. निज भगवान आत्मा की शरण में जाना ही सुखी होने का एकमात्र उपाय है ॥ ९५९ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१९५

३८. धर्म की साधना के लिए एकमात्र निज भगवान आत्मा का जानना ही सार्थक है ॥ ९६० ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२२१

३९. आत्मा वाग्विलास और शब्दजाल से परे, मात्र अनुभूतिगम्य है ॥ ९६१ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-८

४०. आत्मधर्म तो दर्शन की वस्तु है, उसे प्रदर्शन से क्या प्रयोजन? ॥ ९६२ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३७

४१. आत्मा समझे बिना सारा क्रियाकाण्ड बेकार है, अंक के बिना शून्य के समान शून्य है ॥ ९६३ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१८३

४२. सर्वसमाधानकारक तो अपना आत्मा है, जो स्वयं ज्ञानस्वरूप है ॥ ९६४ ॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-६२

४३. अपने आत्मा के शुद्ध होने में, अमल होने में जो आनंद है, वह पर परमात्मा की अमलता में नहीं ॥ ९६५ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-२२

४४. अरहंत और सिद्ध भगवान निर्मल हैं और त्रिकाली ध्रुव भगवान अमल है ॥ ९६६ ॥ — यु. का. स्वामी, पृष्ठ-१९

४५. शुद्धात्मा का अनुभव करना ही हमारा मूल प्रयोजन है ॥ ९६७ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-५७

४६. साधकों की साधना का एकमात्र आधार शुद्धात्मा है ॥ ९६८ ॥ — बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-११३

४७. त्रिकाली ध्रुवतत्त्व पवित्र हुआ नहीं है, वह अनादि से पवित्र ही है, उसके आश्रय से ही पर्याय में पवित्रता प्रगट होती है ॥ ९६९ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१०८

४८. आत्मा तो परिपूर्ण पदार्थ है, पवित्र पदार्थ है, परिपूर्ण पवित्र पदार्थ है; तो वह अपूर्णता में, अपूर्ण पवित्रता में अहं कैसे स्थापित कर सकता है? ॥ ९७० ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१०७

४९. भगवानस्वरूप अपनी आत्मा पर रीझे पुरुषों के गले में ही मुक्तिरूपी कन्या वरमाला डालती है ॥ ९७१ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२०२

५०. वचन से विराम लेकर इस भगवान आत्मा के अस्तित्त्व में समा जाना ही श्रेयस्कर है ॥ ९७२ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२९६

५१. आत्मा की चर्चा में थकावट लगना, ऊब पैदा होना, आत्मा की अरुचि का द्योतक है ॥ ९७३ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-४९

५२. जिन्हें आत्मा से अधिक इज्जत प्यारी है, उन्हें इज्जत ही मिलती है आत्मा नहीं ॥ ९७४ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१५९

५३. यह आत्मा अनंतसुख जैसे अनंतगुणों का धनी होकर भी अपरिचय एवं असेवन के कारण रंचमात्र सुख-लाभ प्राप्त नहीं कर पा रहा है ॥ ९७५ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२१०

५४. पर के कर्तृत्व के बोझ से दबा आत्मा न तो स्वतंत्र ही हो सकता है और न उसमें स्वावलम्बन का भाव ही जागृत हो सकता है ॥ ९७६ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-३६

५५. आत्मा पर की खोज में इतना व्यस्त है और असंयमित हो गया है कि खोजनेवाला ही खो गया है ॥ ९७७ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-९४

५६. त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा ही एकमात्र आराध्य है, साध्य है ॥ ९७८ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-६४

५७. पर की उपासना से बंधनों का नाश नहीं होता, बंधनों का नाश तो निज भगवान आत्मा की आराधना से ही होता है ॥ ९७९ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१९५

५८. संसारी आत्मा के लिए सर्वसमाधानकारक यदि कोई सारभूत पदार्थ हो सकता है तो वह आत्मस्वभाव ही है, अन्य नहीं — यह एकांत सत्य है ॥ ९८० ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२०८

५९. बिगाड़-सुधार पर्याय में होता है और मैं तो बिगाड़-सुधाररूप पर्याय से पार अनादि-अनंत अखण्ड चैतन्य तत्त्व हूँ ॥ ९८१ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-२६

६०. श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का विषय तो पर से, पर्याय से, गुणभेद और प्रदेश भेद से भी भिन्न निज भगवान आत्मा ही है; वही परम उपादेय है, आराध्य है और आराधना का सार है ॥ ९८२ ॥

— पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-७६

६१. अनंत महिमावन्त भगवान आत्मा की महिमा से परिचित होने पर, उसके प्रति महिमावंत होने पर पर्याय में सहज ही पुरुषार्थ स्फुरायमान होगा, सहज ही भगवान आत्मा के दर्शन होंगे, सहज ही भगवान आत्मा का ज्ञान होगा और सहज ही भगवान आत्मा में लीनता होगी, अनन्त आनन्द की प्राप्ति होगी; होगी; अवश्य होगी, क्यों न होगी ? क्योंकि मार्ग ऐसा ही है, मार्ग यही है ॥ ९८३ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-३३

६२. तुम्हारा आत्मा ही तुम्हारा वास्तविक गुरु है ॥ ९८४ ॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२२

६३. परिणाम तो अपरिणामी भगवान आत्मा के आश्रय से सुधरते हैं ॥ ९८५ ॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-२३

६४. हे आत्मन् ! अनादिकालीन मिथ्या मान्यताओं को तोड़कर एक बार निज भगवान आत्मा की आराधना कर - इसमें ही सार है ॥ ९८६ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-३३

६५. मलिनता तो पर्याय में होती है, पर भगवान आत्मा तो पर्याय से भिन्न त्रिकाली ध्रुवतत्त्व है ॥ ९८७ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-२०

६६. प्राप्तव्य तो एकमात्र समयसार की विषय-वस्तु समयसाररूपी शुद्धात्मा ही है ॥ ९८८ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-७५

६७. सदा आत्मा में विचरण करनेवाले मुनिराज और ज्ञानीजन सदा आत्मा की ही बातें करते हैं ॥ ९८९ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५०

६८. आत्मज्ञान और आत्मध्यान आत्मा के सहज धर्म हैं ॥ ९९० ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२२५

६९. आत्मा का दर्शन, ज्ञान और ध्यान ही आत्मा में स्थापित होना है ॥ ९९१ ॥। — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१३६

७०. पर परमात्मा चाहे कितना ही महान क्यों न हो, उसमें सर्वस्व समर्पण सम्भव नहीं है, उचित भी नहीं है॥ ९९२ ॥। — गागर में सागर, पृष्ठ-२१

७१. जबतक निजभगवान आत्मा में एकत्व स्थापित नहीं होगा; तबतक उसमें सर्वस्व समर्पण भी नहीं होगा॥ ९९३ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-२२

७२. जो अपना है, वह त्रिकाल अपना है; जो पराया है, वह त्रिकाल पराया है ॥ ९९४ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-२५

७३. हमारे मानने से आत्मा मलिन नहीं हो जाता, वह तो अमल ही रहता है ॥ ९९५ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-२७

७४. सभी आत्मा स्वयं परमात्मा हैं, परमात्मा कोई अलग नहीं होते ॥ ९९६ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१३

७५. अज्ञान और राग-द्वेष आदि स्वभाव से विपरीत भाव (विकारी भाव) हैं, इसलिए आत्मा के आश्रय से उनका अभाव हो जाता है ॥ ९९७ ॥ — बालबोध पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-२७

७६. आत्मा की आराधना करनेवाले निरपराधी आत्मा को कर्मबंधन की शंका नहीं होती ॥ ९९८ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-४९

७७. आत्म साधना के बिना लौकिक जीत-हार का कोई महत्त्व नहीं है ॥ ९९९ ॥ — तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-६०

७८. आत्मा की सच्ची जीत तो मोह-राग-द्वेष के जीतने में है ॥ १००० ॥

— तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-६०

७९. चित्त कोई जमीन नहीं; जिसे बल से, वैभव से, पुण्य-प्रताप से जीत लिया जाये। चित्त को जीत लेनेवालों को छह खण्डों की नहीं, अखण्ड आत्मा की प्राप्ति होती है ॥ १००१ ॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३२

८०. सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के मोक्षमार्गरूप निर्मल भाव भी ध्येय नहीं हैं, श्रद्धेय नहीं हैं, परमज्ञेय भी नहीं हैं; आराध्य भी नहीं हैं। आराध्य तो अनंतगुणों का अखण्ड पिण्ड एक चैतन्य स्वभावी निजात्मतत्त्व ही है ॥ १००२ ॥ — बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१३४

८१. पर और पर्याय से पृथक् यह भगवान आत्मा मोह-ममता से रहित होने के कारण निर्मम है, स्वयंभू है, स्वयंसिद्ध, परमशुद्ध है ॥ १००३ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१९३

८२. 'मैं' शब्द के द्वारा जिस आत्मा का कथन किया जाता है, वह आत्मा अन्तरोन्मुखी दृष्टि का विषय है, अनुभवगम्य है, बहिर्लक्षी दौड़धूप से वह प्राप्त नहीं किया जा सकता है ॥ १००४ ॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-८

८३. सप्त तत्त्वों को यथार्थ जानकर, समस्त परपदार्थ और शुभाशुभ आस्रवादि विकारी भाव तथा संवरादिक अविकारी भावों से भी पृथक् ज्ञानानंदस्वभावी त्रिकाली ध्रुव आत्मतत्त्व ही दृष्टि का विषय है ॥ १००५ ॥ — वी. वि. पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-१४

८४. अपने को भूलकर पर में इष्ट और अनिष्ट कल्पना करके मोह-राग-द्वेषरूप भावकर्म (विभावरूप परिणमन) करना ही आत्मा की भूल है ॥ १००६ ॥ — वी. वि. पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-१९

८५. अनादिकाल से हमने देहादि परपदार्थों को अपना माना और निज भगवान आत्मा को अपना नहीं माना, पर न तो आजतक देहादि परपदार्थ अपने हुए और न भगवान आत्मा ही पराया हुआ ॥ १००७ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-२५

८६. देहादि परपदार्थ न उपादेय हैं, न हेय हैं, मात्र ज्ञेय हैं, जानने योग्य हैं; क्योंकि उनका ग्रहण-त्याग आत्मा के संभव ही नहीं है ॥ १००८ ॥

— पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-७६

८७. यदि आत्मा में एकत्व स्थापित हो जाए तो आत्मा की चर्चा में कभी भी उकताहट न हो ॥ १००९ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-४८

८८. यदि हमें भगवान आत्मा की रुचि होगी तो हमारी सम्पूर्ण शक्तियाँ भगवान आत्मा की ओर ही सक्रिय होंगी और यदि हमारी रुचि विषय-कषाय में हुई तो हमारी सम्पूर्ण शक्तियाँ विषय-कषाय की ओर ही सक्रिय होंगी ॥ १०१० ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-४९

८९. भगवान आत्मा को नहीं समझने के कारण भगवान आत्मा में कोई हानि नहीं होती; अपितु उसे नहीं समझनेवाली पर्याय ही अज्ञानरूप रहती है, मिथ्याज्ञान रूप रहती है ॥ १०११ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-३२

९०. मात्र मान्यता सुधारने को ही आत्मा का हित कहते हैं ॥ १०१२ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-२८

९१. समय-समय की पर्याय रूप से परिणमित होने की शक्तिरूप जो भाव है, वही भाव भगवान आत्मा का स्वभाव है ॥ १०१३ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२८४

९२. भगवान आत्मा का मूलस्वभाव असंस्कारित है, अकृत्रिम है ॥ १०१४ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-३१७

९३. तत्त्वविचार विकल्पात्मक है और आत्मा निर्विकल्प स्वसंवेद्य तत्त्व है ॥ १०१५ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-९

९४. निर्विकल्प तत्त्व की अनुभूति विकल्पों द्वारा नहीं की जा सकती ॥ १०१६ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-८

९५. भगवान आत्मा स्वयं अपनी योग्यता से ही बँधता-छूटता है, उसे बंधन और मुक्ति में अन्य की अपेक्षा नहीं है ॥ १०१७ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-३३८

९६. शुभाशुभ भावों में रहनेवाला व द्रव्य-गुण-पर्याय के चिन्तन में मग्न आत्मा अन्यवश है; आत्मस्वरूप में संलग्न आत्मा ही स्ववश है ॥ १०१८ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-९५

९७. आत्मा की साधना करनेवालों को दुष्टों से उलझना ठीक नहीं ॥ १०१९ ॥ — वी. वि. पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-२४

९८. संयोगों की विनाशीकता भी आत्मा के हित में ही है ॥ १०२० ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२८

९९. आत्मरुचि से आत्मस्वभाव की वृद्धि में आनंदित होने से भावव्यसन सहज छूट जाते हैं ॥ १०२१ ॥ — वी. वि. पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-३२

१००. वाणी पुद्गल की पर्याय है और सत्य आत्मा का धर्म। आत्मा का धर्म आत्मा में रहता है, शरीर और वाणी में नहीं ॥ १०२२ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७३

१०१. शुभाशुभ वचन-रचना का और रागादि भावों का निवारण करके जो आत्मा को ध्याता है, उसे नियम से (निश्चित रूप से) नियम होता है ॥ १०२३ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७६

१०२. आत्मा का हित तो आत्मा को सही रूप में जानने एवं क्रोधादि विकारी भावों के न होने में है ॥ १०२४ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२१५

१०३. सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए, भगवान आत्मा के दर्शन के लिए जैन-अजैन का कोई सवाल ही नहीं है॥ १०२५॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-६३

१०४. वे पशु-पक्षी भी जैन हैं, जो भगवान आत्मा को जानते हैं, पहचानते हैं, आत्मा की आराधना करते हैं॥ १०२६॥

—गागर में सागर, पृष्ठ-६३

१०५. जैन कुल में पैदा हो जाने मात्र से कोई जैन नहीं हो जाता॥ १०२७॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-६३

१०६. वर्तमान जिस अवस्था में आत्मा विद्यमान है, वह अवस्था ही आत्मा का स्वकाल है॥ १०२८॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२८४

१०७. दु:खों के अभाव के लिए, अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति के लिए पर में कुछ करना ही नहीं है, सब कुछ अपने में ही करना है॥ १०२९॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-३५

१०८. हमें आत्मा को नहीं सुधारना है, क्योंकि वह सुधरा हुआ ही है; उसमें कोई खराबी हुई ही नहीं है॥ १०३०॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-२८

१०९. संसार तो मात्र अध्रुव पर्याय में है, निज ध्रुवधाम आत्मा में नहीं है॥ १०३१॥ — बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४६

११०. अमर है ध्रुव आतमा वह मृत्यु को कैसे वरे॥ १०३२॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२१

१११. संयोग क्षणभंगुर सभी पर आतमा ध्रुवधाम है॥ १०३३॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२१

११२. जो खोजता पर की शरण वह आतमा बहिरातमा॥ १०३४॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३३

११३. संसार संकटमय है परन्तु आतमा सुखधाम है॥ १०३५॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४६

११४. पहिचानते निजतत्त्व जो वे ही विवेकी आतमा ॥ १०३६ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५८

११५. संयोग विरहित आतमा पावन शरण चिद्रूप है ॥ १०३७ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-९७

११६. प्रिय ध्येय निश्चय ज्ञेय केवल श्रेय निज शुद्धात्मा ॥ १०३८ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-९८

११७. जिसमें झलकते लोक सब वह आतमा ही लोक है ॥ १०३९ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१३८

११८. विपदामय परपद है निकाम, निजपद ही है आनंदधाम ॥ १०४० ॥

— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-१११

११९. है समयसार बस एक सार, है समयसार बिन सब असार ॥ १०४१ ॥

— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-१२५

१२०. संतापहरण सुखकरण सार, शुद्धात्मस्वरूपी समयसार ॥ १०४२ ॥

— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-१७५

१२१. मैं हूँ स्वभाव से समयसार, परणति हो जावे समयसार ॥ १०४३ ॥

— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-१२५

१२२. निज अंतर्वास सुवासित हो, शून्यान्तर पर की माया से ॥ १०४४ ॥

— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-१२३

१२३. चैतन्य विपिन के चितरंजन हो दूर जगत की छाया से ॥ १०४५ ॥

— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-१२३

१२४. हमें यदि आत्मा का उत्थान करना है तो सहज व सरल वृत्ति का बनना होगा ॥ १०४६ ॥

— पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-१४

१२५. फेरफार का विकल्प तोड़ो, सहज ज्ञाता-दृष्टा बन जाओ ॥ १०४७ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-२०३

१२६. मन-वचन-काय में भी वास्तविक एकरूपता आत्मा में उत्पन्न सरलता के परिणामस्वरूप ही होती है॥ १०४८॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५२

१२७. आत्मा में ज्ञान-दर्शनादि गुण और केवलज्ञानादि पर्यायें कोई उपचरित नहीं हैं; वास्तविक हैं, शुद्ध हैं॥ १०४९॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१३२

१२८. यदि निज और शुद्ध एक ही नहीं हुए तो फिर शुद्धता की उत्पत्ति संभव नहीं रहेगी॥ १०५०॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-२१

जरा विचार तो करो

जरा विचार तो करो! ये राग-द्वेषभाव हड्डी-खून-मांस आदि से भी अधिक अपवित्र हैं; क्योंकि हड्डी-खून-मांस उपस्थित रहते हैं, फिर भी पूर्ण पवित्रता, केवलज्ञान और अनन्तसुख प्रकट हो जाते हैं, आत्मा अमल हो जाता है; किन्तु यदि रंचमात्र भी राग रहे; चाहे वह मंद से मंदतर एवं मंदतम ही क्यों न हो, कितना भी शुभ क्यों न हो, तो केवलज्ञान व अनन्तसुख नहीं हो सकता।

आत्मा पहिले वीतरागी होता है फिर सर्वज्ञ। सर्वज्ञ होने के लिए वीतरागी होना जरूरी है; वीतदेह नहीं, वीतहड्डी नहीं, वीतखून भी नहीं। इससे सिद्ध है कि रागभाव हड्डी और खून से भी अधिक अपवित्र है।

खून और हड्डी चाहे पवित्र हों या अपवित्र उनका आत्मा की पवित्रता से कोई सम्बन्ध नहीं है। खून और हड्डियाँ एक-सी होने पर भी अव्रती-मिथ्यादृष्टि अपवित्र हैं सम्यग्दृष्टि व्रती-महाव्रती पवित्र हैं। **— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-६७**

२३

भेदविज्ञान

१. षट्द्रव्यमयी सम्पूर्ण लोक को स्व और पर इन दो भागों में विभक्त कर, पर से भिन्न स्व में एकत्व स्थापित करना ही सच्चा भेदविज्ञान है ॥ १०५१ ॥ — बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२२

२. यद्यपि खोज की प्रक्रिया व खोज को भी व्यवहार से भेदविज्ञान कहा जाता है; तथापि जिसे खोजना है, उसी में खो जाना ही वास्तविक भेदविज्ञान है ॥ १०५२ ॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१२९

३. पर से एकत्व, ममत्व एवं कर्तृत्व तोड़ना ही भेदविज्ञान है ॥ १०५३ ॥ — सार समयसार, पृष्ठ-९

४. स्व और पर के बीच का भेद जानना वास्तविक भेदविज्ञान है - मात्र दो पदार्थों के बीच का अंतर जानना नहीं है ॥ १०५४ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-९४

५. भेदविज्ञान निज और पर के बीच किया जाता है, दो परपदार्थों के बीच नहीं ॥ १०५५ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-९५

६. निज और पर के बीच की सीमा रेखा जानना भेदविज्ञान नहीं; बल्कि पर से भिन्न निज को जानना ही भेदविज्ञान का रहस्य है ॥ १०५६ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-९५

७. जबतक यह आत्मा स्वयं को पर का कर्ता-भोक्ता मानता रहता है, तबतक वास्तविक भेदविज्ञान उदित नहीं होता ॥ १०५७ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-३६

८. बाहरी क्रियाकाण्ड आत्मा (जीव), अनात्मा (अजीव) के ज्ञान और श्रद्धान से रहित होने के कारण सब असफल है॥ १०५८॥

— वी. वि. पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-१७

९. पर से भिन्नता का ज्ञान ही भेदविज्ञान है और पर से भिन्न निज चेतन भगवान आत्मा का जानना, मानना, अनुभव करना ही आत्मानुभूति है, आत्मसाधना, आत्माराधना है॥ १०५९॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६२

१०. जीवादिक को जान लेना ही जरूरी नहीं, बल्कि उन्हें इसप्रकार जानना जरूरी है कि जिससे भेदविज्ञान और वीतरागता की उत्पत्ति हो॥ १०६०॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१०

११. अपने में ही समा जाना भेदविज्ञान का फल है॥ १०६१॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-९५

१२. निज परिणति का सत्यार्थभान, शिवपद दाता जो तत्त्वज्ञान॥ १०६२॥

— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-११०

१३. मेरा स्वभाव है ज्ञानमयी, यह भेदज्ञान पा हरषाया॥ १०६३॥

— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-१०९

आत्मानुभूति ही आत्मधर्म है

धर्म का आरम्भ भी आत्मानुभूति से ही होता है और पूर्णता भी इसी की पूर्णता में। इससे परे धर्म की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आत्मानुभूति ही आत्मधर्म है। साधक के लिए एक मात्र यही इष्ट है। इसे प्राप्त करना ही साधक का मूल प्रयोजन है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-२२४

आत्मानुभूति

१. आत्मानुभूति ही समस्त जिनशासन का सार है ॥ १०६४ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-७०

२. जिनमत का वास्तविक प्रवर्तन तो आत्मानुभव ही है ॥ १०६५ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-७०

३. आत्मानुभूति ही आत्मधर्म है ॥ १०६६ ॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१३५

४. आत्मानुभूति ही सुखानुभूति है ॥ १०६७ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-५

५. आत्मतन्मयता ही आत्मानुभूति का उपाय है ॥ १०६८ ॥

— निमित्तोपादान, पृष्ठ-४०

६. अन्तरोन्मुखी वृत्ति द्वारा आत्मसाक्षात्कार की स्थिति का नाम ही आत्मानुभूति है ॥ १०६९ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-९

७. आत्मानुभूति प्राप्त करने की प्रक्रिया सद्भावात्मक है, अभावात्मक नहीं ॥ १०७० ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-१४

८. निर्विकल्प आत्मानुभूति निज भगवान आत्मा के आश्रय से ही होती है ॥ १०७१ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-७५

९. स्वानुभूति प्राप्त करने की प्रक्रिया निरन्तर तत्त्वमंथन की प्रक्रिया है ॥ १०७२ ॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१३५

१०. आत्मानुभूति को प्राप्त करने का प्रारम्भिक उपाय तत्त्वविचार है ॥ १०७३ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-५

११. स्वानुभूति के लिए स्वस्थ मस्तिष्क व्यक्ति को जितना ज्ञान प्राप्त है, वह पर्याप्त है ॥ १०७४ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-११

१२. मनुष्य भव की सार्थकता और सफलता एकमात्र आत्मानुभूति की प्राप्ति में ही है ॥ १०७५ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१२४

१३. आत्मा के अनुभव बिना कोरे पढ़ने से, सुनने से कुछ नहीं होता ॥ १०७६ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१५१

१४. आत्मानुभूति के बिना धर्म का आरम्भ नहीं होता ॥ १०७७ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१३९

१५. धर्म का आरम्भ भी आत्मानुभूति से होता है और पूर्णता भी उसी की पूर्णता में ॥ १०७८ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-१०

१६. आत्मानुभूति तो करने की चीज है, व्यक्त करने की नहीं ॥ १०७९ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२००

१७. आत्मानुभव सिखाया नहीं जाता, किया जाता है ॥ १०८० ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२१०

१८. मिथ्यात्व के अभाव और सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए प्रयोजनभूत अनात्म वस्तुओं का तो मात्र सत्यज्ञान ही अपेक्षित है, किन्तु आत्मवस्तु के ज्ञान के साथ-साथ अनुभूति भी आवश्यक है ॥ १०८१ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७५

१९. आत्मस्वभाव का साक्षात्कार करना ही एक मात्र कर्त्तव्य है ॥ १०८२ ॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-९७

२०. वर्तमान प्रगट ज्ञान को परलक्ष्य से हटाकर स्वद्रव्य (त्रिकाली ध्रुव आत्मतत्त्व) में लगा देना ही आत्मसाक्षात्कार की स्थिति है ॥ १०८३ ॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-९

२१. आत्मवस्तु की सच्ची समझ आत्मानुभव के बिना सम्भव नहीं है ॥ १०८४ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७५

२२. अनुभूति के बिना सम्यक् आत्मज्ञान सम्भव नहीं है॥ १०८५॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७५

२३. आत्मानुभूति प्राप्त करने के लिए बाह्य साधनों की रंचमात्र भी अपेक्षा नहीं है॥ १०८६॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-१२

२४. आत्मानुभूति में पर के सहयोग का विकल्प बाधक ही है, साधक नहीं॥ १०८७॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-१२

२५. आत्मानुभूति आत्मतत्त्व संबंधी विकल्प का भी अभाव करके प्रगट होनेवाली स्थिति है॥ १०८८॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-८

२६. अनुभूति स्वरूप भगवान आत्मा को अनुभूति प्राप्त करने की भी आकुलता क्यों, व्याकुलता क्यों ?॥ १०८९॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-२०२

२७. आत्मखोजी को जब आत्मोपलब्धि होती है, उस काल वे उसके निमित्त जो देव-शास्त्र गुरु हैं, उनको भी भूल जाते हैं॥ १०९०॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१३२

२८. आत्मा को जानने का अर्थ मात्र शब्दों से जान लेना मात्र नहीं है, अपितु आत्मानुभूति सम्पन्न होने से है॥ १०९१॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-८३

२९. आत्मानुभूति की दशा शुद्धभाव है और आत्मानुभूति प्राप्त करने का विकल्प शुभभाव॥ १०९२॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-१४

३०. आत्मानुभूति प्राप्त पुरुषों की अन्तर परिणति अनुभूति के काल में अत्यन्त शांत एवं ज्ञानानन्दमय होती है॥ १०९३॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-१६

३१. अनुभव में अशुद्धता और भेद नजर नहीं आता॥ १०९४॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१२९

३२. आत्मानुभूति ज्ञायक, ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञप्तिरूप होकर भी इनकेभेद से रहित अभेद और अखण्ड है॥ १०९५॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-९

३३. जो साधक अपनी साधना में पर के सहयोग की आकांक्षा से व्यग्र रहता है, उसके पल्ले मात्र व्यग्रता ही पड़ती है, उसे साध्य की सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती॥ १०९६॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-१२

३४. प्रगट ज्ञान का आत्मस्वभाव के प्रति सर्वस्व समर्पण एक अनिवार्य तत्त्व (शर्त)है, जिसके बिना आत्मानुभूति प्राप्त नहीं की जा सकती॥ १०९७॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-११

३५. देहादि परपदार्थों से भिन्न निज भगवान आत्मा में अपनापन स्थापित होना भी एक अभूतपूर्व अद्भुत क्रान्ति है, धर्म का आरम्भ है॥ १०९८॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-५१

३६. प्रत्यक्षानुभूति नयपक्षातीत - विकल्पातीत होती है॥ १०९९॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-६६

३७. उपादेय तो प्रत्यक्षानुभूति, निर्विकल्प अनुभूति ही है, नय विकल्प नहीं॥ ११००॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-६७

३८. निज को ही शुद्ध मानना होगा, तभी आत्मानुभूति होगी, सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होगी॥ ११०१॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-२१

३९. शरीरादि परपदार्थों एवं रागादि विकारों से भिन्न ज्ञानानन्द स्वभावी निज शुद्धात्म तत्त्व की अनुभूति, प्रतीति ही वास्तविक सम्यक्त्व है, इसके बिना जो कुछ भी श्रद्धान है, वह सब मिथ्यात्व है॥ ११०२॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२१०

जो व्यक्ति जिस समय इस महामंत्र का भावपूर्वक, समझपूर्वक स्मरण करता है, उसके हृदय में उस समय कोई पापभाव उत्पन्न ही नहीं होता, यही सब पापों का नाश होना है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-१९३

श्रद्धा

१. ज्ञान से भी अधिक महत्त्व श्रद्धान का है, विश्वास का है, प्रतीति का है॥ ११०३॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-७८

२. आत्मानुभूति (निश्चय) पूर्वक, शास्त्राधार पर की गई तर्क सम्मत श्रद्धा ही सच्ची व्यवहार श्रद्धा है॥ ११०४॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-१५

३. श्रद्धा विवेकपूर्वक हो तभी सार्थक एवं शुभ फलदायी होती है॥ ११०५॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-८१

४. श्रद्धा मात्र स्वभाव में ही अपनत्व स्थापित करती है॥ ११०६॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-२४

५. श्रद्धा ही आचरण को दिशा प्रदान करती है॥ ११०७॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-११२

६. श्रद्धा तो हृदय की चीज है, वह दूसरों को दिखाने के लिए नहीं होती॥ ११०८॥ — निमित्तोपादान, पृष्ठ-४१

७. श्रद्धास्पद के दोष श्रद्धालु को दिखते ही नहीं, अंध श्रद्धा का सबसे बड़ा दोष तो यही है॥ ११०९॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-८१

८. सब पापों की जड़ मिथ्यात्व और कषायें ही हैं॥ १११०॥

— बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-९

९. मिथ्यात्व तो ऐसा भयंकर पाप है कि जिसके छूटे बिना संसार भ्रमण छूटता ही नहीं॥ १११९॥ — बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-७

१०. मिथ्यात्व और कषायें दु:ख का कारण बुरे कार्य होने से पाप हैं॥ १११२॥ — बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-१०

११. मिथ्यात्व के कारण परपदार्थ या तो इष्ट (अनुकूल) या अनिष्ट (प्रतिकूल) मालूम पड़ते हैं, मुख्यतया इसी कारण कषाय उत्पन्न होती है॥ १११३॥ — बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-१३

१२. यह (मिथ्या) मान्यता ही मिथ्यात्व की संजीवनी है॥ १११४॥
— गागर में सागर, पृष्ठ-३३

१३. अपनी आत्मा को सही समझ लेना ही मिथ्यात्व छोड़ना है॥ १११५॥
— बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-७

१४. जबतक अपनापन न हो, तबतक अपने होने का कोई लाभ नहीं मिलता। यहाँ अपने से भी महत्त्वपूर्ण अपनापन है॥ १११६॥
— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-४९

१५. असीम निशंकता, भोगों के प्रति अनासक्ति, समस्त पदार्थों की विकृत-अविकृत दशाओं में समताभाव, वस्तुस्वरूप की पैनी पकड़, पर के दोषों के प्रति उपेक्षाभाव, आत्मशुद्धि की वृद्धिंगत दशा, विश्वासों की दृढ़ता, परिणामों की स्थिरता; गुणों और गुणियों में अनुराग, आत्मलीनता द्वारा अपनी और उपदेशादि द्वारा वस्तुतत्त्व की प्रभावना - ये विशेषतायें सम्यग्दर्शन सम्पन्न आत्मा में सहज ही प्रगट हो जाती हैं॥ १११७॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२१०

सफलता उत्साह को बढ़ाती है और असफलता उत्साह को भंग करती है। सफलता के संगम से अन्तर की सतत् प्रेरणा जब उल्लसित हो उठती है तो सही दिशा में किए गए सत्प्रयासों में एक अद्‌भुत गति आ जाती है। **— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-१७४**

२६

ज्ञान

१. ज्ञान का कार्य तो जो जैसा है, उसे मात्र वैसा ही जान लेना है॥ १११८॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-२२

२. ज्ञान तो 'पर' को मात्र जानता है, परिणमाता नहीं है॥ १११९॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-११८

३. ज्ञान का कोई भार नहीं होता॥ ११२०॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१८१

४. ज्ञान सर्वसमाधान कारक है, उसका सर्वत्र ही अबाध प्रवेश है॥ ११२१॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-६३

५. शरीर से भिन्न आत्मा की प्रतीति एवं अनुभूति ही जीव और अजीव तत्त्व संबंधी सच्चा ज्ञान है॥ ११२२॥

— पं. टो. व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ-१६५

६. ढाई अक्षर के आत्मा को जान लेना ही ज्ञान है, पाण्डित्य है; शेष सब प्रपंच है, उसमें कुछ सार नहीं है॥ ११२३॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-४४

७. ज्ञान का ज्ञान करने के लिए ज्ञान को ज्ञान में लगाना होगा॥ ११२४॥

— डॉ. भारिल्ल की डायरी से

८. ज्ञानस्वभावी आत्मा ज्ञान से ही प्राप्त होगा, धन से नहीं॥ ११२५॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१८२

९. ज्ञान अनिश्चयात्मक न होकर निश्चयात्मक होता है॥ ११२६॥
— ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-११८

१०. हार और जीत - यह भाषा ही कषाय की है, ज्ञान की नहीं। ज्ञान की भाषा तो सत्य-असत्य के निर्णयरूप होती है, हार और जीत के निर्णयरूप नहीं॥ ११२७॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१६

११. ज्ञान भी पुण्य-पापरूप अनेक कर्मों को, उनके फल को, उनके बंध को, निर्जरा व मोक्ष को जानता ही है, करता नहीं॥ ११२८॥
— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-४९

१२. सम्यग्ज्ञान का मूल ज्ञेय, पर से विभक्त और निज से अविभक्त आत्मा ही है॥ ११२९॥ — ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१४१

१३. सम्यग्ज्ञान में परद्रव्यों का जानना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं, जितना कि निज आत्मतत्त्व का॥ ११३०॥ — ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१३८

१४. जगत के क्रमनियत परिणमन को ज्ञाता-दृष्टा भाव से स्वीकार कर लेना ही सम्यग्ज्ञान का कार्य है, उसमें हर्ष-विषाद उचित नहीं, आवश्यक भी नहीं॥ ११३१॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१४

१५. सम्यग्ज्ञान एक प्रकार से सच्चा तत्त्वज्ञान या आत्मज्ञान ही है॥ ११३२॥
— ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१३८

१६. सुख और शान्ति प्राप्त करने का एकमात्र उपाय तो वस्तु स्वभाव का सम्यक्ज्ञान-श्रद्धान ही है॥ ११३३॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२८

१७. बिना आत्मज्ञान के करोड़ों प्रयत्न करने पर भी आत्मोपलब्धि होना सम्भव नहीं है॥ ११३४॥ — पं. टो. व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ-२२६

१८. दु:ख का मूल कारण स्वयं को नहीं जानना, नहीं पहचानना ही है॥ ११३५॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-७६

१९. इन्द्रियज्ञान आत्मज्ञान में साधक नहीं, बल्कि बाधक ही है॥ ११३६॥
— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-९५

२०. पर के जानने में जो अटकता नहीं है, भटकता नहीं है, उसे पर को जानने में कोई हानि नहीं है ॥ ११३७ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-५७

२१. पर को जानने का नहीं, अपितु पर को जानने की रुचि, उत्सुकता, विकल्प और प्रयत्न का ही निषेध है ॥ ११३८ ॥

— गागर में सागर, पृष्ठ-६२

२२. इसप्रकार पर-पदार्थों का ज्ञान में सहज रूप से ज्ञात हो जाना सामान्य बात है और उन्हें बुद्धिपूर्वक जानने का प्रयत्न करना, उन्हें ही जानते रहना, उन्हें जानने में आनन्द का अनुभव करना, उन्हें जानने के लिए आकुल-व्याकुल होना अपराध है, दु:ख का कारण है, संसार है ॥ ११३९ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-६२

२३. पर को जानने वाला ज्ञान एक दृष्टि से ज्ञान ही नहीं है, वह तो अज्ञान है, ज्ञान की बर्बादी है ॥ ११४० ॥ —धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-९६

२४. ज्ञान का स्वभाव है तर्क-वितर्क। जबतक कोई भी सिद्धान्त तर्क की तुला पर खरा नहीं उतरता ज्ञान उसे स्वीकार नहीं कर सकता ॥ ११४१ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-८७

२५. जगत में ऐसा कौन-सा प्रमेय है, जो सतर्क प्रज्ञा को अगम्य हो? ॥ ११४२ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२६

२६. स्वतंत्रता ज्ञान से नहीं, अपने अज्ञान से खण्डित होती है ॥ ११४३ ॥

— ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-११८

२७. ज्ञान की विवक्षित पर्याय में जानने की क्षमता के साथ-साथ यह क्षमता भी निश्चित ही होती है कि वह किस ज्ञेय को जानेगी ॥ ११४४ ॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-३७

२८. राग-द्वेष कम करने का सरलतम उपाय अपने सुख-दु:ख के कारण अपने में ही खोजना है, मानना है, जानना है ॥ ११४५ ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-११७

२९. विरोध वस्तु में नहीं, अज्ञान में है ॥ ११४६ ॥

— ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१४८

३०. शायद, संशय और सम्भावना में एक अनिश्चय है, अनिश्चय अज्ञान का सूचक है ॥ ११४७ ॥ — ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१५३

३१. कुल और परम्परा से जो तत्त्वज्ञान को स्वीकार लेते हैं, वह सम्यक् नहीं है ॥ ११४८ ॥ — पं. टो. व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृष्ठ-३१५

३२. सम्यग्ज्ञान का आधार स्याद्वाद की भाषा में कथित अनेकान्तात्मक वस्तुस्वरूप है ॥ ११४९ ॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१४१

३३. आत्मज्ञान की अभिलाषा रखने वाले अष्टमूलगुण धारण करते हैं ॥ ११५० ॥ — बालबोध पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-१५

३४. आत्मरमणता रूप शुद्धोपयोग का फल अतीन्द्रिय ज्ञान (अनन्तज्ञान-केवलज्ञान-सर्वज्ञता) एवं अतीन्द्रियानंद (अनंतसुख) की प्राप्ति है ॥ ११५१ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-५७

अनन्त शक्ति का भण्डार

यह प्राणी अन्तर की ओर तो झाँकता नहीं, पर की उधेड़-बुन में ही लगा रहता है। यह अखण्ड अनन्त शक्ति का भंडार ऐसा जो अपना आत्म-स्वरूप, उसकी ओर तो देखता नहीं और इसकी दृष्टि दोषों को देखने में उलझी रहती है। दोष भी यह अपने नहीं देखता, दूसरों के देखता है; इसलिए अनन्त दुःखी और अशान्त बना रहता है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-३१

२७

दशलक्षण महापर्व

१. पर्व अर्थात् मंगल काल, पवित्र अवसर॥ ११५२॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६

२. अपने आत्मस्वभाव की प्रतीतिपूर्वक वीतरागी दशा का प्रगट होना ही यथार्थ पर्व है; क्योंकि वही आत्मा का मंगलकारी है और पवित्र अवसर है॥ ११५३॥ — वी.वि. पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-३८

३. वीतरागी पर्व संयम और साधना का पर्व है॥ ११५४॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६

४. अष्टाह्निका और दशलक्षण जैसे जैन पर्वों का संबंध खाने और खेलने से न होकर खाना और खेलना त्यागने से है— ये भोग के नहीं, त्याग के पर्व हैं; इसीलिए महापर्व हैं॥ ११५५॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१

५. उत्तमक्षमादि दशलक्षण धर्म से सम्बंधित होने से इसे दशलक्षण महापर्व कहते हैं॥ ११५६॥ — वी.वि. पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-३८

६. वैसे तो प्रत्येक धार्मिक पर्व का प्रयोजन आत्मा में वीतरागभाव की वृद्धि करने का ही होता है, किन्तु इस पर्व का संबंध विशेष रूप से आत्मगुणों की आराधना से है॥ ११५७॥

— वी. वि. पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-३८

७. उत्तमक्षमादि धर्मों की सार्वभौमिक त्रैकालिक उपयोगिता एवं सुख-कारकता के कारण ही दशलक्षण महापर्व शाश्वत पर्वों में गिना जाता है और इसी कारण यह महापर्व है॥ ११५८॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४

८. आत्मस्वरूप की प्रतीतिपूर्वक चारित्र (धर्म) की दश प्रकार से आराधना करना ही दशलक्षण धर्म है। आत्मा में दश प्रकार के सद्भावों (गुणों) के विकास से संबंधित होने से ही इसे दशलक्षण महापर्व कहा जाता है॥ ११५९॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६

९. वे ही पर्व सार्वभौम और सार्वकालिक हो सकते हैं, जो किसी व्यक्ति विशेष या घटना विशेष से संबंधित न होकर सभी जीवों से, उनके भावों से, समान रूप से संबंधित हों। दशलक्षण महापर्व एक ऐसा ही महान पर्व है, जो सब जीवों के भावों से समानरूप से संबंधित है॥ ११६०॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२

१०. दशलक्षण महापर्व एक ऐसा ही त्रैकालिक शाश्वत पर्व है, जो आत्मा के क्रोधादि विकारों के अभाव के फलस्वरूप प्रकट होने वाले उत्तम क्षमादि भावों से संबंध रखता है॥ ११६१॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२

११. घटनाओं और व्यक्ति विशेष से संबंधित पर्व निश्चित रूप से अनादि नहीं हो सकते; क्योंकि वे संबंधित घटना या व्यक्ति से पूर्व संभव नहीं हैं॥ ११६२॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२

१२. आत्माराधक व्यक्ति के हृदय में उत्तमक्षमादि गुणों का सहज विकास होता है, अत: यह स्पष्ट है कि दशलक्षण पर्व का संबंध आत्माराधना से है, प्रकारान्तर से उत्तमक्षमादि दश गुणों की आराधना से है॥ ११६३॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६

१३. विकारी भावों का परित्याग एवं उदात्त भावों का ग्रहण ही दशलक्षण धर्म का आधार है, जो सभी को समान रूप से हितकारी है ॥ ११६४ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३

१४. सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक क्रोधादि का नहीं होना ही उत्तम क्षमादि धर्म है ॥ ११६५ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८

१५. तीन लोक में सर्वत्र ही क्रोधादि दुःख के और क्षमादि सुख के कारण हैं ॥ ११६६ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५

इसे बहुत कम लोग जानते हैं

यद्यपि इन्द्रियसुख और इन्द्रियज्ञान में इन्द्रियाँ निमित्त होती हैं, तथापि इन्द्रियसुख सुख ही नहीं है। वह तो सुखाभास है, सुख-सा प्रतीत होता है; पर वस्तुतः सुख नहीं, दुःख ही है, पापबंध का कारण होने से आगामी दुःख का भी कारण है। इसीप्रकार इन्द्रियाँ रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द की ग्राहक होने से मात्र जड़ को जानने में ही निमित्त हैं, आत्मा को जानने में वे साक्षात् निमित्त भी नहीं हैं।

विषयों में उलझाने में निमित्त होने से इन्द्रियाँ संयम में बाधक ही हैं, साधक नहीं।

पंचेन्द्रियों के जीतने के प्रसंग में भी सामान्यजनों का ध्यान इन्द्रियों के भोगपक्ष की ओर ही जाता है, ज्ञानपक्ष की ओर कोई ध्यान ही नहीं देता। इन्द्रियसुख को त्यागने की बात तो सभी करते हैं; पर इन्द्रियज्ञान भी हेय है, आत्महित के लिए अर्थात् अतीन्द्रियसुख और अतीन्द्रियज्ञान की प्राप्ति के लिए इन्द्रियज्ञान की भी उपेक्षा आवश्यक है — इसे बहुत कम लोग जानते हैं।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-७५

उत्तमक्षमा

१. क्षमा आत्मा का स्वभाव है। क्षमास्वभावी आत्मा के आश्रय से आत्मा में जो क्रोध के अभावरूप शान्तिस्वरूप पर्याय प्रकट होती है, उसे भी क्षमा कहते हैं॥ ११६७॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०

२. उत्तमक्षमा तो एक अकषायभावरूप है, वीतरागभावस्वरूप है, शुद्धभावरूप है॥ ११६८॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२३

३. क्षमा के साथ लगा उत्तम शब्द सम्यग्दर्शन की सत्ता का सूचक है। सम्यग्दर्शन के साथ होनेवाली क्षमा ही उत्तमक्षमा है॥ ११६९॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६

४. उत्तमक्षमा आदि का नाप बाहर से नहीं किया जा सकता॥ ११७०॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२१

५. कषायों की मंदता और तीव्रता पर उत्तमक्षमा आधारित नहीं है, उसका आधार तो कषायों का क्रमशः अभाव है॥ ११७१॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२१

६. कोई ज्ञानी चारित्रमोह के दोष से बाहर में क्रोध करता भी दिखाई दे, फिर भी उत्तमक्षमा का धारक हो सकता है॥ ११७२॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२१

७. उत्तमक्षमा का निर्णय बाह्यप्रवृत्ति के आधार पर नहीं किया जा सकता॥ ११७३॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२२

८. हम शास्त्रानुसार अच्छा बनने के लिए नहीं, वरन् अच्छा दिखने के लिए क्रोध के ही किसी रूप को क्षमा का नाम देकर क्षमाधारी बनना चाहते हैं ॥ ११७४ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१८३

९. निमित्तों की प्रतिकूलता में भी जो शान्त रह सके, वही उत्तमक्षमा का धारी है ॥ ११७५ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१८

१०. क्रोध-मानादि को हटाना क्षमा है, दबाना नहीं ॥ ११७६ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१७७

११. आत्मा का अनुभव ही उत्तमक्षमा की प्राप्ति का वास्तविक उपाय है ॥ ११७७ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२२

१२. क्षमास्वभावी आत्मा का अनुभव करने पर, आश्रय करने पर ही पर्याय में उत्तमक्षमा प्रकट होती है ॥ ११७८ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२२

१३. आत्मानुभवी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव को उत्तमक्षमा प्रकट होती है, और आत्मानुभव की वृद्धि वालों को ही उत्तमक्षमा बढ़ती है तथा आत्मा में ही अनन्तकाल को समा जाने वालों में उत्तमक्षमा पूर्णता को प्राप्त होती है ॥ ११७९ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२३

अपना माथा भी काट सकती है

विनय का यदि सही स्थान पर प्रयोग हुआ तो तप होने से कर्म को काटेगी, किन्तु गलत स्थान पर प्रयुक्त विनय मिथ्यात्व होने से धर्म को ही काट देती है। यह एक ऐसी तलवार है जो चलाई तो अपने माथे पर जाती है और काटती है शत्रुओं के माथों को, पर सही प्रयोग हुआ तो। यदि गलत प्रयोग हुआ तो अपना माथा भी काट सकती है। अतः इसका प्रयोग अत्यन्त सावधानी से किया जाना चाहिए।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-७९

२९

क्षमावाणी

१. क्षमावाणी एक धार्मिक परिणति है, आध्यात्मिक क्रिया है ॥ ११८० ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१८०

२. वीतराग परिणति का नाम ही सच्चे अर्थों में क्षमावाणी है ॥ ११८१ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१८१

३. निश्चय क्षमावाणी तो स्वयं के प्रति सजग हो जाना ही है ॥ ११८२ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१८५

४. क्षमावाणी को मात्र क्रोध के त्याग तक सीमित करना उचित नहीं ॥ ११८३ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१७७

५. जबतक भूमिकानुसार दशों धर्म हमारी परिणति में नहीं प्रकटेंगे, तबतक क्षमावाणी का वास्तविक लाभ हमें प्राप्त नहीं होगा ॥ ११८४ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१७८

६. क्षमावाणी को स्थूलबुद्धि वाले मात्र क्षमावाणी ही समझ लेते हैं, क्षमादिवाणी नहीं समझ पाते ॥ ११८५ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१७९

७. क्रोध कषाय क्षमा करने में बाधक हो सकती है, क्षमा माँगने में नहीं ॥ ११८६ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१७७

८. क्षमा माँगने में बाधक क्रोधकषाय नहीं, अपितु मानकषाय है ॥ ११८७ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१७७

९. क्षमायाचना मानकषाय के अभाव में होने वाली प्रवृत्ति है ॥ ११८८ ॥
— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१७८

१०. क्षमाधारक को शान्त और निरभिमानी होने के साथ सरल भी होना चाहिए ॥ ११८९ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१७७

११. क्षमायाचना या क्षमा करना एक इतना महान कार्य है, इतना पवित्र धर्म है कि जो जीव का जीवन बदल सकता है ॥ ११९० ॥
— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१७३

१२. क्षमायाचना और क्षमादान—ये दोनों ही वृत्तियाँ हृदय को हल्का करने वाली उदात्त वृत्तियाँ हैं, वैरभाव को मिटाकर परमशान्ति प्रदान करने वाली हैं ॥ ११९१ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१८४

१३. स्वयं को क्षमा करने और स्वयं से क्षमा माँगने के लिए वाणी की औपचारिकता की आवश्यकता नहीं है ॥ ११९२ ॥
— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१८५

१४. क्षमायाचना या क्षमाकरना दो प्राणियों की सम्मिलित (Combiend) क्रिया नहीं है ॥ ११९३ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१८०

१५. अपराधी द्वारा क्षमायाचना नहीं किये जाने पर भी उसे क्षमा किया जा सकता है ॥ ११९४ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१८१

१६. क्षमायाचना किए बिना ही क्षमा कर दिया तो हमने अपने क्रोधभाव का त्याग कर उसका नहीं, अपना ही भला किया ॥ ११९५ ॥
— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१८१

१७. हमारे द्वारा क्षमायाचना करने पर भी यदि कोई क्षमा नहीं करता है तो क्रोध का त्याग नहीं करने से उसका ही बुरा होगा ॥ ११९६ ॥
— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१८१

१८. क्रोधादि की उत्पत्ति का कारण अपने अंतरंग में विद्यमान अविवेक है, न कि बाह्य पदार्थ ॥ ११९७ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२१६

१९. जबतक हमारा ध्यान पर की ओर रहेगा और हम पर को ही अपने भले-बुरे का कर्त्ता मानते रहेंगे; तबतक क्रोधादि विकार उत्पन्न होते रहेंगे ॥ ११९८ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२१५

२०. क्षमा कायरता नहीं, क्षमाधारण करना कायरों का काम भी नहीं ॥ ११९९ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१८३

२१. धर्मवीर ही क्षमाधारक हो सकता है, युद्धवीर नहीं ॥ १२०० ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१८३

२२. आज तो क्षमा मात्र हमारी वाणी में रह गई, अन्तर से उसका सम्बन्ध ही नहीं रहा है ॥ १२०१ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१७६

त्याग इसप्रकार किया जाता है

दान की यह आवश्यक शर्त है कि जो देना है, जितना देना है, वह कम से कम उतना देने वाले के पास अवश्य होना चाहिए; अन्यथा देगा क्या और कहाँ से देगा? पर त्याग में ऐसा नहीं है। जो वस्तु हमारे पास नहीं है, उसको भी त्यागा जा सकता है। उसे मैं प्राप्त करने का यत्न नहीं करूँगा, सहज में प्राप्त हो जाने पर भी नहीं लूँगा — इसप्रकार त्याग किया जाता है। वस्तुतः यह उस वस्तु का त्याग नहीं, उसके प्रति होने वाले या सम्भावित राग का त्याग है।

लखपति अधिक से अधिक लाख का ही दान दे सकता है, पर त्याग तो तीन लोक की सम्पत्ति का भी हो सकता है। परिग्रह-परिमाणव्रत में निश्चित सीमा तक परिग्रह रखकर और समस्त परिग्रह का त्याग किया जाता है। वह सीमा - जितना अपने पास है, उससे भी बड़ी हो सकती है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-८८

३०

क्रोध

१. अरोचक भाव का नाम ही क्रोध है॥ १२०२॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-९९

२. अनन्त संसार का अनुबंध करनेवाला अनंतानुबंधी क्रोध आत्मा के प्रति अरुचि का नाम है॥ १२०३॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२२

३. ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा की अरुचि ही अनंतानुबंधी क्रोध है॥ १२०४॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२२

४. क्रोध के समान आत्मा का कोई दूसरा शत्रु नहीं है॥ १२०५॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३

५. क्रोध आत्मा की एक ऐसी विकृति है, ऐसी कमजोरी है, जिसके कारण उसका विवेक समाप्त हो जाता है॥ १२०६॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३

६. अपने अच्छे-बुरे और सुख-दुःख का कर्ता दूसरों को मानना ही क्रोधादि की उत्पत्ति का मूल कारण है॥ १२०७॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६

७. सबसे बड़ा विकार, सबसे बड़ी कमजोरी और सबसे बड़ी कषाय है क्रोध॥ १२०८॥। — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३

८. क्रोध करने वालों को जिस पर क्रोध आता है; वह उसकी ओर ही देखता है, अपनी ओर नहीं देखता॥ १२०९॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१४

९. जिस पर क्रोध किया जा रहा है, उसका लाभ-हानि तो उसके पुण्य-पाप के आधीन है॥ १२१०॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२१३

१०. क्रोधादि जब भी होते हैं, परलक्ष्य से होते हैं॥ १२११॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२१४

११. क्रोधी 'पर' में ही भूल देखता है, स्वयं में देखने लगे तो क्रोध आएगा कैसे? यही कारण है कि आचार्यों ने क्रोधी को क्रोधान्ध कहा है॥ १२१२॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१४

१२. वैर आग है और आग जहाँ रखी जाएगी पहिले उसे जलाएगी, बाद में दूसरे को जलाए चाहे न जलाए॥ १२१३॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२०

१३. सारी दुनिया में जितने दुष्कर्म होते हैं, उन सब के मूल में कोई न कोई क्रोधादिरूप रौद्रभाव ही रहता है॥ १२१४॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२१४

१४. जगत में जो कुछ भी बुरा नजर आता है, वह सब क्रोधादि विकारों का ही परिणाम है॥ १२१५॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५

१५. क्रोधादि विकारों के वशीभूत अविवेकी व्यक्ति अपना नुकसान तो करता ही है, चाहे उससे दूसरे का नुकसान हो या न हो॥ १२१६॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२१३

१६. क्रोधादि विकार यद्यपि आत्मा में उत्पन्न होते हैं, तथापि वे आत्मा नहीं, आत्मा के स्वभाव भी नहीं, आत्मा के मैल हैं, विकार हैं॥ १२१७॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२१३

१७. क्रोध या मान कोई भी विकार हवा में नहीं होता, किसी न किसी के आश्रय से होता है।॥ १२१८॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२८

उत्तममार्दव

१. मान और दीनता दोनों ही मार्दवधर्म के विरोधी भाव हैं। अतः दोनों ही मद (मान) के ही रूप हैं॥ १२१९॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३०

२. अभिमान और दीनता दोनों ही विकार हैं, आत्म-शान्ति को भंग करने वाले हैं और दोनों के अभाव का नाम ही मार्दवधर्म है॥ १२२०॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३१

३. अभिमान और दीनता दोनों में अकड़ है, मार्दवधर्म की कोमलता, सहजता दोनों में ही नहीं है॥ १२२१॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३१

४. जैसा है नहीं, वैसा मानने से तथा जैसा है नहीं, वैसा मानकर अभिमान या दीनता करने से मान होता है, मार्दवधर्म खण्डित होता है॥ १२२२॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३२

५. यदि मान हटाना है तो सब में विद्यमान समानता को जानिए, मानिए, मान स्वयं भाग जाएगा और सहज ही मार्दवधर्म प्रकट होगा॥ १२२३॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३२

३२

मान

१. प्रतिकूलता में क्रोध और अनुकूलता में मान आता है॥ १२२४॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२६

२. क्रोधी वियोग चाहता है पर मानी संयोग॥ १२२५॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२८

३. क्रोधी क्रोध के निमित्त को हटाना चाहता है, पर मानी मान के निमित्तों को रखना चाहता है॥ १२२६॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२७

४. क्रोधी को विरोधी की सत्ता ही स्वीकृत नहीं होती, जबकि मानी को भीड़ चाहिए, नीचे बैठने वाले चाहिए; जिनसे वह कुछ ऊँचा दिखे॥ १२२७॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२७

५. असफलता क्रोध और सफलता मान की जननी है॥ १२२८॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२६

६. निंदा शत्रु करते हैं और प्रशंसा मित्र। अतः क्रोध के निमित्त बनते हैं शत्रु और मान के निमित्त बनते हैं मित्र॥ १२२९॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२५

७. जिनका आत्मिक स्वास्थ्य कमजोर होता है, उन्हें निंदा और प्रशंसा दोनों ही परेशान करते हैं॥ १२३०॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२५

८. प्रशंसा मानव स्वभाव की ऐसी कमजोरी है कि जिससे बड़े-बड़े ज्ञानी भी नहीं बच पाते हैं। निंदा की आँच भी जिसे पिघला नहीं पाती, प्रशंसा की ठंडक उसे छार-छार कर देती है॥ १२३१॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-६८

९. प्रशंसा निंदा से अधिक खतरनाक है॥ १२३२॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२६

१०. छोटे-बड़े की भावना ही मान का आधार है॥ १२३३॥

— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-४९

११. बड़प्पन का भाव, मान का ही दूसरा नाम है॥ १२३४॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-४८

१२. मान का आधार 'पर' नहीं, पर को अपना मानना है॥ १२३५॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३९

१३. पर के कारण चाहे अपने को छोटा माने या बड़ा - दोनों ही मान हैं। इस कारण मानी तो मानी है ही, दीन भी मानी ही है॥ १२३६॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३१

१४. मान छोड़ने के लिए पर को अपना मानना छोड़ना होगा॥ १२३७॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३९

१५. मानी जीव हमेशा अपने को ऊँचा और दूसरों को नीचा करने का प्रयत्न किया करता है॥ १२३८॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२४

१६. मान एक मीठा जहर है॥ १२३९॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-२७

१७. मानकषाय और मार्दवधर्म दोनों ही आत्मा की पर्यायें हैं; अत: उनका नाप अपने से ही होना चाहिए, पर से नहीं॥ १२४०॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३०

१८. यदि मान भी सत् होगा तो फिर असत् क्या होगा?॥ १२४१॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३५

१९. कहाँ भगवान का अनंत ज्ञान और कहाँ अपना उसका अनंतवाँ भाग अल्पज्ञान, क्या करना उसका अभिमान?॥ १२४२॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३४

२०. स्वाभिमान का सही स्वरूप न पहिचान कर स्वाभिमान के नाम पर अज्ञानी मान ही करता रहता है॥ १२४३॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३५

२१. धनमद होने के लिए धन की उपस्थिति आवश्यक नहीं॥ १२४४॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३१

२२. ऐश्वर्यमद बाह्य पदार्थों से सम्बन्ध रखता है तथा ज्ञानमद आत्मा की अल्पविकसित अवस्था के आश्रय से होने वाला मद है॥ १२४५॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३३

२३. मानादि कषायें भूमिकानुसार क्रमशः छूटती हैं, पर उनमें उपादेय बुद्धि तो एक साथ ही छूट जाती है। इनमें उपादेयबुद्धि छूटे बिना धर्म का आरंभ ही नहीं होता॥ १२४६॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-३७

यह सब संयोग है

संयोग को संयोगरूप जानने से भी मान नहीं होता, क्योंकि सम्यग्ज्ञानी-चक्रवर्ती अपने को चक्रवर्ती जानता ही है, मानता भी है; किन्तु साथ में यह भी जानता है कि यह सब संयोग है, मैं तो इनसे भिन्न निराला तत्त्व हूँ। यही कारण है कि उसके अनन्तानुबन्धी का मान नहीं होता। यद्यपि कमजोरी के कारण अप्रत्याख्यानादि का मान रहता है, तथापि मान के साथ एकत्वबुद्धि का अभाव है, अतः उसके आंशिकरूप से मार्दवधर्म विद्यमान है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-६१

उत्तम-आर्जव

१. जैसा आत्मा का स्वभाव है, उसे वैसा ही जानना, वैसा ही मानना और उसी में तन्मय होकर परिणम जाना ही वीतरागी सरलता है, उत्तम आर्जव है ॥ १२४७ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५१

२. मुनिराजों के जो उत्तम आर्जवधर्म होता है, वह इसीप्रकार का होता है अर्थात् आत्मा को वर्णादि और रागादि से भिन्न जानकर उसमें ही समा जाते हैं,वीतरागतारूप परिणम जाते हैं; यही उनका उत्तम-आर्जव धर्म है, बोलने और करने में आर्जवधर्म नहीं ॥ १२४८ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५१

३. लोक में छल-कपट के अभावरूप मन-वचन-काय की एकरूपता — सरल परिणति को व्यवहार से आर्जवधर्म कहा जाता है ॥ १२४९ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५१

४. वस्तु के सही स्वरूप को जाने-माने बिना वीतरागी सरलतारूप आर्जवधर्म प्रकट नहीं किया जा सकता ॥ १२५० ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५२

५. आर्जवस्वभावी आत्मा के आश्रय से ही मायाचार का अभाव होकर वीतरागी सरलता प्रकट होती है ॥ १२५१ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५२

६. आर्जवधर्म की जैसी उत्कृष्ट दशा मुनिराज के ध्यान-काल में होती है, वैसी उत्कृष्ट दशा बोलते समय या कार्य करते समय नहीं होती॥ १२५२॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५१

७. आर्जवधर्म और मायाकषाय की चर्चा जब भी चलती है, तब उसे मन-वचन-काय के माध्यम से ही समझा-समझाया जाता है॥ १२५३॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४३

८. आर्जवधर्म और मायाकषाय को समझने-समझाने का मूल कारण यह है कि मन-वचन-काय वालों की मायाकषाय और आर्जवधर्म प्रायः मन-वचन-काय के माध्यम से ही प्रकट होते हैं॥ १२५४॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४७

९. मनुष्य का मायाचार प्रायः मन-वचन-काय की विरूपता में तथा आर्जवधर्म इनकी एकरूपता में प्रकट होता देखा जाता है॥ १२५५॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४६

१०. मन-वचन-काय की एकरूपता ही आर्जवधर्म है और इनकी विरूपता ही आर्जवधर्म की विरोधी माया कषाय है॥ १२५६॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४३

११. आर्जवधर्म आत्मा का स्वभाव एवं स्वभावभाव है तथा मायाकषाय आत्मा का विभावभाव है॥ १२५७॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४५

१२. मन-वचन-काय से आर्जवधर्म और मायाकषाय के उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता॥ १२५८॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४५

१३. आर्जवधर्म के होने के लिए मन-वचन-काय की आवश्यकता नहीं, क्योंकि मन-वचन-काय रहित सिद्धों के वह विद्यमान है॥ १२५९॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४५

१४. सिद्धों में आर्जवधर्म भी आगमसिद्ध ही है, युक्तियों से सिद्ध करना कठिन है॥ १२६०॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४६

१५. मन-वचन-काय की एकरूपता अच्छाई में ही हो, बुराई में नहीं॥ १२६१॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४८

१६. मन-वचन-काय की एकरूपता लाने के लिए मन को इतना पवित्र बनाना होगा कि उसमें कोई खोटा भाव कभी उत्पन्न ही न हो, अन्यथा उनकी एकरूपता रखना न तो सम्भव ही होगा और न हितकर ही॥ १२६२॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४८

१७. जगत के कायिक जीवन में उतनी विकृति नहीं, जितनी की जन-जन के मनों में है॥ १२६३॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४९

१८. जब कोई भाव निरन्तर मन में बना रहता है तो फिर वह वाणी में फूटता ही है॥। १२६४॥ धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४९

१९. उत्तम-आर्जवधर्म प्रकट करने के लिए सर्वप्रथम जानना होगा कि वस्तुत: माया कषाय मन-वचन-काय की विरूपता, वक्रता या कुटिलता का नाम नहीं, वरन् आत्मा की विरूपता, वक्रता या कुटिलता का नाम है॥ १२६५॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५०

२०. अन्तर से बाहर की व्याप्ति होने से जिनके निश्चय उत्तम-आर्जव प्रकट होता है, उनका व्यवहार भी नियम से सरल होता है अर्थात् उनके व्यवहार आर्जव भी नियम से होता है॥ १२६६॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५१

मन को इतना पवित्र बनाना होगा

यही उचित है कि मन-वचन-काय की एकरूपता अच्छाई में ही हो, बुराई में नहीं। हमें मन-वचन-काय में एकरूपता लाने के लिए मन को इतना पवित्र बनाना होगा कि उसमें कोई खोटा भाव कभी उत्पन्न ही न हो, अन्यथा उनकी एकरूपता रखना न तो सम्भव ही होगा और न हितकर ही।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-६४

३४

माया

१. मायाचारी का व्यवहार सहज-सरल नहीं होता॥ १२६७॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४०

२. मायाचारी सदा सशंक बना रहता है; क्योंकि उसने जो दुरंगी नीति चलाई है, उसके प्रगट हो जाने का भय उसे सदा बना रहता है॥ १२६८॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४२

३. खतरा तो कपट खुलने पर होता है, पर खतरे की आशंका से कपटी सदा ही भयाक्रान्त रहता है॥ १२६९॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४२

४. कार्यसिद्धि के लिए कपट का प्रयोग कमजोर व्यक्ति करता है। सबल व्यक्ति को अपनी कार्यसिद्धि के लिए कपट की आवश्यकता ही नहीं पड़ती॥ १२७०॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४१

५. लौकिक कार्यों की सिद्धि मायाचार से नहीं, पूर्व पुण्योदय से होती है॥ १२७१॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४१

६. कुटिल व्यक्ति क्रोध-मान को छिपा तो सकता है, पर क्रोध मान का अभाव करना उसके वश की बात नहीं है॥ १२७२॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१७७

७. मायाचारी के क्रोध, मान वैसे प्रकट नहीं होते जैसे कि सरल स्वभावी के हो जाते हैं॥ १२७३॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१७६

८. मन-वचन-काय के माध्यम से मायाचार एवं आर्जवधर्म होते नहीं, प्रकट होते हैं॥ १२७४॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४६

९. उसमें (एकेन्द्रिय में) माया कषाय की उपस्थिति आगम से ही जानी जाती है, उसे युक्ति से सिद्ध करना संभव नहीं ॥ १२७५ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४६

१०. उपदेश मन की विकृतियों को बाहर लाने के लिए नहीं, वरन् उन्हें समाप्त कर मन को पावन बनाने के लिए है ॥ १२७६ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-४९

११. आत्मा का स्वभाव जैसा है वैसा न मानकर अन्यथा मानना, अन्यथा ही परिणमन करना चाहना ही अनन्त वक्रता है ॥ १२७७ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५०

१२. जो जिसका कर्ता-धर्ता-हर्ता नहीं है, उसे उसका कर्ता-धर्ता-हर्ता मानना ही अनन्त कुटिलता है ॥ १२७८ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५०

१३. वक्रता-कुटिलता-विरूपता तो वस्तु का सही स्वरूप समझने से ही जावेगी ॥ १२७९ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५१

विश्वास उठ जाता है

सशंकित और भयाक्रान्त व्यक्ति कभी भी निराकुल नहीं हो सकता। उसका चित्त निरन्तर आकुल-व्याकुल और अशान्त रहता है। अशान्त-चित्त व्यक्ति कोई भी कार्य सही रूप में एवं सफलतापूर्वक नहीं कर सकता है, फिर धर्म की साधना और आत्मा की आराधना तो बहुत दूर की बातें हैं।

मायाचारी व्यक्ति का कोई विश्वास नहीं करता। यहाँ तक कि माता-पिता, भाई-बहिन, पत्नी-पुत्र का भी उस पर से विश्वास उठ जाता है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-६२

उत्तमशौच

१. पवित्र स्वभाव को छूकर जो पर्याय स्वयं पवित्र हो जाए उस पर्याय का नाम ही शौचधर्म है॥ १२८०॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६९

२. सम्यग्दर्शन के साथ होने वाली वीतरागी पवित्रता ही उत्तमशौचधर्म है॥ १२८१॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५३

३. वीतरागता ही वास्तविक शौचधर्म है॥ १२८२॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६७

४. पूर्णत: शौचधर्म तो वीतरागी सर्वज्ञों के ही होता है॥ १२८३॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६८

५. सबसे खतरनाक कषाय लोभ है और सबसे बड़ा धर्म शौच है॥ १२८४॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६३

६. शौचधर्म मात्र लोभकषाय के अभाव का ही नाम नहीं, वरन् लोभान्त कषायों के अभाव का नाम है॥ १२८५॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६३

७. पूर्ण पवित्रता को लक्ष्य में रखकर ही लोभ के अभाव को शौचधर्म कहा है॥ १२८६॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६४

८. अंशरूप में जितना-जितना लोभान्त कषायों का अभाव होगा; उतना-उतना शौचधर्म प्रकट होता जावेगा॥ १२८७॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६४

९. सभी प्रकार के कषायभावों से आत्मा अपवित्र होता है और सभी कषायों के अभाव होने पर शौचधर्म प्रकट होता है॥ १२८८॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६४

१०. शौचधर्म आत्मा का धर्म है, शारीरिक अपवित्रता से उसको क्या लेना-देना?॥ १२८९॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६५

११. शौचधर्म का जैसा प्रकर्ष अस्नानव्रती मुनिराजों के होता है, वैसा दिन में तीन-तीन बार नहाने वाले गृहस्थों के नहीं॥ १२९०॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६५

१२. पूर्ण वीतरागता और केवलज्ञान प्रतिदिन नहाने वालों को नहीं, जीवनभर नहीं नहाने की प्रतिज्ञा करने वालों को प्राप्त होते हैं॥ १२९१॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६७

१३. सम्यग्दृष्टि और देशव्रती श्रावकों के होनेवाला शौचधर्म यद्यपि वास्तविक ही है; तथापि उसमें वैसी निर्मलता नहीं हो पाती, जैसी मुनिदशा में होती है॥ १२९२॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६८

१४. आत्मस्वभाव के स्पर्श बिना अर्थात् आत्मा के अनुभव बिना शौचधर्म का आरंभ नहीं होता॥ १२९३॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६९

१५. जब तत्त्वज्ञान के अभ्यास से परपदार्थ न तो अनुकूल ही मालूम हो और न प्रतिकूल, तब मुख्यतया कषाय भी उत्पन्न न होगी॥ १२९४॥

— बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-१३

१६. 'पर' के आश्रय से पर्याय में अपवित्रता और 'स्व' के आश्रय से पवित्रता प्रकट होती है॥ १२९५॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६८

३६

लोभ

१. वस्तुतः तो पाँचों इन्द्रियों के विषयों की एवं मानादि कषायों की पूर्ति का लोभ ही लोभ है॥ १२९६॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५५

२. प्रेम या प्रीति भी लोभ के ही नामान्तर हैं॥ १२९७॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५९

३. जब लोभ किसी वस्तु के प्रति होता है तो उसे लोभ या लालच कहा जाता है, पर वही लोभ किसी व्यक्ति के प्रति होता है, तो उसे प्रीति या प्रेम नाम दिया जाता है॥ १२९८॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५९

४. परिष्कृत लोभ को उदात्त प्रेम, वात्सल्य आदि अनेक सुन्दर-सुन्दर नाम दिये जाते हैं; पर वे सब आखिर हैं तो लोभ के रूपान्तर ही॥ १२९९॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५९

५. पैसे का लोभ तो कृत्रिम लोभ है॥ १३००॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५५

६. यदि रुपये-पैसे के लोभ को ही लोभ मानें तो अन्य चारों गतियों में लोभ की सत्ता संभव न होगी॥ १३०१॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५५

७. पैसा तो विनिमय का एक कृत्रिम साधन है॥ १३०२॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५६

८. पैसे की प्रतिष्ठा आरोपित है, स्वयं की नहीं; अतः पैसों का लोभ भी आरोपित है॥ १३०३॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५६

९. पैसे का लोभी व्यक्ति सदा जोड़ने में ही लगा रहता है, भोगने का उसे समय ही नहीं मिलता॥ १३०४॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५४

१०. धन की प्राप्ति में लोभ-आसक्ति कारण नहीं, परन्तु पुण्य ही कारण है॥ १३०५॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५४

११. मानव की समस्या मात्र पेट भरने तक सीमित नहीं रहती, वह पेटी भरने के चक्कर में सदा ही असन्तुष्ट बना रहता है॥ १३०६॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५४

१२. ऊपर से उदार दिखने वाला अन्दर से बहुत बड़ा लोभी भी हो सकता है॥ १३०७॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५५

१३. यश के लोभियों को प्रायः निर्लोभी मान लिया जाता है॥ १३०८॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५५

१४. मनुष्य और सब कुछ छोड़ सकता है, पर यश का लोभ छोड़ना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है॥ १३०९॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-४८

१५. स्वर्गादि के लोभ में धर्म के नाम पर सब कुछ करना यद्यपि लोभ ही है, तथापि ऐसे लोभी जगत में धर्मात्मा से दिखते हैं॥ १३१०॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६१

१६. मोक्ष को चाहने वालों को भी लोभियों में ही गिना है; क्योंकि आखिर चाह लोभ ही तो है, चाहे किसी की भी क्यों न हो॥ १३११॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६१

१७. लोभ दूसरी कषायों को काटता ही है, स्वयं को भी काटता है। यश का लोभी धन का लोभ छोड़ देता है॥ १३१२॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५८

१८. जीवन का लोभ भी शरीर के संयोग बने रहने की लालसा के अतिरिक्त और क्या है?॥ १३१३ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५७

१९. लोभी व्यक्ति मानापमान का विचार नहीं करता॥ १३१४ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५८

२०. लोभ तो पाप नहीं, पाप का बाप है॥ १३१५ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६२

२१. आत्मस्वभाव को आच्छन्न करने वाली शौचधर्म की विरोधी लोभ कषाय जब अपनी तीव्रता में होती है तो अन्य कषायों को भी दबा देती है॥ १३१६ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५८

२२. यदि कषायों का अभाव करना है तो उसका उपाय कषायों की तरफ देखना नहीं और न उन वस्तुओं की ओर देखना ही है, जिनके लक्ष्य से ये कषायें उत्पन्न होती हैं॥ १३१७ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-५२

स्वभाव तो उसका नाम है

स्वभाव की शुचिता में ऐसी सामर्थ्य है कि उस पर जो पर्याय झुके, उसको जो पर्याय छुए; वह उसे पवित्र बना देती है। पवित्र कहते ही उसे हैं, जिसको छूने से छूनेवाला पवित्र हो जाय। वह कैसा पवित्र, जो दूसरों के छूने से अपवित्र हो जाय? पारस तो उसे कहते हैं, जिसके छूने पर लोहा सोना हो जाय। जिसके छूने से सोना लोहा हो जावे, वह थोड़े ही पारस कहा जायगा। इसीप्रकार जो अपवित्रपर्याय के छूने से अपवित्र हो जाय, वह स्वभाव कैसा? स्वभाव तो उसका नाम है, जिसके आश्रय से पर्याय भी पवित्र हो जावे।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-६८

उत्तमसत्य

१. सत्स्वभावी आत्मा के आश्रय से आत्मा में जो शान्तिस्वरूप वीतराग परिणति उत्पन्न होती है, उसे निश्चय से सत्यधर्म कहते हैं॥ १३१८॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७५

२. जिस पदार्थ की जिस रूप में सत्ता है, उसे वैसा ही जानना सत्य ज्ञान है, वैसा ही मानना सत्य श्रद्धान है, वैसा ही बोलना सत्य वचन है, और आत्मस्वरूप के सत्यज्ञान-श्रद्धानपूर्वक वीतराग भाव की उत्पत्ति होना सत्यधर्म है॥ १३१९॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७६

३. सही जानना-मानना ही सत्य प्राप्त करना है और आत्म-सत्य को प्राप्त कर राग-द्वेष का अभाव कर वीतरागतारूप परिणति होना सत्यधर्म है॥ १३२०॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७७

४. अन्तर में विद्यमान ज्ञानानंदस्वभावी त्रैकालिक ध्रुव आत्मतत्त्व ही परमसत्य है। उसके आश्रय से उत्पन्न हुआ ज्ञान, श्रद्धान एवं वीतराग परिणति ही उत्तमसत्यधर्म है॥ १३२१॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८०

५. वस्तु जैसी है वैसी जानने का नाम सत्य है, अच्छी-बुरी जानने का नाम सत्य नहीं॥ १३२२॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७८

६. मिथ्यात्व के अभाव बिना तो सत्यधर्म की प्राप्ति ही संभव नहीं है॥ १३२३॥ — धर्म के दश लक्षण, पृष्ठ-७५

७. जगत में तो असत्य की सत्ता ही नहीं है, पर असत्य हमारी दृष्टि में ऐसा समा गया है कि वह जगत में दिखाई देता है॥ १३२४॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७७

८. अज्ञानियों के ज्ञान, श्रद्धान और वाणी के अतिरिक्त लोक में असत्य की सत्ता ही नहीं है, सर्वत्र सत्य का ही साम्राज्य है॥ १३२५॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७७

९. सत्य कहते ही उसे हैं जिसकी लोक में सत्ता हो॥ १३२६॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७६

१०. जहाँ सत्य की खोज, सत्य की उपासना की बात चलती है, वहाँ निश्चित रूप से सत्य वचन की खोज अपेक्षित नहीं होती; वरन् कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण अव्यक्त सत्य अपेक्षित होता है, जो उपास्य हो, आश्रय के योग्य हो॥ १३२७॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७१

११. दार्शनिकों और आध्यात्मिकों का उपास्य, आश्रयदाता सत्य मात्र वचन रूप नहीं हो सकता॥ १३२८॥— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७१

१२. न तो सत्य बोलना ही सत्यधर्म है और न झूठ न बोलना ही॥ १३२९॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७४

१३. सत्य बोलना तो निश्चय से सत्यधर्म है ही नहीं, पर मात्र सत्य जानना, सत्य मानना भी वास्तविक सत्यधर्म नहीं है॥ १३३०॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७५

१४. सत्यवाणी की बात तो दूर, मात्र सच्ची श्रद्धा और सच्ची समझ भी सत्यधर्म नहीं; किन्तु सच्ची श्रद्धा और सच्ची समझपूर्वक उत्पन्न हुई वीतराग परिणति ही निश्चय से उत्तमसत्यधर्म है॥ १३३१॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७५

१५. जिसके आश्रय से धर्म प्रकट हो, जो अनन्त सुख-शान्ति का आश्रय बन सके; ऐसा सत्य कोई महान चेतन तत्त्व ही हो सकता है; उसे वाग्विलास तक सीमित नहीं किया जा सकता॥ १३३२॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७१

१६. सत्यधर्म को सत्यवचन तक सीमित कर देने से एक बड़ा नुकसान यह हुआ कि उसकी खोज ही खो गई॥ १३३३॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७२

१७. सत्यवचन को सत्यधर्म मान लेने से सबसे बड़ी हानि यह हुई कि सत्यधर्म की खोज खो गई॥ १३३४॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७२

१८. सत्यवचन को ही सत्यधर्म मानकर बैठ जाने वालों को सत्य पाना संभव नहीं॥ १३३५॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७२

१९. निश्चय से सत्यवचन सत्यधर्म नहीं है॥ १३३६॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७३

२०. यदि सत्य बोलने को सत्यधर्म मानें तो सिद्धों के सत्यधर्म नहीं रहेगा, क्योंकि वे सत्य नहीं बोलते॥ १३३७॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७३

२१. मुक्ति के मार्ग में सत्य बोलना अनिवार्य नहीं, किन्तु सत्य जानना, सत्य मानना और आत्म सत्य के आश्रय से उत्पन्न वीतराग परिणतिरूप सत्यधर्म प्राप्त करना जरूरी है॥ १३३८॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८०

२२. उत्तमक्षमादि दशधर्म जिनमें सत्यधर्म भी शामिल है, सिद्धों में विद्यमान हैं, पर उनके सत्यवचन नहीं है॥ १३३९॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७३

२३. यदि बिना बोले चल जावे तो बोलो ही मत, न चले तो हित-मित-प्रिय वचन बोलो और वह भी पूर्णत: सत्य, यदि सूक्ष्म असत्य से न बच सको तो स्थूल असत्य तो कभी न बोलो॥ १३४०॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७१

३८

सत्य

१. सत्य ही नारायण है, वही उपास्य है, आराध्य है॥ १३४१ ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२५

२. सत्य का उद्‌घाटन सत्य को समझना ही है॥ १३४२ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-६४

३. सत्य की प्राप्ति स्वयं से, स्वयं में, स्वयं के द्वारा ही होती है॥ १३४३ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१४३

४. सत्य, सत्य की रुचि, महिमा, लगनवालों को ही प्राप्त होता है॥ १३४४ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८२

५. आत्म-सत्य की तीव्र रुचि जाग्रत हो, उसकी महिमा आवे, उसे प्राप्त करने की तीव्रतम लगन लगे, उसे प्राप्त करने का अन्तरोन्मुखी पुरुषार्थ जगे और सत्य की प्राप्ति न हो, यह संभव नहीं है॥ १३४५ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८२

६. सत्य को स्वीकार करना ही सन्मार्ग है॥ १३४६ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२५

७. सत्य के खोजी को सत्य प्राप्त होता ही है॥ १३४७ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८२

८. यदि सत्य की खोज की तड़फ हमारे हृदय में गहराई से उठे तो उसे पाना असंभव नहीं है, कठिन भी नहीं है॥ १३४८ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-७९

९. सत्य के प्रगट होने में देर भले ही हो, पर अंधेर नहीं हो सकता॥ १३४९॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२४२

११. सत्य तीव्र रुचिवन्त को ही प्राप्त होता है॥ १३५०॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-८०

११. समझौते का आधार सत्य नहीं, शक्ति होती है॥ १३५१॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८१

१२. संगठन से सत्य बहुत मजबूत होता है॥ १३५२॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-११८

१३. रचनात्मक मार्ग तो सत्य का उद्घाटन है न कि असत्य का भंडाफोड़॥ १३५३॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-६४

१४. सत्य और शान्ति समझ से मिलती है, समझौते से नहीं॥ १३५४॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८१

१५. वस्तु के सत्यस्वरूप को समझने की आवश्यकता है, समझौते की नहीं॥ १३५५॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८०

१६. श्रद्धास्पद सत्य को स्वीकार करने के लिए राग बाध्य नहीं होता॥ १३५६॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२७

१७. सत्य की प्राप्ति के लिए अपने में सिमटना जरूरी है और सत्य के प्रचार के लिए जन-जन तक पहुँचेना॥ १३५७॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१४२

१८. सत्य की प्राप्ति व्यक्तिगत क्रिया है और सत्य का प्रचार सामाजिक प्रक्रिया॥ १३५८॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१४२

१९. सत्साहित्य का निर्माण परमसत्य के उद्घाटन के लिए किया जानेवाला महान कार्य है॥ १३५९॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२

२०. सत्य नहीं, सत्य की खोज खो गई है। सत्य को नहीं, सत्य की खोज को खोजना है॥ १३६०॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-७९

२१. सत्य के आराधक क्रान्तिकारियों को सिंहवृत्ति ही शोभती है। साथियों की कल्पना उसके शौर्य को प्रतिबन्धित करती है॥ १३६१॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-३६

२२. निष्पक्ष निर्णय बिना सभी दर्शनों पर प्रतिबंध लगा देने से तो सत्य दर्शन भी प्रतिबंधित हो जाएगा॥ १३६२॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-६७

२३. ज़िनकी सत्ता है, वे सभी सत्य हैं॥ १३६३॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७६

२४. सत्य के आधार पर व्यापार करना ही व्यापारी की सत्यनारायण की पूजा है॥ १३६४॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१४

२५. निर्भयता सत्य के आधार पर आती है, कल्पना के आधार पर नहीं॥ १३६५॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-९९

२६. वाणी की सत्यता के लिए वाणी को वस्तुस्वरूप के अनुकूल ढालना होगा॥ १३६६॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७८

२७. सत्य बोलने के लिए सत्य जानना जरूरी है॥ १३६७॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७८

२८. सारी कवायद झूठ बोलने के लिए नहीं, झूठ छिपाने के लिए करनी पड़ती है, झूठ को सत्य का लबादा पहनाने के लिए करनी पड़ती है॥ १३६८॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७९

२९. जैसा देखा, जाना और सुना हो वैसा ही न कहकर अन्यथा कहना तो झूठ है ही, साथ ही जबतक हम किसी बात को सही समझेंगे नहीं तबतक हमारा कहना सही कैसे होगा?॥ १३६९॥

— बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-८

३०. बिना सोचे-समझे सत्य नहीं बोला जा सकता॥ १३७०॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७९

३१. सत्य जानने पर जीवन भर भी न बोले तो कोई अन्तर न पड़ेगा, पर जाने बिना नहीं चलेगा॥ १३७१॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८०

३२. निरन्तरता में अद्‌भुत शक्ति होती है और यदि वह परमसत्य के साथ जुड़ जाए तो उसका कहना ही क्या ?॥ १३७२॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२८

३३. रागनिमित्तक होने पर भी ज्ञानी की वाणी, श्रद्धा और ज्ञान का अनुसरण करने वाली होने से सत्य की प्रतिपादक है॥ १३७३॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१४४

३४. असत्य के प्रति बहुमान वालों को सत्य प्राप्त होना कठिन ही नहीं असंभव है॥ १३७४॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८२

३५. धार्मिक समाज का काम है कि वह सत्य का आश्रय ले और संगठन को भी बनाए रखे॥ १३७५॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-११८

सबसे बड़ा असत्य है

जहाँ सत्य की खोज, सत्य की उपासना की बात चलती है; वहाँ निश्चितरूप से सत्यवचन की खोज अपेक्षित नहीं होती, वरन् कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण अव्यक्त सत्य अपेक्षित होता है जो उपास्य हो, आश्रय के योग्य हो। दार्शनिकों और आध्यात्मिकों का उपास्य, आश्रयदाता सत्य मात्र वचनरूप नहीं हो सकता। जिसके आश्रय से धर्म प्रकट हो, जो अनन्त सुख-शान्ति का आश्रय बन सके; ऐसा सत्य कोई महान चेतनतत्त्व ही हो सकता है, उसे वाग्विलास तक सीमित नहीं किया जा सकता। उसे वचनों तक सीमित करना स्वयं ही सबसे बड़ा असत्य है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-६८-६९

उत्तमसंयम

१. संयम मात्र बाह्य प्रवृत्ति का नाम नहीं; बल्कि उस पवित्र आन्तरिक वृत्ति का नाम है, जो मानवों में पाई जा सकती है; देवों में नहीं, चाहे उनकी बाह्य वृत्ति कितनी ही ठीक क्यों न हो॥ १३७६ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८७

२. संयम को प्राप्त करने के लिए मात्र इन्द्रिय भोगों को नहीं, इन्द्रियज्ञान को भी तिलाञ्जलि देनी होगी॥ १३७७ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-९५

३. उपयोग को परपदार्थों से समेटकर निज में लीन होना ही संयम है॥ १३७८ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-९४

४. सम्यग्दर्शन के बिना संयम की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि एवं फलागम संभव नहीं है॥ १३७९ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८३

५. संयम धारण किये बिना तो तीर्थंकरों को भी केवलज्ञान नहीं होता, मोक्ष नहीं होता; अतः संयम श्रेष्ठ है॥ १३८० ॥

— पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-४९

६. संयम मुक्ति का साक्षात् कारण है॥ १३८१ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८४

७. संसार-सागर से पार उतारने वाला एकमात्र संयम ही है॥ १३८२ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८४

८. मनुष्य जन्म की सार्थकता संयम धारण करने में ही है॥ १३८३॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८५

९. आगमानुसार दृष्टि से संपन्न पुरुष ही संयमी होते हैं॥ १३८४॥

आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-६९

१०. संयम की सर्वोत्कृष्ट दशा ध्यान है॥ १३८५॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-९६

११. आत्मस्वभाव के समीप ठहरना यानी आत्मलीनता ही वास्तविक उपवास (उप - समीप, वास - ठहरना) है॥ १३८६॥

— मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-४४

विनयतप

माता-पिता आदि की विनय लौकिक विनय है और विनयतप में अलौकिक अर्थात् धार्मिक-आध्यात्मिक विनय की बात आती है।

विनयतप चाहे जहाँ माथा टेक देने वाले तथाकथित दीन गृहस्थों के नहीं, पंचपरमेष्ठी के अतिरिक्त कहीं भी नहीं नमने वाले मुनिराजों के होता है।

बिना विचारे जहाँ-तहाँ नमने का नाम विनयतप नहीं, वैनयिक मिथ्यात्व है। विनय अपने-आप में अत्यन्त महान आत्मिक दशा है। सही जगह होने पर जहाँ वह तप का रूप धारण कर लेती है, वहीं गलत जगह की गई विनय अनन्त संसार का कारण बनती है।

विनय सबसे बड़ा धर्म, सबसे बड़ा पुण्य एवं सबसे बड़ा पाप भी है। विनय तप के रूप में सबसे बड़ा धर्म, सोलहकारण भावनाओं में विनयसम्पन्नता के रूप में तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण होने से सबसे बड़ा पुण्य और विनयमिथ्यात्व के रूप में अनन्त संसार का कारण होने से सबसे बड़ा पाप है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-७८-७९

तप

१. नास्ति से इच्छाओं का अभाव और अस्ति से आत्मस्वरूप में लीनता ही तप है॥ १३८७॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-९७

२. इच्छाओं के निरोधरूप शुद्धोपयोगरूपी वीतरागभाव ही सच्चा तप है॥ १३८८॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१००

३. इच्छाओं का निरोध होकर वीतरागभाव की वृद्धि होना तप का मूल प्रयोजन है॥ १३८९॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०६

४. तप आत्मा की वीतराग परिणतिरूप शुद्धभाव का नाम है॥ १३९०॥ — ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१०१

५. प्रत्येक तप में वीतरागभाव की वृद्धि होनी ही चाहिए, तभी वह तप है, अन्यथा नहीं॥ १३९१॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१००

६. अंतरंग तप ही वास्तविक तप है॥ १३९२॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०१

७. स्वाध्याय और ध्यान अंतरंग तप हैं और तपों में सर्वश्रेष्ठ हैं॥ १३९३॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०२

८. जगतजनों को बाह्य तप करने वाला ही तपस्वी दिखाई देता है॥ १३९४॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०१

९. जगतजन उपवास करने वाले को ही तपस्वी मानेंगे, पठन-पाठन करने वाले को नहीं॥ १३९५॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०१

१०. अनशन में इच्छाओं की अपेक्षा पेट का निरोध अधिक है॥ १३९६॥
— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०५

११. हमने पेट के काटने को तप मान लिया है, जबकि आचार्यों ने इच्छाओं के काटने को तप कहा है॥ १३९७॥
— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०५

१२. ऊनोदरादि में क्रमशः पेट के निरोध की अपेक्षा इच्छाओं का निरोध अधिक है॥ १३९८॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०५

१३. विनयतप तपधर्म का भेद है; अतः इसका उपचार भी धर्मात्माओं में ही किया जा सकता है, लौकिकजनों में नहीं॥ १३९९॥
— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०९

१४. माँ-बाप के सामने झुकने का नाम तो विनयतप है ही नहीं, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के सामने झुकने का नाम भी निश्चय से विनयतप नहीं है - उपचारविनय है॥ १४००॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०८

१५. विनयतप चाहे जहाँ माथा टेक देने वाले तथाकथित दीन गृहस्थों के नहीं, पंचपरमेष्ठी के अतिरिक्त कहीं भी नहीं नमने वाले मुनिराजों के होता है॥ १४०१॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०७

१६. विनय का यदि सही स्थान पर प्रयोग हुआ तो तप होने से कर्म को काटेगी, किन्तु गलत स्थान पर प्रयुक्त विनय मिथ्यात्व होने से धर्म को ही काट देती है॥ १४०२॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०७

१७. विनय अपने आप में महान आत्मिक दशा है॥ १४०३॥
— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०७

१८. ज्ञान-दर्शन-चारित्र के प्रति अत्यन्त महिमावन्त मुनिराजों के विनयतप सदा ही रहता है॥ १४०४॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०९

१९. बाहर से नमनेरूप विनय तो कभी-कभी ही देखी जा सकती है, पर बहुमान का भाव तो सदा रहता है॥ १४०५॥
— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०९

२०. वैयावृत्ति में पैर भी दबाये जाते हैं, पर पैर दबाना ही मात्र वैयावृत्ति नहीं है ॥ १४०६ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११०

२१. शुद्धोपयोगरूप रहने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहना ही वास्तविक वैयावृत्ति है ॥ १४०७ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११०

२२. वास्तविक स्वाध्याय तो आत्मज्ञान का प्राप्त होना ही है ॥ १४०८ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१११

२३. निज का ज्ञान प्राप्त होना ही स्वाध्याय है, पर का ज्ञान तो पराध्याय है ॥ १४०९ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१११

२४. यशादि के लोभ के बिना स्वपरहित की दृष्टि से किया गया धर्मोपदेश भी स्वाध्यायतप में आता है ॥ १४१० ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११२

२५. स्वाध्याय एक ऐसा तप है कि अन्य तपों में जो लाभ हैं, वे तो इसमें हैं ही, साथ में यह ज्ञानवृद्धि का भी एक अमोघ उपाय है ॥ १४११ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११४

२६. समस्त तपों का सार ध्यान तप है, इसकी सिद्धि के लिए ही शेष सब तप हैं ॥ १४१२ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११५

२७. भले ही पर में एकाग्र होना भी ध्यान हो, पर ध्यानतप नहीं ॥ १४१३ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११५

२८. आत्माराधना ही वस्तुतः परमार्थ प्रतिक्रमण है ॥ १४१४ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-९२

४१

त्याग और दान

१. त्याग धर्म है और दान पुण्य ॥ १४१५ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११६

२. 'दान' व्यवहार धर्म है और 'त्याग' निश्चय धर्म है ॥ १४१६ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२१

३. दान यदि देने का नाम है तो त्याग नहीं लेने को कहते हैं ॥ १४१७ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३३

४. मुनिराज त्यागी हैं, त्याग धर्म के धनी हैं; गृहस्थ दानी है, अत: पुण्य का भागी है ॥ १४१८ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२९

५. दान में परोपकार का भाव मुख्य रहता है और अपने उपकार का गौंण; किन्तु त्याग में स्वोपकार ही सब कुछ है, दूसरों के उपकार के लिए मोह-राग-द्वेष नहीं त्यागे जाते हैं ॥ १४१९ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११९

६. त्यागियों के पास रंचमात्र भी परिग्रह नहीं होता, जबकि दानियों के पास ढ़ेर सारा परिग्रह पाया जा सकता है ॥ १४२० ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११६

७. त्याग वस्तु को अनुपयोगी, अहितकारी जानकर किया जाता है, जबकि दान उपयोगी और हितकारी वस्तु का दिया जाता है ॥ १४२१ ॥

— धर्म के दशलक्षण पृष्ठ-११८

८. ज्ञानी श्रावक के योग्य आंशिक शुद्धि, वह निश्चय से अपने को शुद्धता का दान है तथा स्व और पर के अनुग्रह के लिए धनादि देना व्यवहार दान है॥ १४२२॥ — वी.वि. पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-१७

९. पर को पर जानकर उनके प्रति राग का त्याग करना ही वास्तविक त्याग है॥ १४२३॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२१

१०. त्याग खोटी चीज का किया जाता है॥ १४२४॥
— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२२

११. त्याग तो अपवित्र वस्तु का ही किया जाता है॥ १४२५॥
— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३३

१२. वस्तुत: तो राग-द्वेषादि विकारों के त्याग का ही नाम उत्तम त्यागधर्म है॥ १४२६॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२६

१३. जो अपने पास नहीं है, त्याग उसका भी किया जा सकता है॥ १४२७॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२४

१४. त्याग ज्ञान में ही होता है अर्थात् पर को पर जानकर उससे ममत्व भाव तोड़ना ही त्याग है॥ १४२८॥— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११८

१५. त्याग परद्रव्यों का नहीं, अपितु अपनी आत्मा में परद्रव्यों के प्रति होने वाले मोह-राग-द्वेष का होता है॥ १४२९॥
— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११७

१६. वास्तविक त्याग पर में नहीं; अपने में, अपने ज्ञान में होता है॥ १४३०॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११७

१७. मोह या राग के आंशिक अभाव में भी त्यागधर्म प्रकट होता है॥ १४३१॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२०

१८. त्यागधर्म में तो पर के संयोग की अपेक्षा संभव नहीं है, त्याग शब्द ही वियोगवाची है॥ १४३२॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२४

१९. जब 'पर' अपना है ही नहीं, तब उसका क्या त्याग करना और जो दिया ही नहीं जा सकता उसका क्या देना॥ १४३३॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२१

२०. त्याग के लिए हम पूर्णत: स्वतंत्र हैं॥ १४३४॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२४

२१. त्याग एक ऐसा धर्म है, जिसे प्राप्तकर यह आत्मा अकिंचन अर्थात् आकिंचन्यधर्म का धारी बन जाता है, पूर्ण ब्रह्म में लीन होने लगता है, हो जाता है और सारभूत आत्मस्वभाव को प्राप्तकर लेता है॥ १४३५॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३४

२२. उपकार के भाव से अपनी उपयोगी वस्तु पात्रजीव को दे देना दान है॥ १४३६॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११८

२३. दान अच्छी चीज का दिया जाता है॥ १४३७॥

—धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२२

२४. 'दान' व्यवहार धर्म है; अत: वह परोपकार सम्बन्धी विकल्पपूर्वक ही होता है॥ १४३८॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२२

२५. बिना माँगे दिया गया दान सर्वोत्कृष्ट है॥ १४३९॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३०

२६. जोर-जबरदस्ती से अनुत्साहपूर्वक देना तो दान ही नहीं है॥ १४४०॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३०

२७. संक्लेश परिणामों से दिया गया चन्दा दान नहीं हो सकता। दान तो उत्साहपूर्वक विशुद्धभावों से दिया जाता है॥ १४४१॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३०

२८. दान उपकार के विकल्पपूर्वक दिया जाता है; अत: ज्ञानी-दानी को भी व्यवस्था देखने-जानने का सहज विकल्प आता है॥ १४४२॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२०

२९. दान निर्लोभियों की क्रिया थी, जिसे यश और पैसे के लोभियों ने विकृत कर दिया है॥ १४४३॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२७

३०. देनेवाले यश के लोभी और लेनेवाले पैसे के लोभी - इन लोभियों ने लोभ के अभाव में होनेवाले दान को भी विकृत कर दिया है॥ १४४४॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२७

३१. दान एक पराधीन क्रिया है॥ १४४५॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२४

३२. दान कमाई पर प्रतिबंध नहीं लगाता॥ १४४६॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३२

३३. दान देनेवाले से लेनेवाला बड़ा होता है। पर यह बात तब है, जब देने वाला योग्य दातार और लेनेवाला योग्य पात्र हो॥ १४४७॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२८

३४. ज्ञानदान अर्थात् समझाना; समझाने का भाव भी शुभभाव होने से पुण्यबंध का कारण है॥ १४४८॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२९

३५. समझानेवाले को पुण्य का लाभ अर्थात् पुण्य का बंध ही होता है, जबकि समझनेवाले को ज्ञानलाभ प्राप्त होता है॥ १४४९॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१२९

आत्मार्थी पुरुषो !

आत्मार्थी पुरुषो ! आत्मा का कल्याण चाहनेवाले सत्पुरुषों !! तुम निरन्तर ज्ञान के धन पिण्ड, आनन्द के रसकन्द इस भगवान आत्मा की ही उपासना करो, आराधना करो; चाहे साध्यभाव से करो, चाहे साधकभाव से करो, पर एक निज भगवान आत्मा की ही उपासना करो।

— समयसार अनुशीलन भाग-१, पृष्ठ-१८६

उत्तमआकिंचन्य

१. स्व-अस्ति ब्रह्मचर्य है और पर की नास्ति आकिंचन्य॥ १४५०॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३५

२. यदि स्वलीनता ब्रह्मचर्य है तो पर में एकत्वबुद्धि और लीनता का अभाव आकिंचन्य है॥ १४५१॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३५

३. आकिंचन्य सबसे बड़ा धर्म है॥ १४५२॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३९

४. आकिंचन्य का विरोधी परिग्रह है॥ १४५३॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३६

५. अपरिग्रह का उत्कृष्टरूप नग्न दिगम्बरदशा है॥ १४५४॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५२

६. निर्ग्रन्थता अर्थात् आकिंचन्य धर्म के लिये आभ्यन्तर और बाह्य दोनों प्रकार के परिग्रह का अभाव (त्याग) आवश्यक है॥ १४५५॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१३६

७. धन-धान्यादि बाह्य परिग्रहों को ही परिग्रह मानें तो फिर पशुओं को अपरिग्रही मानना होगा; क्योंकि उनके पास बाह्य परिग्रह देखने में नहीं आता॥ १४५६॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१४३

८. जबतक परपदार्थों के ग्रहण या संग्रह का भाव न हो तो मात्र पर पदार्थों की उपस्थिति से परिग्रह नहीं होता॥ १४५७॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१४४

९. समस्त बाह्य परिग्रह जोड़ने के मूल में बाह्य वस्तुओं के प्रति राग ही कार्य करता है ॥ १४५८ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-८७

१०. परपदार्थ के छूटने से कोई अपरिग्रही नहीं होता; बल्कि उसके रखने का भाव, उसके प्रति एकत्वबुद्धि या ममत्वपरिणाम छोड़ने से परिग्रह छूटता है ॥ १४५९ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१४५

११. मिथ्यात्वरूपी जड़ को काट देने पर बाकी के परिग्रह समय पाकर स्वतः छूटने लगेंगे ॥ १४६० ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१४६

१२. अंतरंग परिग्रह के त्याग के साथ-साथ बहिरंग परिग्रह का त्याग भी नियम से होता है ॥ १४६१ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१४९

१३. जिसके भूमिकानुसार बाह्य परिग्रह का त्याग नहीं है,उसके अंतरंग परिग्रह के त्याग की बात भी कोरी कल्पना है ॥ १४६२ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१४९

१४. यद्यपि बाह्य विभूति और उसे रखने का भाव जैनत्व में बाधक नहीं, तथापि रंचमात्र भी परिग्रह रखनेवाले को मुक्ति प्राप्त नहीं होती ॥ १४६३ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५१

१५. बाह्य विभूतिरूप परिग्रह का कारण पुण्योदय है, पर है वह पाप स्वरूप ही ॥ १४६४ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५३

१६. अपरिग्रह का अन्तिम उद्देश्य भोगसामग्री और भोग के भाव का भी पूर्णतः त्याग है ॥ १४६५ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५२

१७. समाजवादी दृष्टिकोण पूर्णतः आर्थिक है, जबकि अपरिग्रह की दृष्टि पूर्णतः आध्यात्मिक है ॥ १४६६ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५२

४३

उत्तम ब्रह्मचर्य

१. ब्रह्म अर्थात् निज शुद्धात्मा में चरना, रमना ही ब्रह्मचर्य है ॥ १४६७ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५५

२. आत्मलीनतापूर्वक पंचेन्द्रिय के विषयों का त्याग ही वास्तविक ब्रह्मचर्य है ॥ १४६८ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५८

३. ब्रह्मचर्य अर्थात् आत्मरमणता साक्षात् धर्म है, सर्वोत्कृष्ट धर्म है ॥ १४६९ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१७१

४. निश्चय से ज्ञानानंदस्वभावी निजात्मा को ही निज मानना, जानना और उसी में जम जाना, रम जाना, लीन हो जाना ही वास्तविक ब्रह्मचर्य है ॥ १४७० ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५६

५. आत्मलीनता अर्थात् सम्यक्चारित्र, आत्मज्ञान एवं आत्मश्रद्धान पूर्वक ही होता है ॥ १४७१ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५५

६. ब्रह्मचर्य आत्मा का धर्म है। अत: उसका सीधा सम्बन्ध आत्महित से है ॥ १४७२ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६७

७. ब्रह्मचर्य तो एकदम अंतर की चीज है, व्यक्तिगत चीज है ॥ १४७३ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६९

८. आज मात्र स्पर्शन इन्द्रिय के विषय-सेवन के त्यागरूप व्यवहार ब्रह्मचर्य को ही ब्रह्मचर्य माना जाता है ॥ १४७४ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५६

९. यदि आत्मलीनता का नाम ब्रह्मचर्य है तो क्या स्पर्शन इन्द्रिय के विषय ही आत्मलीनता में बाधक हैं, अन्य चार इन्द्रियों के विषय क्या आत्मलीनता में बाधक नहीं हैं॥ १४७५॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५६

१०. मात्र क्रियाविशेष (मैथुन) के अभाव को ही ब्रह्मचर्य मानें तो फिर पृथ्वी, जलकायादि जीवों को भी ब्रह्मचारी मानना होगा; क्योंकि उनके मैथुनक्रिया देखने में ही नहीं आती॥ १४७६॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५९

११. स्त्रीसेवन के त्याग के पहले आत्मा का अनुभवरूप ब्रह्मचर्य होता है॥ १४७७॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६९

१२. स्पर्शन इन्द्रिय को जीत लेने पर सभी इन्द्रियाँ जीत ली जाती हैं, पर रसना के जीतने पर स्पर्शन इन्द्रिय जीत ली गई, ऐसा नहीं माना जा सकता॥ १४७८॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५९

१३. पंचेन्द्रिय के ज्ञेय एवं भोग दोनों प्रकार के विषयों के त्यागपूर्वक आत्मलीनता ही वास्तविक अर्थात् निश्चय ब्रह्मचर्य है॥ १४७९॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६५

१४. इन्द्रियों के दोनों प्रकार के विषयों में उलझना, उलझना ही है, सुलझना नहीं; सुलझने का उपाय तो एक आत्मलीनतारूप ब्रह्मचर्य ही है॥ १४८०॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६४

१५. इन्द्रियों के द्वारा परपदार्थों को भोगना तो ब्रह्मचर्य का घातक है ही, इनके माध्यम से बाहर का जानना-देखना भी ब्रह्मचर्य में बाधक ही है॥ १४८१॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६४

१६. इन्द्रिय भोगों के समान ही इन्द्रिय ज्ञान भी ब्रह्मचर्य में साधक नहीं, बाधक ही है॥ १४८२॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६३

१७. इन्द्रियों के विषय चाहे वे भोग्यपदार्थ हों, चाहे ज्ञेय पदार्थ ब्रह्मचर्य के विरोधी ही हैं ॥ १४८३ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६४

१८. पंचेन्द्रिय के विषयों से प्रवृत्ति की निवृत्ति यदि नास्ति से ब्रह्मचर्य है तो आत्मलीनता अस्ति से ॥ १४८४ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५७

इतना किए बिना काम नहीं चलेगा

यदि हम चाहते हैं कि शराब लोगों के माथे में न भन्नाये तो हमें इन्तजाम करना होगा कि वह लोगों के पेट में न जाये; यदि हम चाहते हैं कि शराब लोगों के पेट में न जाये तो हमें इन्तजाम करना होगा कि वह मार्केट में न आये; यदि हम चाहते हैं कि वह मार्केट में न आये तो हमें इन्तजाम करना होगा कि वह बने ही नहीं। भाई ! इतना किए बिना काम नहीं चलेगा।

इसीप्रकार यदि हम चाहते हैं कि हमारे जीवन में हिंसा प्रस्फुटित ही न हो तो हमें उसे आत्मा के स्तर पर, मन के स्तर पर ही रोकना होगा; क्योंकि यदि आत्मा या मन के स्तर पर हिंसा उत्पन्न हो गई तो वह वाणी और काया के स्तर पर भी प्रस्फुटित होगी ही।

यही कारण है कि भगवान महावीर बात की तह में जाकर बात करते हैं और कहते हैं कि यदि हिंसा को रोकना है तो उसे आत्मा और मन के स्तर पर ही रोकना होगा। जबतक लोगों के दिल साफ़ नहीं होंगे, जबतक लोगों की आत्मा में निर्मलता नहीं होगी; तबतक हिंसा के अविरल-प्रवाह को रोकना संभव न होगा।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-२६१-२६२

बारह भावना

१. अनुप्रेक्षा अर्थात् चिन्तन, बार-बार चिन्तन॥ १४८५॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-११

२. किसी विषय की गहराई में जाने के लिए उसके स्वरूप का बार-बार विचार करना ही चिन्तन है॥ १४८६॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-११

३. चिन्तन किसी विषय को समझने के लिए भी होता है और समझे हुए विषय का भी॥ १४८७॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२

४. आरम्भ की छह भावनाएँ वैराग्योत्पादक और अन्त की छह भावनाएँ तत्त्वपरक हैं॥ १४८८॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१३

५. वैराग्योत्पादक चिन्तन से भावभूमि के सरल हो जाने पर, तरल हो जाने पर, उसमें बोया हुआ तत्त्वचिन्तन का बीज निरर्थक नहीं जाता, उगता है, बढ़ता है, फलता भी है और अन्त में पूर्णता को भी प्राप्त होता है॥ १४८९॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१५

६. बारह भावनाओं के क्रम में भेदविज्ञान का क्रमिक विकास भी दृष्टिगोचर होता है॥ १४९०॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१५

७. बारह भावनाओं का चिन्तन आत्मार्थी समाज का सर्वाधिक प्रिय मानसिक दैनिक भोजन है॥ १४९१॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१८

८. बारह भावनाओं के चिन्तन का सच्चा फल तो वीतरागता है ॥ १४९२ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१८

९. बारह भावनाओं के चिन्तन का एकमात्र उद्देश्य दृष्टि को संयोगों पर से हटाकर स्वभाव की ओर ले जाना है; क्योंकि संयोगीभावरूप संसार की उत्पत्ति-वृद्धि संयोगाधीन दृष्टि का ही परिणाम है ॥ १४९३ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५४

१०. बारह भावनाओं के चिन्तन की एक आवश्यक शर्त यह है कि उसके चिन्तन से आनन्द की जागृति होनी चाहिए ॥ १४९४ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६७

११. बारह भावनाओं के चिन्तन का मूल प्रयोजन पर और विकार से भिन्न निज भगवान आत्मा में ही रमणता की तीव्र रुचि उत्पन्न करना है, तत्संबंधी पुरुषार्थ को विशेष जागृत करना है ॥ १४९५ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१०२

१२. उत्तमक्षमादिरूप अथवा सम्यग्दर्शनादिरूप अहिंसक वीतराग परिणति ही निज भगवान आत्मा की सच्ची आराधना है, मुक्तिरूपी साध्य को सिद्ध करनेवाली सम्यक् साधना है, अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द की जननी एवं संसार-सागर के पार उतारनेवाली भव्यभावना है ॥ १४९६ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ १७०

१३. बारह भावनाएँ जीवन में एक बार पढ़ लेने की वस्तु नहीं, प्रतिदिन पढ़ने, विचारने, चिन्तन करने, मनन करने की अलौकिक भावनायें हैं ॥ १४९७ ॥ — बा.भा. एक अनुशीलन, पृष्ठ-२

१४. वैराग्यवर्धक बारह भावनाएँ मुक्तिपथ का पाथेय तो हैं हीं, लौकिक जीवन में भी अत्यन्त उपयोगी हैं ॥ १४९८ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२

१५. इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोगों से उत्पन्न उद्वेगों को शान्त करनेवाली - ये बारह भावनाएँ व्यक्ति को विपत्तियों में धैर्य एवं सम्पत्तियों में विनम्रता प्रदान करती हैं ॥ १४९९ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२

१६. वैराग्योत्पादक तत्त्वपरक चिन्तन ही अनुप्रेक्षा है ॥ १५०० ॥
— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२

१७. आवश्यकता मात्र चिन्तन की नहीं, वैराग्योत्पादक चिन्तन की है, तत्त्वपरक चिन्तन की है ॥ १५०१ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२

१८. विषय-कषाय की पूर्ति के लक्ष्य से किया गया चिन्तन अनुप्रेक्षा नहीं, चिन्ता है, जो चिता से भी अधिक दाहक होती है ॥ १५०२ ॥
— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१३

१९. अनुप्रेक्षा चिन्तनस्वरूप होने से ज्ञानात्मक है, ध्यानात्मक नहीं ॥ १५०३ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२

२०. चिन्तन की धारा का नियमन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है ॥ १५०४ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१३

२१. यद्यपि चिन्तन वस्तुस्वरूप के निर्णय के लिए किया जाता है, तथापि यदि विषय रुचिकर हो तो निर्णीत विषय भी बार-बार चिन्तन का आधार बनता है ॥ १५०५ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-११

२२. निजतत्त्व को पहिचानना ही भावना का सार है ॥ १५०६ ॥
— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१४९

अद्भुत चिन्तन प्रक्रिया

पुत्र-परिवार, कंचन-कामिनी एवं देह में रत जगत को इन संयोगों की क्षणभंगुरता, अशरणता, असारता आदि के परिज्ञान की हेतुभूत बारह भावनाओं की चिन्तनप्रक्रिया अपने आप में अद्भुत है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-१०७

अनित्यभावना

१. पर्यायों की अस्थिरता — क्षणभंगुरता का वैराग्यपरक चिन्तन ही अनित्यभावना का मुख्य अभीष्ट है॥ १५०७॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२२

२. अनित्यभावना में संयोगों व पर्यायों की अनित्यता-क्षणभंगुरता का चिन्तन किया जाता है॥ १५०८॥ — बा.भा.अनुशीलन, पृष्ठ-२३

३. अज्ञानजन्य व्याकुलता दूर करने के साथ-साथ राग-द्वेषजन्य व्याकुलता दूर करने के लिए भी संयोगों और पर्यायों की अस्थिरता — क्षणभंगुरता का चिन्तन निरन्तर आवश्यक है॥ १५०९॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२४

४. अनित्यादि भावनाओं का चिन्तन ज्ञानी-अज्ञानी, संयमी-असंयमियों सभी को उपयोगी है, आवश्यक है, सुखकर है, शान्तिदायक है, परम अमृत है॥ १५१०॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२४

५. अनित्यभावना में जहाँ एक ओर पर्यायों की अनित्यता की चर्चा की जाती है तो दूसरी ओर द्रव्यस्वभाव की नित्यता का ज्ञान भी कराया जाता है॥ १५११॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२६

६. अनित्यभावना की चिन्तन प्रक्रिया का मूल प्रयोजन इष्ट-अनिष्ट पर्यायों के संयोग-वियोग में हर्ष-विषाद न करके समताभाव धारण करने के लिए दृष्टि को पर और पर्यायों पर से हटाकर द्रव्यस्वभाव पर केन्द्रित करना है॥ १५१२॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२७

७. अनित्यता आत्मवस्तु का पर्यायगत स्वभाव है, तो वह दु:खकर कैसे हो सकती है ॥ १५१३ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२८

८. संयोगों और विकारों की क्षणभंगुरता सहज ही वैराग्योत्पादक एवं वीतरागता की पोषक होती है ॥ १५१४ ॥

— प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२१२

९. मृत्यु एक अनिवार्य तथ्य है, उसे किसी भी प्रकार टाला नहीं जा सकता ॥ १५१५ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२५

१०. भोर की स्वर्णिम छटासम क्षणिक सब संयोग हैं ॥ १५१६ ॥

— बा.भा.अनुशीलन, पृष्ठ-२०

११. पद्मपत्रों पर पड़े जलबिन्दुसम सब भोग हैं ॥ १५१७ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२०

आँसू स्त्रियों के लिए वरदान हैं

भावों के सम्प्रेषण में आँसुओं जैसी सशक्त भाषा न आज तक विकसित हो सकी है, न कभी होगी। आँसू स्त्रियों की सबसे प्रबल भाषा और सबसे बड़ा हथियार है; विशेषकर पति को परास्त करने के लिए। आज तक जो कार्य बड़ों-बड़ों से न हुआ, वह स्त्रियों के आँसुओं ने कर दिखाया है। पुरुषों को परास्त करने, झुकाने, अपनी बात मनवाने में जितने सफल आँसू रहे हैं, उतना और कोई नहीं।

आँसू स्त्रियों के लिए वरदान हैं। उनके आने से, निकल जाने से लाभ ही होता है; स्वयं का दिल हलका हो जाता है और पति का भारी। उनके द्वारा पत्नी अपनी चिन्ता पति को ट्रांसफर कर देती है।

आँसू आखिर आँखों का पानी है। आँखों का आना, जाना, लगना, खुलना सभी एक क्रान्ति लाते हैं जीवन में। पानीदार व्यक्ति अपनी पत्नी की आँखों का पानी गिरते कैसे देख सकता है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-१०

अशरणभावना

१. निरर्थक विकल्प तरंगों के शमन के लिए ही अशरणभावना का चिन्तन किया जाता है॥ १५१८॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३४

२. यथासमय स्वयं विघटित होनेवाले संयोगों एवं पर्यायों की सुरक्षा सम्भव नहीं है, उनका विघटन अनिवार्य है; क्योंकि उनकी यह सहज परिणति ही है॥ १५१९॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३४

३. संयोगी पदार्थों में शरीर एक ऐसा संयोगी पदार्थ है, जिसकी सुरक्षा सम्बन्धी विकल्प तरंगें चित्त को सर्वाधिक आन्दोलित करती हैं॥ १५२०॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३४

४. देह का वियोग ही मरण है, वह अनिवार्य है; क्योंकि कोई शरण नहीं है॥ १५२१॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३५

५. अशरणभावना में संयोगों और पर्यायों की क्षणभंगुरता का, अशरणता का गहराई से बोध कराया जाता है॥ १५२२॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३७

६. अनित्यता के समान अशरणता भी वस्तु का स्वभाव है॥ १५२३॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३७

७. वस्तु की इस स्वभावगत विशेषता का चित्रण एवं पर्यायों के स्वतंत्र क्रमनियमित परिणमन का चिन्तन ही अशरण भावना का मूल है॥ १५२४॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३९

८. अशरणभावना पूर्णतः अशरणस्वरूप ही है, शरण और अशरण के मिश्रण रूप नहीं॥ १५२५॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४१

९. अशरणभावना का मूल प्रयोजन संयोगों और पर्यायों की अशरणता का ज्ञान कराकर दृष्टि को वहाँ से हटाकर स्वभावसन्मुख ले जाना है॥ १५२६॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४१

१०. यदि शान्ति और आनंद की चाह है तो आनन्द के धाम और शान्ति के सागर आत्मस्वरूप में समा जाओ, वही परमशरण है॥ १५२७॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४३

११. आत्मस्वभाव की आराधनारूप धर्म भी शरण है, उसके प्रतिपादक देव-गुरु-शास्त्र भी शरण हैं॥ १५२८॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४३

१२. अशरण का अर्थ है—असहाय। जिसे पर की सहायता की, शरण की आवश्यकता नहीं; वही असहाय है, अशरण है॥ १५२९॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३७

१३. अशरण अहस्तक्षेप का सूचक है॥ १५३०॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३८

१४. पर की शरण की आवश्यकता परतन्त्रता की सूचक है॥ १५३१॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३७

१५. निमित्तों की अकिंचित्करता का सशक्त दिग्दर्शन ही अशरण भावना का आधार है॥ १५३२॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३९

१६. संयोग सब अशरण शरण कोई नहीं संसार में॥ १५३३॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३२

संसारभावना

१. ध्रुवधाम आत्मा से विमुख पर्याय ही वस्तुतः संसार है ॥ १५३४ ॥
— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२१

२. संयोगों पर से दृष्टि हटा लेने में ही सार है, शेष सब संसार है ॥ १५३५ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४८

३. आत्मा में उत्पन्न होनेवाले मोह-राग-द्वेष के भाव ही संसार हैं ॥ १५३६ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५२

४. संसार बिन्दु है तो लोक सिन्धु ॥ १५३७ ॥
— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५२

५. लोक मात्र ज्ञेय है, पर संसार हेय भी है ॥ १५३८ ॥
— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५३

६. षट्द्रव्यमयी लोक को मात्र जानना है, पर संसार का तो अभाव भी करना है ॥ १५३९ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५३

७. जिनागम का समस्त उपदेश भव (संसार) के अभाव के लिए ही है ॥ १५४० ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५३

८. संसारभावना की सीमा संयोग और संयोगी भावों तक ही है ॥ १५४१ ॥
— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५३

९. अनित्यभावना में संयोगों की क्षणभंगुरता, अशरणभावना में संयोगों की अशरणता एवं संसारभावना में उन्हीं संयोगों की निरर्थकता बताई जाती है ॥ १५४२ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५४

१०. संसारभावना में भी संयोगों की असारता के साथ-साथ स्वभाव की सारभूतता का भी भरपूर चिन्तन किया जाता है ॥ १५४३ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५४

११. संयोगों के लक्ष्य से उत्पन्न होनेवाली दु:खमय, निरर्थक, मलिन और सम्पूर्णत: निस्सार चिद्वृत्तियाँ (विकारी भाव) ही वास्तविक संसार है ॥ १५४४ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-४५

१२. दु:ख का ही दूसरा नाम संसार है ॥ १५४५ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५७

१३. संयोगाधीन दृष्टि ही संसार का कारण है ॥ १५४६ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५४

१४. संयोगों की आराधना-चाह, महिमा ही संसार का कारण है, आधार है और निज एकत्व की आराधना ही आराधना का सार है ॥ १५४७ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५९

१५. संयोगों की निरर्थकता और संयोगीभावों की दु:खरूपता का चिन्तन ही संसारभावना की मर्यादा है ॥ १५४८ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५३

१६. संयोग से इंकार करना भूल है और साथ मानना भी भूल है ॥ १५४९ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६३

१७. संयोग हैं सर्वत्र पर साथी नहीं संसार में ॥ १५५० ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५९

१८. संयोग की आराधना संसार का आधार है ॥ १५५१ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५९

४८

एकत्वभावना

१. एकत्वभावना का सार तो एकत्व को पहिचानने में ही है और एकत्व की आराधना ही आराधना का सार है ॥ १५५२ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५९

२. जीवन-मरण, सुख-दु:ख आदि प्रत्येक स्थिति को जीव अकेला ही भोगता है, किसी भी स्थिति में किसी का साथ सम्भव नहीं है ॥ १५५३ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६१

३. संसार में कहने के साथी तो बहुत मिल जायेंगे, पर सगा साथी कोई नहीं होता; क्योंकि वस्तुस्थिति के अनुसार कोई किसी का साथ दे ही नहीं सकता ॥ १५५४ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६१

४. भले ही क्षणभंगुर सही, अशरण सही, निरर्थक सही; पर संयोग है तो सही; किन्तु साथी तो जगत में कोई है ही नहीं ॥ १५५५ ॥

—बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६२

५. संयोग तो मात्र संयोग है, पर साथ में सहयोग अपेक्षित है ॥ १५५६ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६२

६. संयोग में सहयोग शामिल करने पर साथ होता है ॥ १५५७ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६२

७. भीड़ तो मात्र संयोग की सूचक है, साथ की नहीं ॥ १५५८ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६३

८. जगत में संयोग है, पर साथ नहीं॥ १५५९॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६३

९. साथ से इन्कार का नाम ही अकेलेपन (एकत्व) की स्वीकृति है॥ १५६०॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६३

१०. एकत्व भावना का मूल प्रतिपाद्य अकेलापन (एकत्व) है॥ १५६१॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६३

११. एकत्व आत्मा का ऐसा स्वभाव है, जो अनादिकाल से प्रतिसमय उसके साथ है और अनन्तकाल तक रहेगा॥ १५६२॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६४

१२. निज में एकत्व और पर से अन्यत्व वस्तु की स्वभावगत विशेषताएँ हैं, इनके बिना वस्तु का अस्तित्त्व भी सम्भव नहीं हैं॥ १५६३॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-७५

१३. अकेले ही मरना होगा, अकेले ही पैदा होना होगा, सुख-दु:ख भी अकेले ही भोगना होगा; इसप्रकार के चिन्तन से यदि खेद उत्पन्न होता है तो हमें अपनी चिन्तन-प्रक्रिया पर गहराई से विचार करना चाहिए॥ १५६४॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६७

१४. वस्तुस्वरूप के अनुसार जब कोई साथ दे ही नहीं सकता है, तब साथ नहीं देता— यह प्रश्न ही कहाँ रह जाता है?॥ १५६५॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६७

१५. एकत्व ही शिव है, कल्याणकारी है; साथ की कल्पना अशिव है, दु:ख का मूल है। एकत्व ही सुन्दर है, साथ की कल्पना मात्र कल्पनारम्य ही है॥ १५६६॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६८

१६. साथ न सत्य है, न असत्य है, न शिव है, न अशिव है, न सुन्दर है, न असुन्दर है; क्योंकि जब वह है ही नहीं, तब फिर क्या है, कैसा है? आदि प्रश्न ही असम्भव हैं॥ १५६७॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६८

१७. साथ खोजने के प्रयास न तो आजतक किसी के सफल हुए हैं और न कभी होंगे॥ १५६८॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६९

१८. पर के साथ के अभिलाषी प्राणियों! तुम्हारा सच्चा साथी आत्मा का अखण्ड एकत्व ही है, अन्य नहीं॥ १५६९॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-७१

१९. एकत्व ही सत्य है, शिव है, सुन्दर है॥ १५७०॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६८

२०. एकत्व वस्तु का त्रैकालिक स्वभाव है और तत्संबंधी चिन्तन, मनन, घोलन एवं तद्रूप परिणमन एकत्वभावना है॥ १५७१॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६५

२१. आत्मा का अकेलापन अभिशाप नहीं, वरदान है॥ १५७२॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६९

२२. महानता तो एकत्व में ही है, अकेलेपन में ही है॥ १५७३॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६९

२३. एकत्व की प्रतीति में स्वाधीनता का स्वाभिमान जागृत होता है॥ १५७४॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६५

२४. एकत्व (अकेलापन) आत्मा की मजबूरी नहीं, सहज स्वरूप है॥ १५७५॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६४

२५. एकत्व वस्तु की अखण्डता का सूचक है, कण-कण की स्वतंत्र सत्ता का सूचक है॥ १५७६॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६५

२६. एकत्व ही सनातन सत्य है, साथ की कल्पना मात्र कल्पना ही है॥ १५७७॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६८

४९

अन्यत्वभावना

१. पर से भिन्न निज में समा जाना ही वास्तविक अन्यत्वभावना है ॥ १५७८ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-७८

२. अन्यत्वभावना में मूलभूत प्रयोजन पर से अन्यत्व है, एकत्व नहीं ॥ १५७९ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-७८

३. अन्यत्वभावना में यह समझाते हैं कि परमार्थ से विचार करें तो आत्मा शरीरादि सर्व संयोगों से अत्यन्त भिन्न ही है ॥ १५८० ॥

— ब. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-७४

४. देह और आत्मा की पारमार्थिक भिन्नता के साथ-साथ व्यावहारिक एकता का ज्ञान भी आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है ॥ १५८१ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-७८

५. पारमार्थिक भिन्नता तो भिन्नता जानने के लिए है ही, व्यावहारिक एकता का स्वरूप जानना भी पारमार्थिक भिन्नता के लिए ही है ॥ १५८२ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-७८

६. व्यावहारिक एकता को तो प्रयोजनपुरत: मात्र जान लेना है, वहाँ जमना नहीं है, रमना नहीं है; पर पारमार्थिक भिन्नता को तो जानना भी है, मानना भी है और पर से भिन्न निज में जमना भी है, रमना भी है, निज में ही समा जाना है ॥ १५८३ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-७८

७. यदि अन्तर की रुचि जागृत रही, विवेक कुण्ठित न हुआ, तो एक न एक दिन पर में एकत्व के, ममत्व के बादल विघटित होंगे ही, राग के तन्तु भी टूटेंगे॥ १५८४॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-८४

८. जीव और शरीर की एकता वास्तविक एकता नहीं, मात्र मिलावट है, मेला है॥ १५८५॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-७८

९. मेले में एकता खोजना मेले का मेलापन खो देना है॥ १५८६॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-७९

१०. जीव और शरीर का मेला तो मेला ही है उनमें एकता खोजना दोनों के स्वरूप को खण्डित कर देना है॥ १५८७॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-७९

एकमात्र यही उपाय है

आचार्य भगवन्तों का मात्र यही आदेश है, यही उपदेश है, यही सन्देश है कि सम्पूर्ण जगत से दृष्टि हटाकर एकमात्र अपने आत्मा की साधना करो, आराधना करो; उसे ही जानो, पहिचानो; उसी में जम जावो, उसमें ही रम जावो, उसमें ही समा जावो, इससे ही अतीन्द्रियानन्द की प्राप्ति होगी-परमसुखी होने का एकमात्र यही उपाय है।

पर को छोड़ने के लिए, पर से छूटने के लिए इससे भिन्न कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि पर तो छूटे हुए ही है। वे तेरे कभी हुए ही नहीं हैं; तूने ही उन्हें अज्ञानवश अपना मान रखा था, अपना जान रखा था, और उनसे राग कर व्यर्थ ही दु:खी हो रहा था। तू अपने में मगन हुआ तो वे छूटे हुए ही हैं।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-१२१

५०

अशुचिभावना

१. देह की स्थिति तो ऐसी है कि पवित्र से भी पवित्र जो वस्तु इस मलिन देह के संयोग में एक क्षण को भी आवेगी, वह भी मलिन हो जावेगी, मल-मूत्रमय हो जावेगी, दुर्गन्धमय हो जावेगी ॥ १५८८ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-८६

२. देह यदि अपवित्र है तो रहने दे इसे अपवित्र, तुझे इससे क्या लेना-देना? तू तो इससे अत्यन्त भिन्न परम पवित्र भगवान आत्मा है ॥ १५८९ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-८९

३. अशुचिभावना में देह सम्बन्धी अशुचिता का चिन्तन किया जाता है, तथापि इसके चिन्तन की सीमा देह की अशुचिता तक ही सीमित नहीं है, अपितु इसमें आत्मा की पवित्रता का चिन्तन एवं रमणता भी समाहित हो जाती है ॥ १५९० ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-८९

४. अशुचिभावना के चिन्तन का प्रयोजन स्व पर देह एवं तत्सम्बन्धी भोगों से विरक्ति उत्पन्न करना होता है ॥ १५९१ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-९१

५. स्वभाव से ही अशुचि देह के ममत्व एवं अनुराग में ही यह दुर्लभ नरभव गमा देना उचित नहीं है, बुद्धिमानी का काम नहीं है ॥ १५९२ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-९२

६. स्व और पर शरीर की अशुचिता का विचार ही अशुचिभावना में किया जाता है ॥ १५९३ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-९३

आस्रवभावना

१. आस्रवभावना में विभाव की विपरीतता का चिन्तन मुख्य होता है॥ १५९४॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१०२

२. अनित्यादि छह भावनाओं के चिन्तन की विषय-वस्तु शरीरादि संयोग हैं और आस्रवभावना के चिन्तन की विषय वस्तु संयोगीभाव हैं॥ १५९५॥

— बारह भावना : एक अनुशीलन, पृष्ठ-१०३

३. पर संयोग से या पर के लक्ष्य से आत्मा में उत्पन्न होनेवाले मोह-राग-द्वेषरूप आस्रवभाव ही संयोगीभाव हैं, विभाव हैं और वे आत्मस्वभाव से विपरीत हैं॥ १५९६॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१०३

४. आस्रवभावना के चिंतन का उद्देश्य आस्रवों का निरोध है, आस्रव भाव का अभाव करना है, उन्हें जड़मूल से उखाड़ फेंकना है॥ १५९७॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१०४

५. आस्रवभावना में आस्रवों के भेद-प्रभेदों के विस्तार में जाने की अपेक्षा आस्रवों के हेयत्व का चिन्तन अधिक आवश्यक है, अधिक उपयोगी है और आस्रवों से भिन्न भगवान आत्मा के उपादेयत्व का चिंतन उससे भी अधिक आवश्यक है, उससे भी अधिक उपयोगी है॥ १५९८॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१०५

६. आत्मस्वभाव के आश्रयपूर्वक शुभाशुभभावरूप आस्रवभावों से मुक्त होना ही आस्रवानुप्रेक्षा के चिन्तन का वास्तविक फल है॥ १५९९॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१०६

७. आस्रवभावना के चिंतन की सार्थकता आस्रवभावों को हेय जानकर, हेय मानकर त्याग देने में ही है॥ १६००॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१०६

८. आस्रवभावना में पुण्य-पाप और बंध संबंधी चिन्तन होना स्वाभाविक ही है॥ १६०१॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१०९

९. पुण्य-पाप और आस्रव-बंध परस्पर इसप्रकार अनुस्यूत हैं कि उनका संपूर्णतः पृथक्-पृथक् चिन्तन करना सहजसाध्य नहीं है॥ १६०२॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-११०

१०. आस्रवभावना में द्रव्यास्रव की अपेक्षा भावास्रव के चिन्तन की प्रधानता रहती है॥ १६०३॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१११

११. पुण्य-पापरूप मोह-राग-द्वेष भावों से भगवान आत्मा की भिन्नता की सम्यक् जानकारी बिना अनादिकालीन अज्ञान दूर नहीं होता और कर्मों का आस्रव भी नहीं रुकता॥ १६०४॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१११

१२. आस्रवभावना स्वयं संवररूप होने से आस्रवभावों की निरोधक और वीतरागभावों की उत्पादक है॥ १६०५॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-११२

१३. अनित्य, अशरण और अशुचि जड़ शरीर तो पर है ही, किन्तु अपनी ही आत्मा में उत्पन्न मोह-राग-द्वेषरूप अशुचि आस्रवभाव भी पर ही हैं॥ १६०६॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२२

१४. शुभ से शुभ आस्रव के प्रति मोह (उपादेयबुद्धि) मिथ्यात्व नामक अशुभतम आस्रव है॥ १६०७॥ — बा.भा.अनुशीलन, पृष्ठ-१०४

संवरभावना

१. संवर आस्रव का प्रतिद्वन्द्वी है, निषेधक है, उसका अभाव करके उत्पन्न होनेवाला पराक्रमी सज्जनोत्तम योद्धा है, अनन्त आनन्ददायक है, वन्दनीय है, अभिनन्दनीय है ॥ १६०८ ॥

— बा: भा. अनुशीलन, पृष्ठ-११७

२. आत्मानुभव या आत्मानुभव की भावना ही वास्तविक संवरभावना है ॥ १६०९ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२०

३. आत्मानुभव भेदविज्ञानपूर्वक होता है; अत: आत्मानुभव के साथ भेदविज्ञान की भावना भी संवरभावना में भरपूर की जाती है और विशेषरूप से की जानी चाहिए॥ १६१० ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२०

४. धर्म का आरंभ संवर से ही होता है; क्योंकि मिथ्यात्व नामक महापाप का निरोधक, मिथ्याज्ञानांधकार का नाशक एवं अनन्तानुबन्धी कषाय का विनाशक संवर ही है ॥ १६११ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२१

५. संवरभावना में भेदविज्ञान और आत्मानुभूति की भावना ही प्रधान है ॥ १६१२ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२२

६. सम्पूर्ण जगत को स्व और पर में विभाजित करके पर से विमुख होकर स्वसन्मुख होना ही भेदविज्ञान है, आत्मानुभूति है, संवरभावना है, संवरभावना का फल है ॥ १६१३ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२३

७. धर्म का आरंभ संवर से ही होता है। संवर स्वयं प्रगट पर्यायरूप धर्म है॥ १६१४॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२३

८. भेदविज्ञान है मूल जिसका और आत्मानुभूति है सर्वस्व जिसका— ऐसी यह संवरभावना अतीन्द्रिय-आनन्द एवं परम वैराग्य की जननी है॥ १६१५॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२५

९. संवर मोक्ष का आरम्भ है और निर्जरा मोक्षमार्ग॥ १६१६॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१३६

इन्द्रियज्ञान भी ब्रह्मचर्य में .....

इन्द्रियों की वृत्ति बहिर्मुखी है; क्योंकि वे अपने को नहीं, पर को जानने-देखने में निमित्त हैं। सभी इन्द्रियों के दरवाजे बाहर को ही खुलते हैं, अन्दर को नहीं। आँख से आँख दिखाई नहीं देती, आँख के भीतर क्या है - यह भी दिखाई नहीं देता, पर बाहर क्या है- यह दिखाई देता है। इसीप्रकार रसना भी अन्दर का स्वाद नहीं लेती, वरन् बाहर से आने वाले पदार्थों को चखती है। घ्राण भी क्या भीतर की दुर्गंध सूंघ पाती है? जब वही दुर्गंध किसी रास्ते से निकलकर नाक में बाहर से टकराती है, तब नाक उसे ग्रहण कर पाती है। कान भी बाहर की ही सुनता है। स्पर्शन-इन्द्रिय भी मात्र बाहर की सर्दी-गर्मी आदि के प्रति सतर्क दिखाई देती है। - इसप्रकार पाँचों ही इन्द्रियाँ बहिर्मुखी वृत्तिवाली हैं।

बहिर्मुखी वृत्तिवाली एवं रूपरसादि की ग्राहक इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी वृत्ति का विषय एवं अरस, अरूपी आत्मा को जानने में सहायक कैसे हो सकती हैं? यही कारण है कि इन्द्रियभोगों के समान ही इन्द्रियज्ञान भी ब्रह्मचर्य में साधक नहीं, बाधक ही है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-१००

निर्जराभावना

१. आत्मज्ञानपूर्वक इच्छाओं का अभाव ही निर्जरा है और वही आनन्दमय है॥ १६१७॥ — वी.वि. पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-१६

२. आत्मज्ञान और आत्मध्यान के बिना होने वाली सविपाक या अकाम निर्जरा किसी भी काम की नहीं, नाममात्र की निर्जरा है, उसका मात्र नाम ही निर्जरा है, वह निर्जरातत्त्व या निर्जराभावना नहीं है॥ १६१८॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२७

३. शुद्धोपयोगरूप आत्मध्यान की निरन्तर वृद्धि ही भाव-निर्जरा है और द्रव्य-निर्जरा का मूल है॥ १६१९॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१३२

४. प्रतिसमय वृद्धिंगत व्यवहार की निर्बलता और परमार्थ की प्रबलता ही निर्जरा है, जो मुक्ति का साक्षात् कारण है॥ १६२०॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-७६

५. निज आत्मा के ध्यान बिन बस निर्जरा है नाम की॥ १६२१॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२७

लोकभावना

१. अपना आत्मा ही लोक है और अपना आत्मा ही सारभूत पदार्थ है। आनन्द को उत्पन्न करने वाली इस लोकभावना के चिन्तन का एकमात्र आधार निज भगवान आत्मा ही है॥ १६२२॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१३८

२. लोकभावना में छहद्रव्यों के समुदायरूप लोक की बात भी चिन्तन का विषय बनती है और लोक की भौगोलिक स्थिति भी॥ १६२३॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१४१

३. जगत को जानकर उससे दृष्टि हटाकर निज भगवान आत्मा में स्थिर हो जाना ही लोकभावना के चिन्तन का सुपरिणाम है॥ १६२४॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१४३

४. निजतत्त्व की तीव्रतम रुचि जागृत करने के लिए निजतत्त्व की मुख्यता से किया गया लोक का चिन्तन ही लोकभावना है॥ १६२५॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१४६

५. निश्चयलोक तो चैतन्यलोक ही है। उस चैतन्यलोक में रमन करना एवं रमन करने की उग्रतम भावना ही निश्चय लोकभावना है॥ १६२६॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१४७

६. लोकभावना के चिन्तन का असली उद्देश्य तो आत्माराधना की सफल प्रेरणा ही है॥ १६२७॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१४७

७. षट्द्रव्यरूपी लोक तो अपने परिणमन स्वभाव में पूर्ण व्यवस्थित है; अतः परिवर्तन लोक में नहीं, अपनी दृष्टि में करना है॥ १६२८॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३१

बोधिदुर्लभ भावना

१. बोधिदुर्लभभावना का सार निजतत्त्व को पहिचानना ही है ॥ १६२९ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१४९

२. अपने को जानना, पहिचानना एवं अपने में लीन हो जाना ही बोधि है, दर्शन-ज्ञान-चारित्र है ॥ १६३० ॥— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१५०

३. महादुर्लभ मानव जीवन को पाकर भी हमने बोधि की प्राप्ति नहीं की तो इसका पाना, न पाना बराबर ही समझना चाहिए ॥ १६३१ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१५४

४. सर्व उद्यम से महादुर्लभ बोधि की उपलब्धि में संलग्न हो जाना ही श्रेयस्कर है ॥ १६३२ ॥ — ब. भ. अनुशीलन, पृष्ठ-१५५

५. हमने अपने अज्ञान एवं अरुचि से उसे (आत्मा) दुर्लभ बना रखा है, वस्तुत: तो वह सहज सुलभ ही है ॥ १६३३ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१५५

६. जो अपनी वस्तु है वह तो सदा उपलब्ध ही है, उसकी प्राप्ति दुर्लभ कैसे हो सकती है ॥ १६३४ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१५९

७. बोधि की दुर्लभता और सुलभता-दोनों ही एक ही उद्देश्य की पूरक हैं और काल्पनिक भी नहीं, अपितु सत्य के आधार पर प्रतिष्ठित हैं ॥ १६३५ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१५७

८. बोधिलाभ स्वाधीन होने से सुलभ भी है और अनादिकालीन अनुपलब्धि एवं अनभ्यास के कारण दुर्लभ भी है॥ १६३६॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१५७

९. बोधिदुर्लभभावना में बोधि की दुर्लभता बताकर उनकी प्राप्ति के लिए सतर्क किया जाता है और सुलभता बताकर उसके प्रति अनुत्साह को निरुत्साहित किया जाता है॥ १६३७॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१५८

१०. बोधिदुर्लभभावना में संयोगों की सुलभता व दुर्लभता एवं बोधिलाभ की सुलभता व दुर्लभता चारों का ही चिन्तन किया जाता है॥ १६३८॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१५८

११. दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप बोधि ही इस जगत में दुर्लभ है॥ १६३९॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१५०

१२. बोधिदुर्लभ शब्द का अर्थ धर्म नहीं, धर्म की दुर्लभता है॥ १६४०॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१६९

१३. आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होने वाले निर्मल-परिणाम — शुद्धभाव ही वास्तविक धर्म है॥ १६४१॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१७२

१४. विश्वविख्यात समस्त दर्शनों में जैनदर्शन ही एक ऐसा दर्शन है जो निज भगवान आत्मा की आराधना को धर्म कहता है, स्वयं के दर्शन को सम्यग्दर्शन, स्वयं के ज्ञान को सम्यग्ज्ञान और स्वयं के ध्यान को सम्यक्चारित्र कहकर इन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को ही वास्तविक धर्म घोषित करता है॥ १६४२॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१७३

१५. पर्यायगत पामरता को समाप्त कर स्वभावगत प्रभुता को पर्याय में प्रगट करने का एकमात्र उपाय पर्याय में स्वभावगत प्रभुता की स्वीकृति ही है, अनुभूति ही है॥ १६४३॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१७३

५६

धर्मभावना

१. स्वभावगत प्रभुता की पर्याय में स्वीकृति एवं स्वभावसन्मुख होकर पर्याय की स्वभाव में स्थिरता ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, धर्मभावना है ॥ १६४४ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१७३

२. स्वस्वभाव के ज्ञान, श्रद्धान और ध्यान का नाम ही धर्म है, धर्म की साधना है, आराधना है, उपासना है, धर्म की भावना है, धर्मभावना है ॥ १६४५ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१७३

३. आध्यात्मिक जीवन का आधार एक शुद्धात्मा की साधना ही है और शुद्धात्मा की भावना ही धर्मभावना का या बारह भावनाओं का सार है ॥ १६४६ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१६१

४. धर्मभावना का क्षेत्र असीम है, क्योंकि उसमें एक प्रकार से सम्पूर्ण चरणानुयोग ही समाहित हो जाता है ॥ १६४७ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१६२

५. चिन्तामणि रत्न और कल्पवृक्ष दोनों ही अनन्तसुख-शान्ति देने वाले पावन धर्म की समानता नहीं कर सकते ॥ १६४८ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१६४

६. धर्मभावना में रत्नत्रय धर्म की अचिन्त्य महिमा बताकर जीवन को धर्ममय बना लेने की पावन प्रेरणा दी जाती है ॥ १६४९ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१६४

७. बिना माँगे अतीन्द्रियानन्द देने वाले धर्म की तुलना में माँगने पर भोग सामग्री देने वाले कल्पवृक्ष तुच्छ ही हैं ॥ १६५० ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१६५

८. ज्ञानानन्दस्वभावी निज भगवान शुद्धात्मा की आराधना ही वास्तविक धर्म है, निश्चयधर्म है; इसके बिना किया गया सर्व क्रियाकाण्ड निष्फल है, किंचित् मात्र भी कार्यकारी नहीं है ॥ १६५१ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१६६

९. निज भगवान आत्मा की आराधना ही वास्तविक धर्म है; क्योंकि निज भगवान आत्मा की आराधना का नाम ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है ॥ १६५२ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१६८

१०. आत्मदर्शन-ज्ञान-ध्यानरूप आत्मोपासना ही साक्षात्-मोक्ष का मार्ग है; अतः यही परमधर्म है ॥ १६५३ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१६९

११. परमधर्म की प्राप्ति के लिए बार-बार किया गया चिन्तन-मनन ही धर्मभावना है ॥ १६५४ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१६९

जैनभक्ति

जैनदर्शन में निःस्वार्थ भाव की भक्ति है। उसमें किसी भी प्रकार की कामना को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। जैनदर्शन के भगवान तो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी होते हैं। वे किसी को कुछ देते नहीं हैं, मात्र सुखी होने का मार्ग बता देते हैं। जो व्यक्ति उनके बताये मार्ग पर चले, वह स्वयं भगवान बन जाता है। अतः जिनेन्द्र भगवान की भक्ति उन जैसा बनने की भावना से ही की जाती है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-१९५

इन्द्रिय

१. इन्द्रियों की वृत्ति बहिर्मुखी है; क्योंकि वे अपने को नहीं, पर को जानने-देखने में निमित्त हैं॥ १६५५॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६३

२. इन्द्रियों की वृत्ति बहिर्मुखी है और आत्मा अन्तरोन्मुखी वृत्ति से पकड़ने में आता है॥ १६५६॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६२

३. इन्द्रियातीत-विकल्पातीत आत्मा को पकड़ने में जकड़ने में इन्द्रियाँ और मन अनुपयोगी ही नहीं, वरन् बाधक हैं, घातक हैं॥ १६५७॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६२

४. अतीन्द्रियज्ञान की प्राप्ति के लिए इन्द्रियज्ञान से भी विराम लेना होगा॥ १६५८॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-९०

५. इन्द्रियाँ रूपी पुद्गल को जानने में ही निमित्त हो सकती हैं, आत्मा को जानने में नहीं॥ १६५९॥

— बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-२९

६. आत्मानुभव एवं आत्मध्यानरूप संयम के लिए इन्द्रियों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है॥ १६६०॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-९६

७. इन्द्रियाँ रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द की ग्राहक होने से मात्र जड़ को जानने में ही निमित्त हैं, आत्मा को जानने में वे साक्षात् निमित्त भी नहीं हैं॥ १६६१॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८९

८. यद्यपि इन्द्रियसुख और इन्द्रियज्ञान में इन्द्रियाँ निमित्त होती हैं, तथापि इन्द्रियसुख सुख है ही नहीं॥ १६६२॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८९

९. इन्द्रियसुख हेय एवं अतिन्द्रियसुख उपादेय है; क्योंकि अतीन्द्रिय सुख ही पारमार्थिक सुख है॥ १६६३॥

— आ .कुंद. परमागम, पृष्ठ-५८

१०. इन्द्रियसुख की भाँति इन्द्रियज्ञान भी तुच्छ है। अतीन्द्रियसुख और अतीन्द्रियज्ञान ही उपादेय है॥ १६६४॥

— बालबोध पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-१९

११. इन्द्रियसुख तो सुखाभास है, नाम मात्र का सुख है॥ १६६५॥

— आ. कुन्द. परमागम, पृष्ठ-५८

१२. आत्मा किसी भी इन्द्रिय के विषय में क्यों न उलझा हो, उस समय आत्मलीनता संभव नहीं है॥ १६६६॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१५६

१३. अखण्ड पद को प्राप्त करने के लिये जिसमें पाँचों ही इन्द्रियाँ गर्भित हैं, ऐसी अखण्ड स्पर्शन-इन्द्रिय को जीतना होगा॥ १६६७॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६०

१४. स्पर्शन-इन्द्रिय क्षेत्र से तो अखण्ड है ही, काल से भी अखण्ड है॥ १६६८॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६१

१५. इन्द्रियज्ञान की प्रवृत्ति क्रमशः ही होती है, युगपत् नहीं॥ १६६९॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६४

१६. ज्ञान और आनन्द को इन्द्रियों की पराधीनता से मुक्त करना बहुत जरूरी है॥ १६७०॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८९

१७. इन्द्रियों के गुलामों को न दिन का विचार है न रात का, न भक्ष्य का विचार है न अभक्ष्य का॥ १६७१ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-९२

१८. इन्द्रियज्ञान को भी हेय मानने वाले आत्मार्थी का जीवन अमर्यादित इन्द्रिय भोगों में लगा रहे, यह संभव नहीं है॥ १६७२॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-९६

१९. चाहे इन्द्रिय का भोगपक्ष हो या ज्ञानपक्ष-दोनों में क्रम पड़ता है॥ १६७३॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१६४

किसी के लिए कुछ भी हो

'क्रमबद्धपर्याय' औरों के लिए एक सिद्धान्त हो सकती है, एकान्त हो सकती है, अनेकान्त हो सकती है, मजाक हो सकती है, राजनीति हो सकती है, पुरुषार्थप्रेरक या पुरुषार्थनाशक हो सकती है; अधिक क्या कहें किसी को कालकूट जहर भी हो सकती है। किसी के लिए कुछ भी हो — पर मेरे लिए वह जीवन है, अमृत है; क्योंकि मेरा वास्तविक जीवन, अमृतमय जीवन, आध्यात्मिक जीवन — इसके ज्ञान, इसकी पकड़ और इसकी आस्था से ही आरंभ हुआ है।

'क्रमबद्धपर्याय' की समझ मेरे जीवन में मात्र मोड़ लाने वाली ही नहीं; अपितु उसे आमूलचूल बदल देने वाली संजीवनी है। मेरी दृढ़ आस्था है कि जिसकी भी समझ में इसका सही स्वरूप आयेगा, यह तथ्य सही रूप में उजागर होगा; उसका जीवन भी आनन्दमय, अमृतमय हुए बिना नहीं रहेगा।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-१९८

वस्तु

१. वस्तु उसे कहते हैं, जो कभी मिटे नहीं, सदा सत् रूप से ही रहे ॥ १६७४ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-७९

२. कोई वस्तु कभी किसी में मिलती नहीं, मात्र मिली कही जाती है ॥ १६७५ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-७९

३. असत्य वस्तु में नहीं, उसे जानने वाले ज्ञान में, मानने वाली श्रद्धा में या कहने वाली वाणी में होता है ॥ १६७६ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७७

४. गलती सदा ज्ञान या वाणी में होती है, वस्तु में नहीं ॥ १६७७ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७७

५. वस्तु में असत्य की सत्ता ही नहीं है ॥ १६७८ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७८

६. ज्ञान का कार्य तो वस्तु जैसी है वैसी जानना है ॥ १६७९ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७८

७. वस्तु में अच्छे-बुरे का भेद करना राग-द्वेष का कार्य है ॥ १६८० ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७८

८. वस्तु का सत्यस्वरूप भी वाणी की अपेक्षा नहीं रखता और न वह ज्ञान की अपेक्षा रखता है ॥ १६८१ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८०

९. वस्तु को अपने ज्ञान और वाणी के अनुरूप नहीं बनाया जा सकता और बनाने की आवश्यकता भी नहीं है ॥ १६८२ ॥

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७८

१०. आवश्यकता अपने ज्ञान और वाणी को वस्तुस्वरूप के अनुकूल बनाने की है। जब ज्ञान और वाणी वस्तु के अनुरूप होंगे तब वे सत्य होंगे ॥ १६८३ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-७८

११. जो भी गड़बड़ी होती है, वह वस्तु में नहीं होती, मात्र मान्यता में होती है ॥ १६८४ ॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-२७

१२. अपनी सीमा में सर्वप्रभुतासम्पन्न किसी भी वस्तु को अन्य वस्तु का मानना-जानना महामोह है, महा-अज्ञान है, मिथ्यात्व नामक महापाप है ॥ १६८५ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-८२

१३. कोई भी वस्तु लोक में पर के प्रयोजन की नहीं है, पर प्रत्येक वस्तु अपने-अपने प्रयोजन से युक्त है ॥ १६८६ ॥

— बालबोध पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-२५

१४. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी भला-बुरा नहीं कर सकता-यह दिगम्बर धर्म का अपमान नहीं, सर्वोत्कृष्ट सम्मान है; क्योंकि वस्तुस्वरूप ही ऐसा है ॥ १६८७ ॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-११

१५. विश्व का प्रत्येक पदार्थ पूर्ण स्वतन्त्र एवं परिणमनशील है, वह अपने परिणमन का कर्ता-धर्ता स्वयं है, उसके परिणमन में पर का हस्तक्षेप रंचमात्र भी नहीं है ॥ १६८८ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२००

१६. एक द्रव्य में परिवर्तन का कारण कोई दूसरा द्रव्य नहीं है ॥ १६८९ ॥

— बालबोध पाठमाला भाग-३, पृष्ठ-२५

१७. किसी भी पदार्थ को अपने अस्तित्व को टिकाए रखने के लिए किसी अन्य के सहारे की आवश्यकता नहीं है ॥ १६९० ॥

— प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२८३

१८. विभिन्न द्रव्यों के बीच सर्व प्रकार के सम्बन्ध का निषेध ही वस्तुतः पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा है॥ १६९१॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२०२

१९. जैनदर्शन में वस्तु के जिस अनेकांतात्मक स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है, उसमें वस्तुस्वातन्त्र को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है॥ १६९२॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२००

२०. परमेश्वर (भगवान) भी वस्तु की सत्ता एवं परिणमन का कर्ता-धर्ता नहीं है॥ १६९३॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२००

२१. यह समस्त जगत परिवर्तनशील होकर भी नित्य है और नित्य होकर भी परिवर्तनशील॥ १६९४॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२०४

२२. नित्यता के समान अनित्यता भी वस्तु का स्वरूप है॥ १६९५॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२०४

२३. विश्व का कभी भी सर्वथा नाश नहीं होता, मात्र परिवर्तन होता है, वह परिवर्तन भी कभी-कभी नहीं, निरंतर हुआ करता है॥ १६९६॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२०४

२४. स्वभाव से प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र ही है, जहाँ होना है की चर्चा है वह पर्याय की चर्चा है॥ १६९७॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२००

२५. विकार और विकृतियाँ वस्तु नहीं हुआ करतीं॥ १६६९८॥ — गागर में सागर, पृष्ठ-९८

२६. ज्ञान, अज्ञान, अल्पज्ञान, पूर्णज्ञान, मिथ्याज्ञान की स्थितियों से वस्तु की स्थिति का कोई सम्बन्ध नहीं है। इनसे उसमें कोई फरक नहीं पड़ता॥ १६९९॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-८७

२७. वस्तु के सहज परिणमन का ध्यान आते ही सहज शांति उत्पन्न होती है॥ १७००॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१५२

२८. पर्यायों की परिवर्तनशीलता वस्तु का पर्यायगत स्वभाव होने से आत्मार्थी के लिए हितकर ही है॥ १७०१॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२८

२९. अनेकान्त वस्तु के स्वरूप में सहज ही घटित होता है, उसे घटित करने के लिए वस्तुस्वरूप को बलात् विकृत करने की आवश्यकता नहीं॥ १७०२॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-८९

३०. बिना अपेक्षा के वस्तु का रूप नहीं देखा जा सकता है॥ १७०३॥

— ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१४८

३१. विवक्षा-अविवक्षा वाणी के भेद हैं, वस्तु के नहीं॥ १७०४॥

— ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१४४

३२. वस्तुस्वरूप के प्रतिपादन में निर्दोष भाषा का प्रयोग होना चाहिए॥ १७०५॥ — प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२६९

३३. अभाव भी वस्तु का धर्म है, उसे माने बिना वस्तु की व्यवस्था नहीं बनेगी॥ १७०६॥ — तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-१, पृष्ठ-५०

३४. सन्मात्र को कायम रखकर किया गया विभाजन वस्तुस्वरूप को समझने के लिए अत्यन्त उपयोगी है॥ १७०७॥

प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२६०

जिनवाणी ही परम शरण है

जिनवाणी का गहराई से अध्ययन नहीं करना ही तात्त्विक विवादों का मूल कारण है। अत: तात्त्विक विवादों से बचने का एकमात्र उपाय जिनवाणी का गहराई से स्वाध्याय करना ही है। न केवल तात्त्विक विवादों के सुलझाने के लिये, अपितु आत्मकल्याण के लिये भी प्राथमिक स्थिति में जिनवाणी ही परमशरण है।

— चिंतन ही गहराइयाँ, पृष्ठ-२३८

द्रव्य गुण पर्याय

१. जिनागम में प्रतिपादित द्रव्य एवं पदार्थ व्यवस्था की सम्यक् जानकारी बिना जिन-सिद्धान्त और जिन-अध्यात्म में प्रवेश पाना संभव नहीं है ॥ १७०८ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-७४

२. यद्यपि सभी द्रव्य सत्‌रूप ही हैं, अस्तित्वमय हैं; तथापि प्रत्येक द्रव्य की सत्ता स्वतन्त्र है ॥ १७०९ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-६१

३. यदि एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य के कार्यों का कर्त्ता-भोक्ता स्वीकार किया जाता है तो फिर प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं रह जाता है ॥ १७१० ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-३६

४. सभी द्रव्य अपनी-अपनी अच्छी-बुरी परिणति के उत्तरदायी स्वयं हैं ॥ १७११ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-६१

५. कोई व्यक्ति कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, वह अन्य द्रव्य के परिणमन में हस्तक्षेप नहीं कर सकता ॥ १७१२ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-३८

६. सब द्रव्य अपनी-अपनी पर्यायों के कर्ता हैं, कोई भी पर का कर्ता नहीं है ॥ १७१३ ॥ — बालबोध पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-२९

७. प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वयं के कारण स्वयं से होता है ॥ १७१४ ॥

— ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-८१

८. निरन्तर परिणमन ही उसका (द्रव्य का) जीवन है ॥ १७१५ ॥

— क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-७७

९. द्रव्य में पर्याय होती है, पर्यायों में द्रव्य नहीं ॥ १७१६ ॥

— बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-५२

१०. द्रव्य पर दृष्टि जाने पर जो नई पर्याय प्रकट होती है, वह सुधरी हुई या निर्मल ही होती है ॥ १७१७ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१९४

११. स्वभाव में तो अपूर्णता की कल्पना भी नहीं की जा सकती ॥ १७१८ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१०७

१२. स्वभाव तो उसका नाम है, जिसके आश्रय से पर्याय भी पवित्र हो जावे ॥ १७१९ ॥ — धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-६९

१३. पर्यायें क्रमबद्ध ही होती हैं, अक्रम नहीं और गुण अक्रम से ही होते हैं, क्रम से नहीं ॥ १७२० ॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-८९

१४. पर और पर्याय से पृथक् द्रव्यस्वभाव का परिज्ञान न होने से अनादि काल से इस आत्मा ने पर और पर्याय में ही एकत्व स्थापित कर रखा है ॥ १७२१ ॥ — बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-२२

१५. पर्याय पक्ष को गहराई से देखने के लिए दृष्टि में द्रव्यपक्ष को पूर्णतः गौण करना होगा ॥ १७२२ ॥ — प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२०४

१६. पर्याय के विकार का कारण 'मैं परतन्त्र हूँ' ऐसी मान्यता है, न कि परपदार्थ ॥ १७२३ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२००

१७. स्वभाव की स्वतन्त्रता की अजानकारी ही पर्याय की परतन्त्रता है ॥ १७२४ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२००

१८. कोई भी अपने परिणमन में परमुखापेक्षी नहीं है ॥ १७२५ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२०५

१९. अपूर्णता के लक्ष्य से पर्याय में पूर्णता की प्राप्ति नहीं होती ॥ १७२६ ॥

— प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१०७

२०. पर्यायों का सुधार तो द्रव्याधीन है ॥ १७२७ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१९४

२१. शब्दों का व्यावहारिक प्रयोग स्वभाव के आधार पर नहीं, पर्याय के आधार पर होता है ॥ १७२८ ॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-२९

२२. क्षणिक निर्मल पर्यायें भी अपनापन स्थापित करने योग्य नहीं हैं ॥ १७२९ ॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-७६

२३. नई निर्मल पर्याय तो त्रिकाली ध्रुव निज भगवान आत्मा के आश्रय से ही उत्पन्न होती है ॥ १७३० ॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-७०

२४. जिसे स्वभाव की स्वतन्त्रता समझ में आती है, पकड़ में आती है, अनुभव में आती है; उसकी पर्याय में स्वतन्त्रता प्रकट होती है अर्थात् उसकी स्वतन्त्र पर्याय प्रकट होती है ॥ १७३१ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२००

२५. पर्याय की पामरता के नाश का उपाय पर्याय की पामरता का चिंतन नहीं, स्वभाव की सामर्थ्य का श्रद्धान है, ज्ञान है ॥ १७३२ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१७३

यही एक मार्ग है

भव का अन्त लाना हो तो निमित्ताधीन दृष्टि छोड़कर त्रिकाली उपादानरूप निज स्वभाव का आश्रय लो और उसका स्वरूप समझानेवाले, उसी में जम जाने और रम जाने की प्रेरणा देनेवाले सत्पुरुष की संगति करो, समागम करो, शरण में जावो; यही एक मार्ग है, शेष सब उन्मार्ग हैं।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-२४२

६०

क्रमबद्धपर्याय

१. पर्याय के बदलाव की भी एक मर्यादा है और वह भी नियमित है; वह हमारी इच्छानुसार नहीं, बल्कि अपने निश्चित क्रमानुसार बदलती है ॥ १७३३ ॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-७१

२. जगत में जो कुछ भी घटित होता है, वह अपने एक निश्चित नियमित क्रम में ही घटित होता है ॥ १७३४ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२१६

३. भविष्य एकदम सुनिश्चित है, अघटित कुछ भी घटित नहीं होता ॥ १७३५ ॥ — पं.प्र. महोत्सव, पृष्ठ-६५

४. कोई भी घटना नवीन घटित नहीं होती, अपितु वह पहिले से ही निश्चित है, वह तो मात्र स्वकाल में प्रगट होती है ॥ १७३६ ॥

— क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-९३

५. होता वही है, जो होना होता है ॥ १७३७ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-२३

६. अपने नियत क्रम में घटने वाली घटनाओं को साक्षीभाव से स्वीकार करना ही दृष्टिवन्त का कर्त्तव्य है ॥ १७३८ ॥

— आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-२७

७. क्रमबद्धपर्याय में वस्तु की अनन्त स्वतन्त्रता की घोषणा है ॥ १७३९ ॥

— क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-७८

८. जो होना है सो निश्चित है, केवलज्ञानी ने गाया है ॥ १७४० ॥

— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-९४

९. क्रमबद्धपर्याय की सहज स्वीकृति में जीत ही जीत है, हार है ही नहीं ॥ १७४१ ॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-१३

१०. क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा एक ऐसी संजीवनी है, जो हर स्थिति में धैर्य को कायम रखती है, शान्ति प्रदान करती है ॥ १७४२ ॥

— क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-१३

११. कुछ करो नहीं, बस होने दो; जो हो रहा है, बस उसे होने दो ॥ १७४३ ॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-२०३

१२. क्रमबद्धपर्याय के निर्णय में सर्वज्ञता का निर्णय समाहित है, सर्वज्ञकथित वस्तुस्वरूप का निर्णय समाहित है ॥ १७४४ ॥

— क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-१३

१३. सच्चे देव का स्वरूप समझने के लिए सर्वज्ञता का निर्णय अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि वही धर्म का मूल है ॥ १७४५ ॥

— ती.महावीर तीर्थ, पृष्ठ-११९

१४. केवलज्ञान अर्थात् सर्वज्ञता का स्वरूप जानना अत्यंत आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य है; क्योंकि सर्वज्ञता धर्म का मूल है ॥ १७४६ ॥

— पं.प्र. महोत्सव, पृष्ठ-६६

१५. सर्वज्ञता को समझे बिना सच्चे-देव-शास्त्र-गुरु को भी समझना संभव नहीं है ॥ १७४७ ॥ — पं.प्र. महोत्सव, पृष्ठ-६६

१६. तुमने बताया जगत को क्रमबद्ध है सब परिणमन ॥ १७४८ ॥

— जिनेन्द्र अर्चना, पृष्ठ-५२

१७. क्रमबद्धपर्याय पुरुषार्थनाशक नहीं, अपितु पुरुषार्थ प्रेरक है ॥ १७४९ ॥

— क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-५१

१८. क्रमबद्धपर्याय का निर्णय स्वयं अनन्त पुरुषार्थ का कार्य है ॥ १७५० ॥

— क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-५६

१९. क्रमबद्धपर्याय की प्रतीति बिना दृष्टि का स्वभावसन्मुख होना सम्भव नहीं है॥ १७५१॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-३३

२०. पंच समवायों में परस्पर कोई संघर्ष नहीं है, अपितु अद्भुत ,सुमेल है॥ १७५२॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-५३

२१. अपने भले-बुरे का उत्तरदायित्व प्रत्येक आत्मा का स्वयं का है। कोई किसी का भला-बुरा नहीं कर सकता, पर के भला-बुरा करने का भाव करके यह आत्मा स्वयं ही पुण्य-पाप के चक्कर में उलझ जाता है, बंध जाता है॥ १७५३॥ — आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१३

२२. काललब्धि आये बिना, पर्यायगत योग्यता के परिपाक के बिना, मात्र निमित्तों से वैराग्य नहीं होता॥ १७५४॥ — पं.प्र. महोत्सव, पृष्ठ-५५

२३. वैराग्य तो अन्तर की योग्यता पकने पर काललब्धि आने पर होता है॥ १७५५॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-४८

२४. अंतर की योग्यता पक जावे और काललब्धि आ जावे तो चाहे जिस निमित्त से वैराग्य हो सकता है॥ १७५६॥

— पं.प्र. महोत्सव, पृष्ठ-४८

२५. स्वसमय में अपनी होनहार के अनुसार उचित निमित्तपूर्वक ही सब कुछ घटित होता है॥ १७५७॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-८४

२६. जिनकी होनहार ही खोटी है, उन्हें असत्कर्म से कोई भी विरत नहीं कर सकता; क्योंकि उनकी बुद्धि भी तो वैसी ही हो जाती है, जैसी की उनकी होनहार होती है॥ १७५८॥ — सत्य की खोज, पृष्ठ-१९२

२७. 'अकाल' शब्द असमय का सूचक न होकर काल के अतिरिक्त अन्य कारणों का द्योतक है॥ १७५९॥ — क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-८६

२८. अकालमृत्यु असमय की सूचक न होकर काल के अतिरिक्त अन्य कारणों से होनेवाली मृत्यु की सूचक है॥ १७६०॥

— क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ-८६

६१

नयों की अनिवार्यता

१. जिनवाणी का वास्तविक मर्म जानने के लिए नयों का स्वरूप जानना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है ॥ १७६१ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१८४

२. नयों को समझे बिना जिनागम का मर्म जान पाना तो बहुत दूर, उसमें प्रवेश भी संभव नहीं है ॥ १७६२ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१९

३. वस्तु के अंशों की गहन पकड़ तो नय ज्ञान से ही होती है ॥ १७६३ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२०७

४. अनंत धर्मात्मक अर्थात् अनेकांतस्वरूप आत्मा का सम्यग्ज्ञान नयों द्वारा ही होता है ॥ १७६४ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१९

५. एक नय की विषयभूत वस्तु को देखने के लिए दूसरे नय की आँख को पूरी तरह बन्द करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है ॥ १७६५ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१९३

भगवान आत्मा अमल है

आत्मा को यहाँ 'निर्मल' न कहकर 'ममल' कहा है। ममल अर्थात् अमल। जिसका मल निकल गया हो, उसे निर्मल कहते हैं और जिसमें मल हो ही नहीं, उसे अमल कहते हैं। अरहंत और सिद्ध भगवान निर्मल हैं और त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा अमल है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-२४७

नय

१. वस्तुस्वरूप के अधिगम एवं प्रतिपादन में नयों का प्रयोग जैनदर्शन की मौलिक विशेषता है ॥ १७६६ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२९

२. नय जैनदर्शन की अलौकिक उपलब्धि है ॥ १७६७ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२०५

३. सम्यक्-एकान्त नय है और मिथ्या-एकान्त नयाभास है ॥ १७६८ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२०५

४. नय गौण धर्मों का निराकरण नहीं करता, मात्र उनके संबंध में मौन रहता है ॥ १७६९ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२८

५. एक नय के विषय के स्पष्ट प्रतिभास के लिए अपर पक्ष को सर्वथा गौण करना आवश्यक है, उसका निषेध आवश्यक नहीं ॥ १७७० ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१९४

६. गौणता कोई दोष नहीं है, वह तो नयों के स्वरूप में ही समाहित है ॥ १७७१ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१९७

७. नय अपर पक्ष को गौण करते हैं, अभाव नहीं ॥ १७७२ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१९०

८. अज्ञानी के नय नय नहीं, नयाभास हैं ॥ १७७३ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२६

९. नयों के प्रयोग में 'ही' की अनिवार्यता असिद्ध नहीं है, अपितु आगम सिद्ध ही है ॥ १७७४ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२०७

१०. मुख्यता और गौणता नय के विषय में ही होती है, प्रमाण के विषय में नहीं ॥ १७७५ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१९१

११. अनन्तधर्मात्मक यह भगवान आत्मा अनंतनयात्मक श्रुतज्ञानरूप प्रमाण का विषय है ॥ १७७६ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२८१

१२. मुख्यता और गौणता वस्तु में विद्यमान धर्मों की अपेक्षा नहीं, किन्तु वक्ता की इच्छानुसार होती है ॥ १७७७ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-३५९

१३. ज्ञानी वक्ता अपने अभिप्रायानुसार जब एक धर्म का कथन करता है तब कथन में वह धर्म मुख्य और अन्य धर्म गौण रहते हैं ॥ १७७८ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२३

१४. एवकार (ही) के बहिष्कार से समस्त नय प्रयोगों का बहिष्कार अनिवार्य हो जाता है ॥ १७७९ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२०८

१५. अंशों के निषेध से अंशी का निषेध एवं अंशी के निषेध से अंशों का निषेध सहज ही हो जाता है ॥ १७८० ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१९७

एकदम अप-टू-डेट हैं

आज हिंसा इतनी खतरनाक हो उठी है, अत: भगवान महावीर की अहिंसा की आवश्यकता भी आज जितनी है, उतनी महावीर के जमाने में भी नहीं थी। भाई ! इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि महावीर आउट-ऑफ-डेट नहीं हुये हैं, अपितु एकदम अप-टू-डेट हैं।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-२५८

सप्तनय

१. संग्रहनय संग्रहोन्मुखी है और व्यवहारनय विभाजनोन्मुखी ॥ १७८१ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२६१

२. समष्टि की ओर ले जानेवाला संग्रहनय और व्यष्टि की ओर ले जानेवाला व्यवहारनय ॥ १७८२ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२६०

३. संगठन का आधार संग्रहनय है और विघटन का आधार व्यवहार नय ॥ १७८३ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२६०

४. संग्रहनय का एकमात्र कार्य विभिन्न सत् पदार्थों में समानता के आधार पर एकता स्थापित करना ही है ॥ १७८४ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२५५

५. संग्रहनय विभिन्न स्तरों पर किसी भी एक जाति (समानता) को आधार बनाकर विभिन्न पदार्थों में एकता स्थापित करने के लिए एकता के सूत्र खोजनेवाला नय है ॥ १७८५ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२५५

ओढ़ना कुछ भी नहीं

हमारे लिए दिगम्बर भी वेष हो गया है। हो क्या गया — कहा जाने लगा है। सब वेषों में कुछ उतारना पड़ता है और कुछ पहिनना होता है, पर इसमें छोड़ना ही छोड़ना है, ओढ़ना कुछ भी नहीं। छोड़ना भी क्या, उघड़ना है, छूटना है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-२७४

६४

द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक

१. द्रव्यार्थिकनय का विषयभूत द्रव्यस्वभाव अपरिवर्तनशील एवं पर्यायार्थिकनय का विषयभूत पर्यायस्वभाव परिवर्तनशील है ॥ १७८६ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२११

२. सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति ही द्रव्यार्थिकनय के विषय-भूत द्रव्यसामान्य के अवलोकन से ही होती है ॥ १७८७ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२०७

३. प्रमाण और नय (द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक) दोनों वीतरागभाव के ही उत्पादक हैं; सार्थक हैं, उपयोगी हैं ॥ १७८८ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२१३

अपने को नहीं जीता

अपने को जीतना ही सच्ची वीरता है, मोह-राग-द्वेष को जीतना ही अपने को जीतना है। दूसरों को तो इस जीव ने हजारों बार जीता है, पर अपने को नहीं जीता। दूसरों को जानने और ज़ीतने में इस जीव ने अनन्त भव खोये हैं और दुःख ही पाया है। एक बार अपने को जान लेता और अपने को जीत लेता तो ज्ञानानन्दमय हो जाता। भव-भ्रमण से छूटकर भगवान बन जाता।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-२८१

६५

आगम और अध्यात्म

१. आगम और अध्यात्म एक-दूसरे के विरोधी नहीं, अपितु पूरक हैं ॥ १७८९ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१७६

२. आगम के अध्ययन से अध्यात्म की पुष्टि होती है ॥ १७९० ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१७६

३. आगम अध्यात्म के लिए और आगमाभ्यास अध्यात्मियों के लिए आधार प्रदान करता है, उदाहरण प्रस्तुत करता है ॥ १७९१ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१७६

४. आगम का विरोधी अध्यात्मी नहीं हो सकता, अध्यात्म का विरोधी आगमी नहीं हो सकता ॥ १७९२ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१७७

५. आगम फैलने की और अध्यात्म अपने में ही सिमटने की प्रक्रिया का नाम है ॥ १७९३ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१७८

६. आगम का प्रतिपाद्य सन्मात्र वस्तु है और अध्यात्म का प्रतिपाद्य चिन्मात्र वस्तु है ॥ १७९४ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१८०

७. आगम में छह द्रव्यों की मुख्यता से और अध्यात्मरूप परमागम में आत्मद्रव्य की मुख्यता से कथन होता है ॥ १७९५ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१०२

८. आगम अध्यात्म का हेतु है, कारण है, साधन है ॥ १७९६ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-३७

९. आगमरूपी चक्षु के उपयोग बिना स्व-पर भेदविज्ञान संभव नहीं ॥ १७९७ ॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-६९

१०. साधु को आगमचक्षु कहा गया है ॥ १७९८ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-६९

११. एकाग्रता के बिना श्रामण्य नहीं होता और एकाग्रता उसे ही होती है, जिसने आगम के अभ्यास द्वारा पदार्थों का निश्चय किया है, अत: आगम का अभ्यास ही सर्वप्रथम कर्त्तव्य है ॥ १७९९ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-६९

१२. गुणपर्याय सहित सम्पूर्ण पदार्थ आगम से ही जाने जाते हैं। आगमानुसार दृष्टि से सम्पन्न पुरुष ही संयमी होते हैं ॥ १८०० ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-६९

१३. आत्मा का साक्षात् हित करनेवाला तो अध्यात्म ही है ॥ १८०१ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-३७

१४. वस्तुस्वरूप का मर्म तो अध्यात्म शास्त्रों में ही है ॥ १८०२ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व कर्तृत्व, पृष्ठ-१२८

१५. मोक्षमार्ग का मूल उपदेश तो अध्यात्म शास्त्रों में ही है; उनके निषेध से मोक्षमार्ग का निषेध हो जायेगा ॥ १८०३ ॥

— वी. वि. पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-२१

१६. आज के इस अशांत जगत में अध्यात्म ही एक ऐसा दीपक है, जो भटकी हुई मानव सभ्यता को सन्मार्ग दिखा सकता है ॥ १८०४ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-५४

१७. जगत में जो कुछ भी श्रेय विद्यमान है, अच्छाइयाँ कायम हैं; वे सब इसी अध्यात्मधारा के अविरल प्रवाह का ही परिणाम हैं ॥ १८०५ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१०२

१८. अध्यात्म का जितना अधिक प्रचार-प्रसार होगा, सुख-शांति की संभावनाएँ भी उतनी ही अधिक प्रबल होंगी॥ १८०६॥

आ.कुंद. परमागम, पृष्ठ ५४

१९. यह अध्यात्म सभी रोगों को मेटनेवाला महारोग और जगत के सभी चक्करों से बचानेवाला चक्कर है॥ १८०७॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१५५

२०. स्वयंकृत अशांति के दोष को दूसरे के माथे मढ़ना चाहते हो, ऐसी अनीति अध्यात्म में तो संभव है ही नहीं॥ १८०८॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१७६

२१. अध्यात्म का मार्ग है कि '**समझना सब, जमना स्वभाव में**' ॥ १८०९॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१३९

२२. जलती हुई द्वारका देखकर भी श्री नेमिनाथ के समान सहज ज्ञाता-दृष्टा बने रहना ही अध्यात्म की चरम उपलब्धि है॥ १८१०॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१४९

२३. सम्यग्ज्ञानी आगमी भी है और अध्यात्मी भी तथा मिथ्याज्ञानी आगमी भी नहीं और अध्यात्मी भी नहीं होता॥ १८११॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१७७

अज्ञान की महिमा

हे प्रभो ! कितने आश्चर्य की बात है, जिन भोगों को तुच्छ जानकर आपने स्वयं त्याग किया है; वे उन्हें ही इष्ट मान रहे हैं और आप से ही उनकी माँग कर रहे हैं, आपको ही उनका दाता बता रहे हैं।

हे प्रभो ! आपके अनन्तज्ञान की महिमा तो अनन्त है ही, पर अज्ञानियों के अज्ञान की महिमा भी अनन्त है, अन्यथा वे इसप्रकार व्यवहार क्यों करते ?

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-२८५

६६

निश्चय-व्यवहार

१. उपदेश की प्रक्रिया में व्यवहारनय प्रधान है और अनुभव की प्रक्रिया में निश्चयनय प्रधान है॥ १८१२॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-७०

२. व्यवहार की दृष्टि संयोग पर है और निश्चय की दृष्टि असंयोगी तत्त्व पर॥ १८१३॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-४२

३. जिसके आश्रय से मुक्ति हो, वह भूतार्थ (निश्चय) और जिसके आश्रय से मुक्ति न हो, वह अभूतार्थ (व्यवहार) है॥ १८१४॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-४७

४. निश्चय को समझने के लिए व्यवहार को अपनाना होगा और निश्चय को पाने के लिए व्यवहार को छोड़ना भी होगा॥ १८१५॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-६१

५. व्यवहार की कीमत भी निश्चय के प्रतिपादकत्व में ही है॥ १८१६॥ — प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ-६९

६. आत्मानुभूतिरूप जिनमत का प्रवर्तन तो निश्चयनय के विषयभूत अर्थ में मग्न होने पर ही संभव है॥ १८१७॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-७०

७. ज्ञानी व्यवहार को जानता तो है, पर उसमें मोहित नहीं होता है॥ १८१८॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१५१

८. व्यवहार का विषय श्रद्धेय नहीं है, ध्येय नहीं है; पर ज्ञेय तो है ही ॥ १८१९ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१३१

९. व्यवहारनय असत्यार्थ और हेय है, फिर भी उसे जैनशास्त्रों में स्थान प्राप्त है; क्योंकि व्यवहार स्वयं सत्य नहीं है, फिर भी सत्य की प्रतीति और अनुभूति में निमित्त है ॥ १८२० ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व कर्तृत्व, पृष्ठ-१८४

१०. व्यवहारनय और उसका विषय जानने के लिए प्रयोजनवान है; जमने के लिए नहीं, रमने के लिए नहीं ॥ १८२१ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१३९

११. यद्यपि देहादि पर पदार्थों एवं रागादि विकारी भावों को जिनागम में व्यवहार से आत्मा कहा गया है, आत्मा का कहा गया है; पर यह व्यवहार प्रयोजनविशेषपुरतः ही सत्यार्थ है ॥ १८२२ ॥

— आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-३४

१२. निजद्रव्य में अन्य द्रव्यों के हस्तक्षेप का निषेध एवं अपनी आन्तरिक अखण्डता (गुणभेदादि का निषेध) ही जिसका कार्य है, वह निश्चयनय ही वस्तुतः नयाधिराज है ॥ १८२३ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१२१

१३. एकदेशशुद्धनिश्चयनयरूप साधकदशा तो प्रस्थान है, पहुँचना नहीं; पथ है, गन्तव्य नहीं; साधन है, साध्य नहीं ॥ १८२४ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-९६

१४. अनुभव की प्रेरणा की देशनारूप व्यवहार और अनुभवरूप निश्चय की विद्यमानता ही व्यवहार-निश्चय नहीं छोड़ने की प्रक्रिया है ॥ १२२५ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-७१

१५. निश्चय की कीमत व्यवहार की संगति में घट जाती है और अकेले में बढ़ जाती है ॥ १८२६ ॥ — प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ ५९

६७

उपादान-निमित्त

१. निमित्त होता अवश्य है, पर 'पर' में करता कुछ नहीं ॥ १८२७ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१५३

२. निमित्त होता है, पर करता नहीं; करता नहीं, पर होता है ॥ १८२८ ॥

— सत्य की खोज, पृष्ठ-१५३

३. अज्ञ को उपदेशादि निमित्तों द्वारा विज्ञ नहीं किया जा सकता और न विज्ञ को अज्ञ ही कर सकते हैं ॥ १८२९ ॥

— निमित्तोपादान, पृष्ठ-१४

४. जब उपादान की तैयारी हो, तब कार्य होता ही है और उस समय योग्य निमित्त भी होता ही है; उसे खोजने कहीं नहीं जाना पड़ता है ॥ १८३० ॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-४९

५. निमित्तों से कार्य नहीं होता, निमित्तों के बिना कार्य रुकता भी नहीं; पर स्थिति यह है कि जब कार्य होता है, तब निमित्त भी सहजपने होता ही है ॥ १८३१ ॥ — ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-४९

६. निमित्तों के अनुसार कार्य नहीं होता है, कार्य के अनुसार निमित्त कहा जाता है ॥ १८३२ ॥ —निमित्तोपादान, पृष्ठ-१६

७. निमित्तों को दोष देना ठीक नहीं, अपनी पात्रता का विचार करना ही कल्याणकारी है ॥ १८३३ ॥ — पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-५८

८. जब अपनी अंतर से तैयारी हो तो निमित्त हाजिर ही रहता है, पर जब हमारी पात्रता ही न पके तो निमित्त भी नहीं मिलते॥ १८३४॥

— पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ-५८

९. आत्मार्थी को निमित्तों की खोज में व्यग्र नहीं होना चाहिए॥ १८३५॥

— निमित्तोपादान, पृष्ठ-१६

१०. आत्मकल्याणरूप कार्य में निमित्त-उपादान की संधि का सम्यग्ज्ञान हो जाने पर दृष्टि परपदार्थों से हटकर स्वभावसन्मुख होती है और आत्मानुभूति प्रगट होती है॥ १८३६॥

— निमित्तोपादान, पृष्ठ-३०

व्यवहारनय जानने मात्र के लिए प्रयोजनवान

प्रारंभिक भूमिका में परमार्थ को समझने के लिये व्यवहार की उपयोगिता है, क्योंकि वह निश्चय का प्रतिपादक है। जैसे — हिमालय पर्वत से निकलकर बंगाल की खाड़ी में गिरनेवाली सैंकड़ों मील लम्बी गंगा नदी की लम्बाई तो क्या चौड़ाई को भी आँखों से नहीं देखा जा सकता है। अत: उसकी लम्बाई-चौड़ाई और बहाव के मोड़ों को जानने के लिए हमें नक्शे का सहारा लेना पड़ता है। पर जो गंगा नक्शे में है वह वास्तविक नहीं है, उससे तो मात्र गंगा को समझा जा सकता है, उससे कोई पथिक प्यास नहीं बुझा सकता है, प्यास बुझाने के लिए असली गंगा के किनारे ही जाना होगा।

उसीप्रकार व्यवहार द्वारा कथित वचन नक्शे की गंगा के समान हैं। उनसे समझा जा सकता है, पर उनके आश्रय से आत्मानुभूति प्राप्त नहीं की जा सकती है। आत्मानुभूति प्राप्त करने के लिए निश्चयनय के विषयभूत त्रिकाली शुद्धात्मा का ही आश्रय लेना आवश्यक है। अत: व्यवहारनय तो मात्र जानने (समझने) के लिए प्रयोजनवान है। **— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-२९८**

६८

अनेकान्त और स्याद्वाद

१. अनेकान्त और स्याद्वाद का सिद्धान्त वस्तुस्वरूप के सही रूप का दिग्दर्शन करनेवाला होने से आत्म-शान्ति के साथ-साथ विश्व शान्ति का भी प्रतिष्ठापक सिद्धान्त है ॥ १८३७ ॥

— ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-१५३

२. स्याद्वाद संभावनावाद नहीं, निश्चयात्मक ज्ञान होने से प्रमाण है ॥ १८३८ ॥ — अनेकान्त और स्याद्वाद, पृष्ठ-९

३. स्याद्वाद एक ऐसी शैली है, जिसमें कहीं किसी को कोई विरोध नहीं आ सकता ॥ १८३९ ॥ — ती.भ. महावीर, पृष्ठ-६

४. स्याद्वाद में कहीं भी अज्ञान की झलक नहीं है ॥ १८४० ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-३६६

५. स्याद्वाद में 'ही' अथवा 'ही' के वाचक 'सर्वथा' आदि शब्दों का प्रयोग हानिकारक नहीं है; अपितु विशिष्ट अर्थ का प्रतिपादक होने से आवश्यक है, गुणकारक ही है ॥ १८४१ ॥

— प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२०६

६. स्याद्वादी सर्वथा, एकान्त, ही, आदि जहरीले शब्दों को 'स्यात्' पद से परिष्कृत कर, उनसे ही वस्तु के सम्यक्स्वरूप का सम्यक् प्रतिपादन करते हैं ॥ १८४२ ॥ —प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२०७

७. सम्यगेकान्त नय कहलाता है और सम्यगनेकान्त प्रमाण॥ १८४३ ॥

—प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१९३

८. नयविवक्षा वस्तु के एक धर्म का निश्चय करनेवाली होने से (सम्यक्) एकान्त है और प्रमाण विवक्षा वस्तु के अनेक धर्मों का निश्चय करनेवाली होने से अनेकान्त है॥ १८४४॥

—प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-१९३

९. सम्यक्-अनेकान्त प्रमाण है और मिथ्या-अनेकान्त प्रमाणाभास॥ १८४५॥ —प. प्र. नयचक्र, पृष्ठ-२०५

१०. वाणी में स्यात् पद का प्रयोग आवश्यक है, स्यात् पद अविवक्षित धर्मों को गौण करता है, पर अभाव नहीं॥ १८४६॥

—अनेकान्त और स्याद्वाद, पृष्ठ-७

शाश्वत तीर्थधाम

यह तो आप जानते ही हैं कि भरतक्षेत्र में अबतक अगणित चौबीसियाँ हो गई हैं और भविष्य में भी होंगी। तथा यह सुनिश्चित है कि भरतक्षेत्र के प्रत्येक तीर्थंकर का जन्म अयोध्या में होता है और प्रत्येक ही तीर्थंकर का निर्वाण सम्मेदशिखर से होता है।

इसप्रकार यह तीर्थराज अगणित तीर्थंकरों और उनसे भी असंख्यगुणे मुनिराजों का निर्वाणस्थल होने से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तीर्थराज तो है ही; भविष्य में भी वहाँ से अगणित तीर्थंकर और उनसे भी असंख्यगुणे मुनिराज मोक्ष जावेंगे; अतः वह शाश्वत तीर्थधाम भी है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-३१२

६९

ध्यान

१. ध्यान चारित्र का सर्वोत्कृष्ट रूप है ॥ १८४७ ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२२०

२. ध्यान मुद्रा ही धर्ममुद्रा है, सर्वश्रेष्ठ मुद्रा है ॥ १८४८ ॥

— आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-२२१

३. केवल स्वयं की साधना आराधना ही ध्यान है ॥ १८४९ ॥

— बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-११४

४. दु:खों का अन्त करानेवाला और असली सुख-शान्ति प्राप्त करानेवाला ध्यान, आत्मध्यान ही है ॥ १८५० ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-६७

५. निरन्तर आत्मध्यान की दशा ही साध्यभाव की उपासना है और कभी-कभी आत्मध्यान की दशा का होना साधकभाव की उपासना है ॥ १८५१ ॥ — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-१९८

६. ध्यान यदि लगातार अंतर्मुहूर्त्त करे तो निश्चितरूप से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है; किन्तु उपवास वर्षभर भी करे तो केवलज्ञान की गारन्टी नहीं ॥ १८५२ ॥ —धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-१०३

७. ध्यान की अवस्था में ही सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है ॥ १८५३ ॥

—धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ-११५

८. आत्मध्यान करने से पूर्व उस आत्मा का स्वरूप समझना अत्यन्त आवश्यक है, जिसका ध्यान करना है, जो ध्येय है ॥ १८५४ ॥

—आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-६७

९. ध्येय का स्वरूप स्पष्ट हुए बिना ध्यान संभव नहीं है॥ १८५५॥

—आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-६५

१०. चिन्तन ध्यान का प्रारम्भिक रूप है॥ १८५६॥

—बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१२

११. आवश्यकता चिन्तन और ध्यान के प्रशिक्षण की नहीं, अपितु सम्यक् दिशा निर्देश की है॥ १८५७॥ —बा. भा. अनुशीलन, पृष्ठ-१३

१२. कक्षाएँ ज्ञान की लग सकती हैं, ध्यान की नहीं॥ १८५८॥

—सत्य की खोज, पृष्ठ-२११

१३. ध्यान के लिए एकान्त चाहिए, भीड़ नहीं॥ १८५९॥

—आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-६६

१४. बातचीत पर से जोड़ती है और पर का सम्पर्क ध्यान में सबसे बड़ी बाधा है॥ १८६०॥ —शा. ती. सम्मेदशिखर, पृष्ठ-१८

१५. ध्यान के लिए निरापद स्थान वातानुकूलित घर नहीं, प्रकृति की गोद में बसे घने जंगल हैं, पर्वत श्रेणियाँ हैं॥ १८६१॥

—शा. ती. सम्मेदशिखर, पृष्ठ-२३

१६. जीव की रुचि जिस ओर लग जाती है, उसका ध्यान सहज ही बार-बार उसी ओर जाता है। प्रत्येक जीव के ध्यान का केन्द्र-बिन्दु वही वस्तु बनी रहती है, जो उसे रुचिकर होती है॥ १८६२॥

—सत्य की खोज, पृष्ठ-९३

१७. वचनरूप प्रतिक्रमणादि तो स्वाध्याय हैं, ध्यान नहीं; अतः ग्राह्य नहीं॥ १८६३॥ — आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-९६

१८. वास्तविक प्रतिक्रमणादि तो आत्मा के ध्यानरूप ही हैं, वचनादिरूप नहीं हैं अर्थात् श्रद्धेय, ध्येय, आराध्य तो एक आत्मा ही है॥ १८६४॥

—आ. कुंद. परमागम, पृष्ठ-९६

तीर्थंकर भगवान महावीर

१. भगवान महावीर का जीवन अब पुराणों की गाथा मात्र नहीं रहा, उन्हें अब इतिहासकारों ने ऐतिहासिक महापुरुष के रूप में स्वीकार कर लिया है॥ १८६५॥ — ती. भ. महावीर,पृष्ठ-३

२. भगवान महावीर का जीवन आत्मा से परमात्मा बनने के क्रमिक विकास की कहानी है॥ १८६६॥ — मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-५१

३. भगवान महावीर का जीवन अहिंसा के आधार पर मानव जीवन के चरम विकास की कहानी है॥ १८६७॥ — ती. भ. महावीर, पृष्ठ-३

४. भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त जितने गूढ़ गंभीर व ग्राह्य हैं; उनका जीवन उतना ही सादा, सरल एवं सपाट है; उसमें विविधताओं को कोई स्थान प्राप्त नहीं॥ १८६८॥

— ती. भ. महावीर, पृष्ठ-४

५. घटनाओं में उनके (भगवान महावीर) के व्यक्तित्व को खोजना भी व्यर्थ है॥ १८६९॥ — वी. भ. महावीर, पृष्ठ-३

६. जवानी में दुर्घटनाएँ उनके साथ घटती हैं, जिन पर जवानी चढ़ती है। महावीर तो जवानी पर चढ़े थे, जवानी उन पर नहीं॥ १८७०॥

—वी. भ. महावीर, पृष्ठ-७

७. भगवान महावीर का व्यक्तित्व अखण्ड है, अविभाज्य है; उसका विभाजन संभव नहीं है॥ १८७१॥ —वी. भ. महावीर, पृष्ठ-३

८. तीर्थंकर महावीर के विराट व्यक्तित्व को समझने के लिए उन्हें (भगवान महावीर को) विरागी, वीतरागी दृष्टिकोण से देखना होगा॥ १८७२॥ —वी. भ. महावीर, पृष्ठ-५

९. महावीर की वीरता में दौड़-धूप नहीं; उछल-कूद नहीं, मारकाट नहीं, हाहाकार नहीं; अनंत शांति है। उनके व्यक्तित्व में वैभव की नहीं, वीतराग-विज्ञान की विराटता है॥ १८७३॥

—वी. भ. महावीर, पृष्ठ-६

१०. सन्मति शब्द का कितना भी महान अर्थ क्यों न हो, वह केवलज्ञान की विराटता को अपने में नहीं समेट सकता॥ १८७४॥

—वी. भ. महावीर, पृष्ठ-३

११. जिनकी (भगवान महावीर) वाणी एवं दर्शन ने अनेकों की शंकाएँ समाप्त की हों, अनेकों को सन्मार्ग दिखाया हो, सत्पथ में लगाया हो; उनकी महानता को किसी एक की शंका को समाप्त करनेवाली घटना कुछ विशेष व्यक्त नहीं कर सकती॥ १८७५॥

—वी. भ. महावीर, पृष्ठ-४

१२. बढ़ते तो अपूर्ण हैं, जो पूर्णता को प्राप्त हो चुका हो - उसे वर्द्धमान कहना कहाँ तक सार्थक हो सकता है॥ १८७६॥

—वी. भ. महावीर, पृष्ठ-४

१३. वे महावीर तो बनना चाहते थे; पर हिंसा, अत्याचार, परपीडन, संहार और क्रूरता के नहीं; वरन् अहिंसा और शांति के महावीर बनना चाहते थे॥ १८७७॥ —ती. भ. महावीर, पृष्ठ-७

१४. मोह-राग-द्वेषरूपी शत्रुओं को पूर्णतया जीत लेने से वे सच्चे महावीर बने। पूर्ण वीतरागी और सर्वज्ञ होने से वे भगवान कहलाए॥ १८७८॥

—ती. भ. महावीर, पृष्ठ-८

१५. साँप से न डरना बालक वर्द्धमान के लिए गौरव की बात हो सकती है, हाथी को वश में करना राजकुमार वर्द्धमान के लिए प्रशंसनीय कार्य हो सकता है; भगवान महावीर के लिए नहीं॥ १८७९॥

—वी. भ. महावीर, पृष्ठ-४

१६. महावीर ने विद्रोह नहीं, अद्रोह किया था॥ १८८०॥

—वी. भ. महावीर, पृष्ठ-७

१७. महावीर जैसे अद्रोही महामानव में विद्रोह खोज लेना अभूतपूर्व खोज बुद्धि का परिणाम है, बालू में से तेल निकालने जैसा यत्न है॥ १८८१॥ —वी. भ. महावीर, पृष्ठ-९

१८. दुनिया ने उन्हें अपने रंग में रंगना चाहा, पर आत्मा के रंग में सर्वांग सराबोर महावीर पर दुनिया का रंग न चढ़ा॥ १८८२॥

—वी. भ. महावीर, पृष्ठ-७

१९. भगवान महावीर अपनी वीतरागता, सर्वज्ञता और हितोपदेशिता के कारण पूज्य हैं, कोई लौकिक चमत्कारों और सन्तान धनादि देने के कारण नहीं॥ १८८३॥ —सत्य की खोज, पृष्ठ-२१

२०. जो महान आत्मा स्वयं धनादि और घरबार छोड़कर आत्म साधनारत हुआ हो, उससे ही धनादिक की चाह करना कितना हास्यास्पद है। उनको भोगादि का देनेवाला कहना, उनकी वीतरागता की मूर्ति को खण्डित करना है॥ १८८४॥ —मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-५३

२१. जब वीतरागता और आत्मज्ञान की पूर्णता ही हमारा प्राप्तव्य बनेगा; तभी हम वीतरागी सर्वज्ञ भगवान महावीर के सच्चे उपासक कहलाने के अधिकारी होंगे॥ १८८५॥ —मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-५५

२२. लौकिक सुख (भोग) की आकांक्षा से परमात्मा की उपासना करनेवाला व्यक्ति वीतरागी भगवान महावीर का उपासक नहीं हो सकता॥ १८८६॥ —मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-५२

२३. भगवान महावीर के अनुसार प्रत्येक आत्मा स्वयं सर्वप्रभुतासम्पन्न द्रव्य है, अपने भले-बुरे का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व स्वयं उसका है; उसमें किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप वस्तुस्वरूप को स्वीकार नहीं है॥ १८८७॥ —गागर में सागर, पृष्ठ-९५

२४. जन-जन की ही नहीं, अपितु कण-कण की स्वतन्त्र सत्ता की उद्घोषणा तीर्थंकर महावीर की वाणी में हुई है॥ १८८८॥ —मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-६०

२५. भगवान महावीर ने जो कहा, वह कोई नया सत्य नहीं था। उन्होंने सत्य की स्थापना नहीं, सत्य का उद्घाटन किया। उन्होंने कोई नया धर्म स्थापित नहीं, किया। उन्होंने धर्म को नहीं, धर्म में खोई आस्था को स्थापित किया॥ १८८९॥ —ती. भ. महावीर, पृष्ठ-१०

२६. कर्तृत्व के अहंकार एवं अपनत्व के ममकार से दूर रहकर जो स्व और पर को समग्र रूप से जान सके, महावीर के अनुसार वही भगवान है॥ १८९०॥ —ती. भ. महावीर, पृष्ठ-१०

२७. जो समस्त जगत को जानकर उससे पूर्ण अलिप्त, वीतराग रह सके अथवा पूर्ण रूप से अप्रभावित रहकर जान सके, वही भगवान है॥ १८९१॥ —ती. भ. महावीर, पृष्ठ-१०

२८. वन में ही तो महावीर रागी से वीतरागी बने थे, अल्पज्ञानी से पूर्ण ज्ञानी बने थे॥ १८९२॥ —वी. भ. महावीर, पृष्ठ-९

२९. तीर्थंकर महावीर ने जिस सर्वोदय तीर्थ का प्रणयन किया, उसके जिस धर्मतत्त्व को लोक के सामने रखा; उसमें किसी प्रकार की संकीर्णता और सीमा नहीं थी॥ १८९३॥ —तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-२, पृष्ठ-६०

३०. महावीर भगवान ने जातिगत श्रेष्ठता को कभी महत्त्व नहीं दिया॥ १८९४॥ —ती. भ. महावीर, पृष्ठ-८

३१. सर्वप्राणी-समभाव, जैसा महावीर की धर्मसभा में प्राप्त था, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है ॥ १८९५ ॥ —ती. भ. महावीर, पृष्ठ-९

३२. भगवान महावीर का सर्वोदय, वर्गोदय के विरुद्ध एक वैचारिक क्रांति है, जिसमें सबका उदय हो, वही सर्वोदय है ॥ १८९६ ॥
—ती. भ. महावीर, पृष्ठ-११

३३. धर्म के सर्वोदय स्वरूप का तात्पर्य सर्वजीव समभाव और सर्वजाति समभाव से है ॥ १८९७ ॥ —ती. भ. महावीर, पृष्ठ-११

३४. तीर्थंकर महावीर के मानस में आत्मकल्याण के साथ-साथ विश्वकल्याण की प्रेरणा भी थी और उसी प्रेरणा ने उन्हें तीर्थंकर बनाया ॥ १८९८ ॥ —ती. भ. महावीर, पृष्ठ-१२

३५. धार्मिक जड़ता और आर्थिक अपव्यय रोकने के लिए महावीर ने क्रियाकाण्ड और यज्ञों का विरोध किया ॥ १८९९ ॥
—ती. भ. महावीर, पृष्ठ-१३

३६. अनेकान्तात्मक विचार, स्याद्वादरूप वाणी, अहिंसात्मक आचार एवं अपरिग्रही जीवन—ये चार महान सिद्धान्त तीर्थंकर महावीर की धार्मिक सहिष्णुता के प्रबल प्रमाण हैं ॥ १९०० ॥
—ती. भ. महावीर, पृष्ठ-१४

३७. विश्वशांति की कामना करनेवाले को तीर्थंकर भगवान महावीर द्वारा बताये गये अहस्तक्षेप, अनाक्रमण और सह-अस्तित्त्व के मार्ग पर चलना आवश्यक है, उसमें ही सबका हित निहित है ॥ १९०१ ॥
—मैं कौन हूँ?, पृष्ठ-६२

३८. सब जीवों को उन्नति के समान अवसरों की उपलब्धि ही सर्वोदय है ॥ १९०२ ॥ —ती. भ. महावीर, पृष्ठ-११

३९. महावीर के धर्मशासन में महिलाओं को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था ॥ १९०३ ॥ —ती. भ. महावीर, पृष्ठ-९

४०. भगवान महावीर के चले जाने पर गौतम गणधर रोने नहीं बैठे; अपितु महावीर की बताई राह पर चलकर स्वयं महावीर (सर्वज्ञ) बन गये थे॥ १९०४॥

—बिखरे मोती, पृष्ठ-४२

४१. दीपावली अंधकार में प्रकाश का पर्व है॥ १९०५॥

—ती. महावीर तीर्थ, पृष्ठ-८७

सब जीव अपनी भूल से ही दुःखी हैं

- प्रत्येक आत्मा स्वतन्त्र है। कोई किसी के आधीन नहीं है।
- सब आत्माएँ समान हैं। कोई छोटा-बड़ा नहीं।
- प्रत्येक आत्मा अनन्तज्ञान और सुखमय है। सुख कहीं बाहर से नहीं आता है।
- आत्मा ही नहीं, प्रत्येक पदार्थ स्वयं परिणमनशील है। उसके परिणमन में पर-पदार्थ का कोई हस्तक्षेप नहीं है।
- सब जीव अपनी भूल से ही दुःखी हैं और स्वयं अपनी भूल सुधारकर सुखी हो सकते हैं।
- अपने को नहीं पहचानना ही सबसे बड़ी भूल है तथा अपना सही स्वरूप समझना ही अपनी भूल सुधारना है।
- भगवान कोई अलग नहीं होते। यदि सही दिशा में पुरुषार्थ करे तो प्रत्येक जीव भगवान बन सकता है।
- स्वयं को जानो, स्वयं को पहचानो और स्वयं में समा जावो; भगवान बन जावोगे।
- भगवान जगत का कर्त्ता-हर्त्ता नहीं। वह तो समस्त जगत का मात्र ज्ञाता-दृष्टा होता है।

— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-२८६

आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी

१. पण्डित टोडरमल गंभीर प्रकृति के अध्यात्मिक महापुरुष थे॥ १९०६॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-७०

२. वे लोकैषणा से दूर रहने वाले लोकोत्तर महापुरुष थे॥ १९०७॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-७३

३. प्रतिभा के धनी और आत्मसाधना सम्पन्न होने पर भी उन्हें अभिमान छू भी नहीं गया था॥ १९०८॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-७२

४. पण्डित टोडरमल आध्यात्मिक साधक थे॥ १९०९॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-७९

५. पण्डित टोडरमल का जीवन चिंतन और साहित्य साधना के लिए समर्पित जीवन है॥ १९१०॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-७५

६. गृहस्थ होने पर भी उनकी वृत्ति साधुता की प्रतीक थी॥ १९११॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३१४

७. सादगी, अध्यात्म-चिंतन, लेखन और स्वाभिमान उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है॥ १९१२॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३२७

८. आचार्य कुन्दकुन्द के समय जो विशुद्ध अध्यात्मवादी आन्दोलन की लहर उठी थी; वे (टोडरमलजी) उसके अपने युग के सर्वोत्तम व्याख्याकार थे॥ १९१३॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३२७

९. प्रतिभाओं का लीक पर चलना कठिन होता है, पर ऐसी प्रतिभाएँ बहुत कम होती हैं, जो लीक छोड़कर चलें और भटक न जायें॥ १९१४॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-१५६

१०. पण्डित टोडरमल भी उन्हीं में से एक हैं, जो लीक छोड़कर चले, पर भटके नहीं॥ १९१५॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-१५६

११. पण्डित टोडरमल बिना परीक्षण सत्य को भी स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं, वे परीक्षाप्रधानी हैं॥ १९१६॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-१८८

१२. तर्क की तुला पर जो हल्का सिद्ध हो, वह उन्हें मान्य नहीं है और वह किसी भी सत्यान्वेषी को मान्य नहीं हो सकता॥ १९१७॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-१८८

१३. पण्डित टोडरमल मुख्यरूप से विशुद्ध आध्यात्मिक विचारक हैं। विचार उनकी अनुभूति का अंग है॥ १९१८॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२०७

१४. विवादस्थ विषयों में उनके द्वारा प्रतिपादित वस्तुस्वरूप प्रामाणिक माना जाता था॥ १९१९॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-७४

१५. वे मुख्यरूप से आध्यात्मिक चिन्तक हैं, परन्तु उनके चिन्तन में तर्क और अनुभूति का सुन्दर समन्वय है॥ १९२०॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३१६

१६. पण्डितजी अपने विचार पाठक या श्रोता पर लादना पसंद नहीं करते हैं ॥ १९२१ ॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२४१

१७. हिन्दी गद्य निर्माण एवं रूपस्थिरीकरण में पण्डित टोडरमल का प्रमुख योगदान रहा है ॥ १९२२ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२६०

१८. पण्डित टोडरमल के विचार परम्परागत विचार ही हैं, किन्तु उनमें उनका मौलिक चिन्तन सर्वत्र प्रतिफलित हुआ है ॥ १९२३ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२३०

१९. वे जिस विषय का विवेचन करते हैं, उसके सम्बन्ध में असंख्य ऊहापोह उनके मानस में हिलोरें लेने लगते हैं तथा वस्तु की गहराई में उतरते ही अनुभूति लेखनी में उतरने लगती है ॥ १९२४ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-१३०

२०. स्वानुभूति पर उन्होंने सर्वत्र जोर दिया है ॥ १९२५ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-१५६

२१. अध्ययन और ध्यान — यही उनकी साधना थी ॥ १९२६ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-७१

२२. आध्यात्मिकता उनके लिए अनुभूति मूलक चिन्तन है ॥ १९२७ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३२८

२३. आध्यात्मिकता के प्रति उनकी रुचि और निष्ठा का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उन्होंने लगभग एक लाख श्लोक प्रमाण गद्य लिखा ॥ १९२८ ॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३२७

२४. आध्यात्मिक लेखक होते हुए भी उनकी शैली दृष्टान्तप्रतिदृष्टान्त बहुला प्रश्नोत्तरी शैली है, जिसमें उनका व्यक्तित्व झलक उठा है ॥ १९२९ ॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३२८

२५. आध्यात्मिक चिंतन की अभिव्यक्ति के लिए गद्य का प्रवर्तक, व्यवहार और निश्चय तथा प्रवृत्ति और निवृत्ति का सन्तुलनकर्त्ता, धार्मिक आडम्बर और साम्प्रदायिक कट्टरताओं की तर्क से धज्जियाँ उड़ा देनेवाला निस्पृही और आत्मनिष्ठ गद्यकार इसके पूर्व हिन्दी में नहीं हुआ ॥ १९३० ॥ पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३२८

२६. उनका गद्य लोकाभिव्यक्ति और आत्माभिव्यक्ति का सुन्दर समन्वय है ॥ १९३१ ॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३२८

२७. दार्शनिक चिंतन की ऐसी सहज गद्यात्मक अभिव्यक्ति, जिसमें गद्यकार का व्यक्तित्व खुलकर झलक उठे, इसके पूर्व विरल है ॥ १९३२ ॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३२८

२८. पण्डितजी ने जिस विशुद्ध शास्त्रीय और मानवीय दृष्टिकोण से आध्यात्मिक सत्य का विश्लेषण गद्य में किया है, वह मौलिक है ॥ १९३३ ॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३१६

२९. एक आध्यात्मिक लेखक होते हुए भी उनकी गद्य शैली में व्यक्तित्व का प्रक्षेप उनकी ही मौलिक विशेषता है ॥ १९३४ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३१७

३०. दृष्टान्त उनकी शैली में मणि-कांचन योग से चमकते हैं ॥ १९३५ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३१७

३१. पण्डित टोडरमल के गद्य की भाषा की प्रकृति और प्रवृत्ति परम्परागत ब्रज की ही है ॥ १९३६ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३२३

३२. उपलब्ध जैन गद्यकारों में पण्डित टोडरमल ही ब्रजभाषा गद्य के श्रेष्ठ गद्य-लेखक ठहरते हैं ॥ १९३७ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३२५

३३. पण्डितजी का सबसे बड़ा प्रदेय यह है कि उन्होंने संस्कृत-प्राकृत में निबद्ध आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान को भाषा गद्य के माध्यम से व्यक्त किया और तत्त्व विवेचन में एक नई दृष्टि दी॥ १९३८॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३१५

३४. पण्डितजी के लेखन कार्य का मुख्य उद्देश्य उच्च आध्यात्मिक ज्ञान को प्रचलित लोक भाषा में सरल ढंग से प्रस्तुत करना था; क्योंकि तत्त्व विवेचन के ग्रन्थ संस्कृत या प्राकृत भाषा में थे॥ १९३९॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२६५

३५. उन्होंने (टोडरमलजी ने) देशी भाषा को परम्परा से चली आती रही भाषा के विरुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, देशभाषा के लिए उनकी यह मौलिक देन है॥ १९४०॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२६७

३६. पण्डित टोडरमल का साहित्य मुख्यत: संस्कृत और प्राकृत भाषा में लिखित प्राचीन साहित्य पर आधारित धार्मिक साहित्य है॥ १९४१॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२६७

३७. विषय को स्पष्ट करने के लिए स्वयं शंकाएँ उठा-उठाकर उनका समाधान प्रस्तुत करना उनकी शैली की अपनी विशेषता है॥ १९४२॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२३८

३८. उनकी (टोडरमलजी की) शैली में शास्त्रीय चिंतन और लोक व्यवहारज्ञान एवं अनुभूति और चिन्तन का सुन्दर सामंजस्य है॥ १९४३॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२६०

३९. परम्परागत विषय होते हुए भी उन्होंने अपनी लेखन शैली का स्वयं निर्माण किया और अपने अनुभवपूर्ण चिन्तन को ऐसी शैली में रखने का संकल्प किया जो सरल, दृष्टान्तमयी और लोक सुगम हो॥ १९४४॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२३३

४०. सूक्ष्म विचारों को समझाने के लिए उन्होंने लौकिक उदाहरणों का सफल प्रयोग किया है ॥ १९४५ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२३५

४१. यद्यपि आर्षग्रन्थों को उन्होंने सर्वत्र आगे रखा; तथापि तर्कों द्वारा उन्हें तरासा भी, जिससे उनमें एक नवीनता व चमक आ गई है ॥ १९४६ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२३०

४२. वक्ता का सबसे बड़ा और मौलिक गुण है— सत्य के प्रति सच्ची जिज्ञासा और अनुभूत सत्य की प्रामाणिक अभिव्यक्ति ॥ १९४७ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२०८

४३. पण्डितजी ने जो वक्ता और श्रोता के लक्षण दिए हैं, उनमें उनका व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है ॥ १९४८ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२११

४४. धर्म के नाम पर फैले आडम्बर और शिथिलाचार का उन्होंने डटकर विरोध किया है ॥ १९४९ ॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२२०

४५. धर्म के नाम पर चलने वाला पोपडम उन्हें (टोडरमलजी को) बिलकुल स्वीकार नहीं ॥ १९५० ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२२१

४६. उन्होंने (टोडरमलजी ने) अपने तत्त्वविवेचन में सर्वत्र सन्तुलन बनाए रखा और प्रत्येक धार्मिक क्रियाकाण्ड को आध्यात्मिक लाभ-हानि की कसौटी पर कसा तथा जो खरा उतरा, उसे स्वीकार किया और जो खोटा दिखा, उसका डटकर विरोध किया ॥ १९५१ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२२७

४७. उनकी (टोडरमलजी की) मूल दृष्टि सन्तुलन बनाये रखने व मूल लक्ष्य न छोड़ने की है ॥ १९५२ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३१६

४८. उन्होंने (टोडरमलजी ने) उन सभी विचारधाराओं और धारणाओं पर तीखा प्रहार किया जो आध्यात्मिकता के विपरीत थीं॥ १९५३॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३२७

४९. तत्त्वज्ञान उनके लिए एक जीवित चिन्तन प्रक्रिया है जो केवल शास्त्रीय परम्परागत रूढ़ियों का ही खण्डन नहीं करती, अपितु समकालीन प्रचलित चिन्तनरूढ़ियों का भी खण्डन करती है॥ १९५४॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३१५

५०. चारित्र के नाम पर किए जाने वाले असंगत आचरण एवं हिंसामूलक प्रवृत्तियों का पण्डित टोडरमल ने अपने साहित्य में यथास्थान जोरदार खण्डन किया है॥ १९५५॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२००

५१. आचरण को उन्होंने सर्वत्र अहिंसामूलक और विवेक संगत ही स्वीकार किया है॥ १९५६॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२००

५२. लौकिक प्रतिष्ठा और सम्मान के लिए किए गए धार्मिक सदाचाररूप आचरण का उनकी दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं है॥ १९५७॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२००

५३. जहाँ वे (टोडरमलजी) द्वेषपूर्वक कुछ कहना पसन्द नहीं करते हैं, वहाँ उन्हें भय के कारण सत्य छिपाना भी स्वीकार नहीं है॥ १९५८॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२१९

५४. रागभाव की पोषक और हिंसामूलक क्रियाओं को उन्होंने (टोडरमलजी ने) कुधर्म कहा है॥ १९५९॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२२०

५५. वे (टोडरमलजी) सती होना, काशीकरोत लेना आदि आत्मघाती प्रवृत्तियों का धर्म के नाम पर होना धर्म के लिए कलंक मानते थे॥ १९६०॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२२१

५६. उनकी (टोडरमलजी की) मूल समस्या यह है कि अधिकांश जैन वस्तु के मर्म को तो जानते नहीं हैं, शास्त्रों का कुछ अंश यहाँ वहाँ से पढ़कर अपने मन की कल्पना के अनुसार अविवेकपूर्वक धार्मिक क्रियाएँ करने लगते हैं और अपने को धर्मात्मा मानकर सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥ १९६१ ॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२२६

५७. पण्डितजी के पूर्व एवं समकालीन धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियाँ विषम थीं और अन्य भारतीय धर्मों की भाँति जैनधर्म भी कई शाखा-उपशाखाओं में विभक्त था॥ १९६२ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-३१

५८. केवल अपने कठिन परिश्रम एवं प्रतिभा के बल पर ही उन्होंने अगाध विद्वत्ता प्राप्त की व उसे बांटा भी दिल खोलकर॥ १९६३ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-७५

५९. इसमें (जनभाषा में लिखने का) उनका मुख्य उद्देश्य अपने दार्शनिक चिन्तन को जनसाधारण तक पहुँचाना था॥ १९६४॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-७९

६०. कषाय और मनगढ़न्त कल्पना से उनके द्वारा कुछ नहीं लिखा गया है॥ १९६५ ॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-१५२

६१. उन्होंने (टोडरमलजी ने) अपने प्रतिपाद्य को अनुभव करने के बाद पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है; अतः उनके प्रतिपादन में वजन है॥ १९६६ ॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२३०

६२. पण्डित टोडरमल ने अपने साहित्य में सर्वत्र पुरुषार्थ को प्रधानता दी है॥ १९६७ ॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-१७८

६३. पण्डित टोडरमल वीतरागी सर्वज्ञ देव, आत्मानुभवी निर्ग्रंथ गुरु एवं वीतरागता की पोषक सरस्वती के परम भक्त थे, किन्तु भक्ति के क्षेत्र में अन्ध श्रद्धा उन्हें स्वीकार न थी॥ १९६८ ॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-१७७

६४. अप्रयोजनभूत शास्त्रों के पढ़ने के पण्डितजी विरोधी नहीं है; क्योंकि उनके जानने से तत्त्वज्ञान विशेष निर्मल होता है और वे भी आगामी रागादि भाव के घटाने वाले हैं, पर उनकी शर्त यह है कि वे राग-द्वेष के पोषक न हों॥ १९६९॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२१२

६५. पण्डित टोडरमल के लिए मोक्षमार्ग मात्र ज्ञान नहीं, वरन् आत्मविज्ञान है, जिसे वे वीतराग-विज्ञान कहते हैं॥ १९७०॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२१५

६६. पण्डित टोडरमल ने मोक्षमार्ग में वीतरागता को सर्वोच्च प्राथमिकता दी है॥ १९७१॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२१६

६७. पण्डित टोडरमल ने जैन शास्त्रों के कथनों को उनके सही सन्दर्भ में देखने का आग्रह किया है॥ १९७२॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२२३

६८. पण्डितजी के अनुसार जैनधर्म विशुद्ध आत्मवादी है॥ १९७३॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२२३

६९. सम्यग्ज्ञानचंद्रिका की रचना का उद्देश्य स्व-परहित ही रहा है॥ १९७४॥ — पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-९१

७०. मोक्षमार्गप्रकाशक आध्यात्मिक चिकित्सा शास्त्र है॥ १९७५॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-२४०

७१. सामान्य जिज्ञासु जनों को तत्त्वज्ञान की प्राप्ति सहज एवं सरलता से हो सके, यह परहित का भाव है॥ १९७६॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-९१

७२. स्वहित का आशय उपयोग की पवित्रता एवं ज्ञानवृद्धि से है॥ १९७७॥

— पं. टो. व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृष्ठ-९१

७२

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी

१. कानजी स्वामी तो कुन्दकुन्द और उनके समयसार के जीवन्त स्मारक हैं ॥ १९७८ ॥ — यु. का. स्वामी, पृष्ठ-९

२. दिगम्बरों ने उन्हें (कानजी स्वामी को) क्या दिया? यदि दिगम्बरों ने उन्हें समयसार दिया तो उन्होंने दिगम्बरों को समयसार का सार और मोक्षमार्गप्रकाशक का मर्म दिया है ॥ १९७९ ॥

— यु. का. स्वामी, पृष्ठ-९

३. यदि उन्हें दिगम्बरों से एक समयसार मिला, एक मोक्षमार्गप्रकाशक मिला तो उन्होंने समयसार और मोक्षमार्गप्रकाशक दिगम्बरों के घर-घर तक पहुँचा दिया है ॥ १९८० ॥ — यु. का. स्वामी, पृष्ठ-९

४. श्रीमद् रायचन्द्र ने समयसार लाकर देने वाले को खोवाभर मुद्रायें दी थीं, पर कानजी स्वामी ने तो उसके लिए परम्परागत धार्मिक सम्प्रदाय ही नहीं, उसका गुरुत्व, गौरवपूर्ण जीवन, यश; यहाँ तक कि प्राणों का मोह भी छोड़ा ॥ १९८१ ॥ — यु. का. स्वामी, पृष्ठ-९

५. स्वामीजी ने लोगों को समयसार की प्यास जगाई और ऐसी जगाई कि लोग समयसार का अमृत पान करने के लिए आतुर हो उठे, व्याकुल हो उठे ॥ १९८२ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२७

६. जिन-अध्यात्म के प्रतिष्ठापक आचार्य कुन्दकुन्द का प्रसिद्ध परमागम यदि आज जन-जन की वस्तु बन रहा है तो उसका सर्वाधिक श्रेय एकमात्र आध्यात्मिकसत्पुरुष कानजी स्वामी को है ॥ १९८३ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२३

७. समयसार मिलने के बाद कानजी स्वामी जीवनभर ही समयसारमय रहे॥ १९८४॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२५

८. स्वामीजी नया कुछ नहीं कहते। वे तो भगवान महावीर की वाणी में समागत एवं कुन्दकुन्दादि आचार्यों द्वारा प्रतिपादित वाणी का मर्म ही अपनी सीधी-सादी सरल भाषा में उद्घाटित करते हैं॥ १९८५॥

— यु. का. स्वामी, पृष्ठ-९९

९. स्वामीजी सच्चे अर्थों में युगपुरुष हैं; क्योंकि उन्होंने युग को आन्दोलित किया है॥ १९८६॥ — यु. का. स्वामी, पृष्ठ-९८

१०. जो कार्य गांधीजी ने राजनीति के क्षेत्र में अहिंसा के बल पर कर दिखाया; वही काम जैन अध्यात्म के क्षेत्र में कानजी स्वामी ने 'उत्तर नहीं देना ही सबसे बड़ा उत्तर है' (No Reply is Best Reply) की नीति पर चलकर कर दिखाया॥ १९८७॥

— यु. का. स्वामी, पृष्ठ-१००

११. कानजीस्वामी भागीरथ थे, जो अपने भागीरथ पुरुषार्थ द्वारा अध्यात्म-भागीरथी को हम तक लाये और जिन्होंने सारे जगत को उसमें डुबकी लगाने के लिए पुकारा॥ १९८८॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-४१

१२. यदि आत्मज्ञान का ही नाम अध्यात्म है तो स्वामीजी सच्चे अर्थों में आध्यात्मिकसत्पुरुष हैं; क्योंकि उनका चिन्तन, मनन, कथन, अनुभवन, सब कुछ आत्मामय है॥ १९८९॥

—यु. का. स्वामी, पृष्ठ-६

१३. वे (कानजी स्वामी) प्राणों की बाजी लगाकर, प्राणों की कीमत पर दिगम्बर जैन हुए हैं॥ १९९०॥ — यु. का. स्वामी, पृष्ठ-९

१४. श्वेताम्बर मत को गलत समझकर छोड़ देने एवं जीवन के अंत तक लगातार ४५ वर्ष तक श्वेताम्बर मत को कल्पित बताने वाले पूज्य

गुरुदेवश्री कानजी स्वामी एवं उनके अनुयायियों को श्वेताम्बर कहना बुद्धि का दिवालियापन नहीं है तो और क्या है ॥ १९९१ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१२१

१५. आज से २५३३ वर्ष पहिले जो पथ विपुलाचल पर भगवान महावीर ने दिखाया था— उसी पथ के एक पथिक हैं युगपुरुष श्री कानजी स्वामी, जिन्होंने वर्तमान जैन आध्यात्मिक जगत को सर्वाधिक प्रभावित किया ॥ १९९२ ॥ — यु. का. स्वामी, पृष्ठ-९६

१६. कानजी स्वामी एक ऐसे युगपुरुष हैं, जिन्होंने अपने जीवन में तो परिवर्तन किया ही, साथ ही जैनजगत में भी आध्यात्मिक क्रान्ति उत्पन्न कर दी और बाह्य क्रियाकाण्ड में उलझे हुए समाज को भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित शाश्वत शान्ति की प्राप्ति का सन्मार्ग दिखाया ॥ १९९३ ॥ — यु. का. स्वामी, मृष्ठ-९७

१७. सूर्य की प्रभा तो इस लौकिक अंधकार को ही दूर करती है, पर आपकी ज्ञान प्रभा ने, वाणीरूपी किरणों ने तो आत्मार्थी जिज्ञासुओं के हृदयों के अज्ञानान्धकार को दूर किया है ॥ १९९४ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-३५

१८. पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी में पुण्य और पवित्रता का सहज संयोग था, उनमें सोना सुगन्धित हो उठा था ॥ १९९५ ॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-४३

१९. विरोध करने वालों को भी कुन्दकुन्द की वाणी के प्रचार-प्रसार करने का कुछ न कुछ श्रेय तो है ही, पर जो प्रबल प्रवाह आज कुन्दकुन्द वाणी का बह रहा है, उसके मूल में मूलतः स्वामीजी ही हैं ॥ १९९६ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२६

२०. युगपुरुष उसे कहते हैं जो युग को एक दिशा दे, भ्रमित युग को सन्मार्ग दिखाए; मात्र दिखाए ही नहीं, एक वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न करके जगत को उस पर विचार करने के लिए बाध्य कर दे ॥ १९९७ ॥

— यु. का. स्वामी, पृष्ठ-९७

२१. समयसार के भक्त स्वामीजी समय के भी पाबन्द थे। उन्हें जितना प्रिय समयसार था, उतना ही प्रिय समय पर सब कार्य करना भी था॥ १९९८॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-७२

२२. स्वामीजी ने क्रियाकाण्ड, मन्त्र-तन्त्र और वेश के बल पर नहीं, अजस्र ज्ञानाभ्यास के बल पर महावीर की वाणी के मर्म को उद्घाटित कर जगत को जागृत किया है॥ १९९९॥

— यु. का. स्वामी, पृष्ठ-९९

२३. जिन गुरुदेवश्री ने जीवनभर गुरुडम का विरोध किया, उनके नाम पर गुरुडम चलाना न तो उपयुक्त ही है और न उन्हें भी इष्ट था; होता तो अपने उत्तराधिकारी की घोषणा वे स्वयं कर जाते॥ २०००॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-१३४

२४. विरोधियों द्वारा श्री कानजी स्वामी पर भी आज वे ही आरोप लगाये जा रहे हैं, जो तीन सौ वर्ष पूर्व बनारसीदास पर लगाये गये थे॥ २००१॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२२

२५. स्वामीजी के व्यक्तित्व को लांछित करने के सभी प्रयासों नें उन्हीं के व्यक्तित्वों को लांछित किया है, जिन्होंने इसप्रकार के प्रयास किये॥ २००२॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२८

२६. वस्तुतः बात तो यह है कि बनारसीदासजी या श्री कानजी स्वामी का विरोध समययार का विरोध है, आचार्य कुन्दकुन्द का विरोध है, जिन अध्यात्म का विरोध है, शुद्धाम्नाय का विरोध है॥ २००३॥

— बिखरे मोती, पृष्ठ-२२

२७. स्वामीजी द्वारा जो कुन्दकुन्द वाणी की गंगा का प्रबल प्रवाह चला, उसमें अवरोध पैदा करने वाले प्रयासों से जो कोलाहल उत्पन्न हुआ, उससे भी अनेक लोगों की निद्रा भंग हुई और वे भी जाग गये तथा उन्होंने भी स्वामीजी के माध्यम से कुन्दकुन्द की वाणी का रहस्य जाना और वे भी कृतार्थ हुए॥ २००४॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-२६

२८. उनकी (कानजी स्वामी की) वाणी में किसी का विरोध नहीं आता, मात्र अपना अविरोध झरता है ॥ २००५ ॥— यु. का. स्वामी, पृष्ठ-६

२९. गुरुदेवश्री के वियोग में अब उनकी वाणी की ही शरण है; क्योंकि वह आचार्य कुन्दकुन्द आदि आचार्यों के वचनानुसारी है ॥ २००६ ॥
— बिखरे मोती, पृष्ठ-१२७

३०. न तो स्वामीजी मुनिविरोधी ही थे और न उन्होंने कोई नया पंथ ही चलाया था ॥ २००७ ॥ — बिखरे मोती, पृष्ठ-१८८

३१. स्वामीजी की सफलता का राज परमसत्य की उपलब्धि, उसकी सतत् आराधना और नियमित सतत् प्रतिपादन ही है ॥ २००८ ॥
— बिखरे मोती, पृष्ठ-२९

३२. गुरुदेवश्री के अभाव में उदासी तो सहज है, पर निराशा का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। उठो! मन को यों निराश न करो और चल पड़ो उस राह पर! बातों से नहीं, आओ ! हम सब मिलकर अपने कार्यों से दुनिया को इस प्रश्न का उत्तर दें, दुनिया की इस शंका का समाधान प्रस्तुत करें की अब क्या होगा ? ॥ २००९ ॥
— बिखरे मोती, पृष्ठ-१३६

यदि हम चाहते हैं कि.....

इस जगत में बुराइयों की तो कमी नहीं है, सर्वत्र कुछ-न-कुछ मिल ही जाती हैं; पर बुराइयों को न देखकर अच्छाइयों को देखने की आदत डालनी चाहिए, अच्छाइयों की चर्चा करने का अभ्यास करना चाहिए। अच्छाइयों की चर्चा करने से अच्छाइयाँ फैलती हैं और बुराइयों की चर्चा करने से बुराइयाँ फैलती हैं।

अत: यदि हम चाहते हैं कि जगत में अच्छाइयाँ फैलें तो हमें अच्छाइयों को देखने-सुनने और सुनाने की आदत डालनी चाहिए। चर्चा तो वही अपेक्षित होती है, जिससे कुछ अच्छा समझने को मिले, सीखने को मिले। **— चिंतन की गहराइयाँ, पृष्ठ-१६२**

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१.	पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	२०.००
२.	समयसार अनुशीलन भाग-१ (१ से ६८ गाथा तक)	२०.००
३.	समयसार अनुशीलन भाग-२ (६९ से १६३ गाथा तक)	२०.००
४.	समयसार अनुशीलन भाग-३ (१६४ से २३६ गाथा तक)	२०.००
५.	समयसार अनुशीलन भाग-४ (पूर्वार्द्ध) (गाथा २५७ से ३०७ तक)	१०.००
६.	परमभावप्रकाशक नयचक्र (हिन्दी, गुजराती)	१६.००
७.	आत्मा ही है शरण	१५.००
८.	चिन्तन की गहराइयाँ	२०.००
९.	सुक्तिसुधा	१५.००
१०.	बिखरे मोती	१२.००
११.	तीर्थंकर भगवान महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ (हिन्दी, गुजराती, मराठी, तमिल, कन्नड़, अंग्रेजी)	१२.००
१२.	सत्य की खोज (हिन्दी, गुजराती, मराठी, तमिल, कन्नड़)	१२.००
१३.	धर्म के दशलक्षण (हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड़, तमिल, अंग्रेजी)	१०.००
१४.	बारह भावना : एक अनुशीलन	८.००
१५.	क्रमबद्धपर्याय (हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड़, तमिल, अंग्रेजी)	८.००
१६.	गागर में सागर	७.००
१७.	वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	८.००
१८.	आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंच परमागम	५.००
१९.	आप कुछ भी कहो (हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड़, अंग्रेजी)	६.००
२०.	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	६.००
२१.	निमित्तोपादान (हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड़)	३.५०
२२.	युगपुरुष कानजीस्वामी (हिन्दी, गुजराती, मराठी, तमिल, कन्नड़)	५.००
२३.	अहिंसा : महावीर की दृष्टि में (हिन्दी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी)	२.५०
२४.	शाश्वत तीर्थधाम : सम्मेदशिखर	१.५०
२५.	चैतन्य चमत्कार	२.००
२६.	मैं कौन हूँ (हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड़, तमिल, अंग्रेजी)	४.००
२७.	कुन्दकुन्द शतक (हिन्दी, गुजराती, कन्नड़, अंग्रेजी)	१.००
२८.	शुद्धात्म शतक (हिन्दी, कन्नड़)	१.००
२९.	सार समयसार	१.००
३०.	तीर्थंकर भगवान महावीर (हि., गु., म., क., त., अं, ते.)	१.००
३१.	वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर (हिन्दी, गुजराती)	१.००
३२.	अनेकान्त और स्याद्वाद	१.००
३३.	समयसार पद्यानुवाद	२.००
३४.	समयसार कलश पद्यानुवाद	१.००
३५.	गोम्मटेश्वर बाहुबली : एक नया चिन्तन	१.००
३६.	शाकाहार : जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में	१.५०
३७.	गोली का जवाब गाली से भी नहीं	१.००
३८.	अर्चना (जेबी साइज)	१.००
३९.	बारह भावना एवं जिनेन्द्र वन्दना (जेबी साइज)	१.००
४०.	बालबोध पाठमाला भाग-२ (हि., गु., म., क., त., बं., अं.)	३.००
४१.	बालबोध पाठमाला भाग-३ (हि., गु., म., क., त., बं., अं.)	३.००
४२.	वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-१ (हि., गु., म., क., अं.)	३.००
४३.	वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-२ (हि., गु., म., क., अं.)	४.००
४४.	वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-३ (हि., गु., म., क., अं.)	३.००
४५.	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-१ (हि., गु., म., क., अं.)	४.००
४६.	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-२ (हि., गु., म., क., अं.)	४.००